# श्रद्धाराम ग्रन्थावली

[श्री श्रद्धाराम फिल्लौरी के समस्त साहित्य का संकलन]

सम्पादक
डा० सरनदास भनोट
एम० ए०, पी० एच-डी०
रीडर हिन्दी विभाग
पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

नेशनल पब्लिशिंग हाउस
चन्द्रलोक, जवाहरनगर, दिल्ली-६.

प्रकाशक
पंजाब साहित्य अकादमी
यूनिवर्सिटी कैम्पस, [illegible]

●

© साहित्य अकादमी

●

प्रकाशन वर्ष
जुलाई, १९६…

●

मूल्य
८ रुपये

●

मुद्रक
रामकृष्णा प्रिंटिंग प्रेस,
कटरा नील, चान्दनी चौक,
दिल्ली।

# प्रकाशकीय

पंडित श्रद्धाराम फिल्लौरी के समस्त साहित्य को जो हिन्दी में उपलब्ध था, 'श्रद्धाराम ग्रन्थावली' के रूप में प्रकाशित करके, पंजाब साहित्य अकादमी अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए एक पग और अग्रसित हो रही है। पंजाब साहित्य अकादमी के उद्देश्यों में एक उद्देश्य यह भी है कि वह पंजाब राज्य के हिन्दी वाङ्मय के भण्डार को प्रकाशित करे जो यत्रतत्र बिखरा पड़ा है और जो हमारे हिन्दी साहित्य की अक्षय निधि है।

प्रस्तुत ग्रंथावली का सम्पादन अकादमी के भूतपूर्व प्रधान मन्त्री डा० सरनदास भनोट ने किया था और उन्होंने अपने कार्यकाल में जबकि वे अकादमी के प्रधान मन्त्री थे इस ग्रन्थावली के इस प्रकाशन की योजना को कार्यरूप में स्वीकार किया था। हमें प्रसन्नता है कि इस ग्रन्थावली को अपने सीमित साधनों के होते हुए भी इसे प्रकाशित करने में सफल हो सके।

अकादमी के पत्र 'विश्लेषण' का प्रकाशन भी पंजाब साहित्य के प्रकाशन क्षेत्र में एक उत्तम कार्य माना जा रहा है। इस पत्रिका में अब तक दो अंक प्रकाशित हुए है जिनमें साहित्य-शोध की प्रचुर सामग्री प्रकाशित की गई है। विश्लेपण के प्रथम अंक का उद्घाटन केन्द्रीय सरकार के शिक्षा उपमन्त्री श्री भक्तदर्शन ने किया था।

प्रस्तुत ग्रन्थावली के प्रकाशन में पंजाब राज्य के भाषा विभाग एवं शिक्षा विभाग ने जो आंशिक अनुदान प्रदान किया है उसके लिये अकादमी हृदय से आभारी है। इस अवसर पर मैं अकादमी के सभी कर्मठ सदस्यों का हृदय से आभारी हूं जिनके निर्देशन में अकादमी सन् १९६३ से जो कुछ भी कार्य कर रही है वह स्तुतीय है।

निवेदक

प्रधान मन्त्री

# विषय-सूची

# पण्डित श्रद्धाराम फिल्लौरी : व्यक्ति और साहित्यकार

पण्डित जी का जन्म फुल्लौर जिला जालन्धर में संवत् १८९४ में आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा शनिवार को ब्रह्म मुहूर्त में एक उच्च ब्राह्मण कुल के जोशी परिवार में हुआ। इनकी माता का नाम विष्णु देवी और पिता का नाम जयदयाल था। पिता शक्ति के उपासक, गायन-विद्या में निपुण एवं ज्योतिष विद्या के अच्छे पण्डित थे। संगीत और ज्योतिष में अभिरुचि बालक श्रद्धाराम को पैतृक संस्कारों से ही प्राप्त हुई थी।

बचपन में खेल-कूद, मेले-तमाशे, गाने बजाने का उन्हें खूब शौक था। बाजीगरी और जादूगरी के करतब देखने और दिखाने में उनकी बड़ी रुचि थी। ठीकरी का रुपया बनाना, गोलियों का प्यालियों में उडाना, दिन में तारे दिखाना, जलते कपडे से मुख में अग्नि मचाना, तप्त तवे पर चलना, जलते लोह-संगल को हाथ से मलना, इत्यादि ऐन्द्रजालिक लीलाओं से उन्होंने परिचय प्राप्त कर लिया था। सतलुज नदी के खुले जल में तैरने का अभ्यास भी उन्होंने खूब किया था। पानी में शवासन अथवा वीरासन जमा करके देखने वालों को चकित कर देते थे। उन्होंने थोड़े समय में ही 'ताल, स्वर, मूर्च्छना, रागों का भिन्न-भिन्न रूप, आलाप, काल-ज्ञान, सामवेद का गान एवं सरगम, ध्रुपद, ख्याल, टप्पा, तराना, रेखता, रुबाई, ठुमरी' आदि के स्वरूप लक्षण-विभेद सहित कंठस्थ कर लिये थे। कविता करने की रुचि भी आरम्भ से ही थी। छोटी अवस्था में ही पंजाबी में 'बैत' कहने की अपूर्व निपुणता प्राप्त कर ली थी। वस्तुतः उनकी बुद्धि इतनी पैनी और धारणा-शक्ति इतनी प्रबल थी कि वर्षों में प्राप्त होने वाली विद्या में वे कुछ दिनों में ही अधिकार प्राप्त कर लेते थे।

संवत् १९०७ में ब्रह्मवेत्ता स्वामी मह्याराम के हाथों बालक श्रद्धाराम का उपनयन-संस्कार सम्पन्न हुआ। यह उनकी जिन्दगी का एक बड़ा मोड़ है। बचपन के खेल-कूद के जीवन से निकल कर अब वे परम जिज्ञासु एवं श्रद्धा प्रवण साधक के रूप में अपने नैष्ठिक जीवन के पथ पर अग्रसर होते हुए दिखाई देते हैं। तब से लगभग दस वर्ष तक हम उन्हें अपने भावी कर्मठ जीवन के लिए गम्भीर उपकरण जुटाते हुए देखते हैं। इस कालावधि में उन्होंने संस्कृत भाषा में अपूर्व योग्यता प्राप्त की, व्याकरण न्याय वेदान्त आदि षड् दर्शनों का अध्ययन किया, महाभारत, भागवत पुराण आदि का परिशीलन किया, उपनिषदों के रहस्यमय तत्वों का अवगाहन किया तथा अपने समय के भिन्न-भिन्न मत-मतान्तरों से सूक्ष्म परिचय प्राप्त किया। एक मौलवी साहब की सहायता से उर्दू-फारसी में भी विशेष योग्यता प्राप्त की और अरबी भाषा का भी ज्ञान प्राप्त किया। पण्डित जी को अपने उर्दू तथा अरबी फारसी के ज्ञान पर बड़ा गर्व था।*

पण्डित जी ने रसायनी साधुओं से रसायनी विद्या का भी ज्ञान प्राप्त किया था। वैसे इस कालावधि के बाद भी हम उन्हें निरन्तर अध्ययनशील पाते हैं। संवत् १९२३ में उन्होंने एक दक्षिणी पण्डित की सहायता से ज्योतिष विद्या के सूक्ष्म रहस्यों को प्राप्त किया था तथा कपूरथला-नरेश के साथ कश्मीर की यात्रा के समय वहाँ के प्रसिद्ध रमलज्ञ से रमल विद्या का विशेष अध्ययन किया था। 'सत्यामृत प्रवाह' की भूमिका के अनुसार संवत् १९३२ में उन्होंने चारों वेदों का गम्भीर

* अखबार 'कोहे-नूर' में छपे प्रश्नों का उत्तर देते हुए पण्डित जी ने उसी अखबार में लिखा था —

"आप फरमाते हैं कि पण्डित फिल्लौरी ने हमारे सवालात को बगौर नहीं सुना होगा, वरना ऐसे जवाब न लिखता। मखफ़ी न रहे कि फकीर परचा अखबार किसी दूसरे की जबानी नहीं सुना करता, बल्कि किसी कदर इसमें फारसी और अरबी की तालीम खुद भी पाई है।"

अध्ययन किया था। इस प्रकार वे प्रायः आजीवन विद्योपार्जन में संलग्न रहे। वैसे मुख्य रूप से उनकी मानसिक सज्जा का निर्णय प्रायः संवत् १९०७ से १९१८ तक की कालावधि में हुआ।

स्वाभाविक तौर पर विद्याध्ययन का यह क्रम किसी एक स्थान पर और किसी एक गुरु के चरणों में बैठकर सम्पन्न नहीं हुआ। इसके लिये उन्होंने अपनी गुण-ग्राहिका-वृत्ति से जहाँ से जो कुछ प्राप्त हुआ उसे आत्मसात् किया। हाँ, इतना निश्चित है कि उन्होंने प्रारंभिक अक्षरारम्भ अपने पिता के चरणों में ही किया था और ज्योतिष का आरम्भिक ज्ञान भी उनसे ही प्राप्त किया था; इसके अतिरिक्त कुछ भी असंदिग्ध रूप से कह सकना कठिन है। उपर्युक्त ब्रह्मवेत्ता स्वामी मइयाराम जी उनके उपनयन गुरु अथवा अध्यात्म गुरु थे, विद्या गुरु नहीं। पण्डित जी आजीवन उनके प्रति श्रद्धाविनत रहे।

संवत् १९१४ में पण्डित जी को फिल्लौर जबरदस्ती छोड़ना पड़ा। कारण यह था कि उन दिनों वे नगर में महाभारत की कथा बाँचा करते थे। सरकार को आशंका हुई कि पण्डित जी कहीं लोगों को सरकार के विरुद्ध न उकसाते हों। वे सैनिक विद्रोह के दिन थे। सरकार की नीति बड़ी कठोर थी, अत्यल्प सन्देह पर भी कठोर दण्ड दिया जाता था। परिणामतः पंडित जी को आज्ञा हुई कि वे फिल्लौर की सीमा से तुरन्त बाहर निकल जाएँ। यह प्रतिबन्ध संवत् १९१६ तक रहा और लुधियाना के उस समय के प्रसिद्ध पादरी न्यूटन साहिब की सहायता से हटाया गया। संवत् १९१४ से लेकर संवत् १९१६ तक की कालावधि में पंडित जी अधिकांशतः हरिद्वार एवं ऋषिकेश में रहे। सम्भवतः उनका संस्कृत के उपनिषादि ग्रन्थों का विशेष अध्ययन वहीं सम्पन्न हुआ। संवत् १९१६ से संवत् १९१८ तक लगभग तीन वर्ष तक पण्डित जी उपर्युक्त पादरी न्यूटन साहिब के सम्पर्क में रहे और इस कालावधि में उन्होंने पादरी साहिब के अनुरोध से ईसाई धर्म की अनेक छोटी-छोटी पुस्तकों का हिन्दी उर्दू में अनुवाद किया।

संवत् १९१८ से १९३० तक का समय पण्डित जी के जीवन में धर्मोपदेशार्थ भ्रमण का समय है। वे प्रायः प्रान्त के मुख्य मुख्य नगरों में भागवत, योगवशिष्ठ आदि की कथा बाँचते, भजन कीर्तन करते तथा अपने मधुर उपदेशों से जनता में भक्तिभाव एवं चरित्रबल की सत्प्रेरणा देते थे। अपनी अद्भुत प्रतिभा, शास्त्र ज्ञान, मधुर कण्ठ तथा सौजन्य-पूर्ण व्यवहार से उन्होंने शीघ्र ही जन-साधारण के हृदय में स्थान प्राप्त कर लिया था। इनके शिष्यों, भक्तों एवं सेवकों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी, चारों ओर यश फैल रहा था।

पण्डित जी की उन दिनों की यात्राओं में कपूरथला की यात्रा विशेष प्रसिद्ध है। संवत् १९२० में जब पण्डित जी जालन्धर छावनी में कथा कीर्तन के उद्देश्य से गये हुए थे, वहीं उन्हें समाचार प्राप्त हुआ कि कपूरथला-नरेश महाराजा रणधीरसिंह ईसाई पादरियों के प्रभाव से ईसाई होने जा रहे हैं। समाचार प्राप्त करते ही पण्डित जी ने एक पत्र द्वारा महाराजा से निवेदन किया कि "मैंने सुना है कि आपका निश्चय इंजील पर हो गया है और हिन्दू धर्म से उठ गया है, परन्तु मैं सूच देता हूँ कि जब तक मुझे न मिल लें इंजील पर निश्चय न लायें। बुद्ध धर्म करें क्योंकि हम लोग ब्राह्मण इसी कार्य के लिये अपना घर बार छोड़े फिरते हैं और यही हमारा काम है कि स्वधर्म पर निश्चय दिलाना।" यह सूचना प्राप्त कर महाराजा ने तुरन्त पण्डित जी को बुला भेजा। १८ दिन तक पण्डित जी के साथ उनका वाद विवाद चलता रहा। अन्त में पण्डित जी की विजय हुई, महाराजा साहिब की सभी शंकाओं का उचित समाधान हुआ और वे पण्डित जी की अपूर्व शास्त्र मर्मज्ञता, निष्ठा एवं तर्क चातुरी के कायल हो गये। अपने धर्म में उनकी आस्था फिर से स्थिर हुई। पण्डित जी का उन्होंने बड़ा सम्मान किया और उनके लिए ५०० रुपये की वार्षिक वृत्ति की व्यवस्था कर दी। इस घटना से प्रान्त भर में पण्डित जी की अपूर्व विद्वत्ता एवं वाग्वैभव की धाक बैठ गई।

इसी प्रकार पण्डित जी लुधियाना, अमृतसर, लाहौर, फीरोजपुर, कांगड़ा, पालमपुर, भागसू, मंडी आदि प्रान्त के प्रसिद्ध नगरों में अपने सात्विक धार्मिक विचारों का प्रचार करते रहे। ईसाई मत के बढ़ते हुए प्रभावों के अधीन हिन्दू जनता में अपने धर्म एवं शास्त्रों के प्रति जो आस्था उत्तरोत्तर शिथिल होती जा रही थी उसे फिर से सुदृढ़ करने में पण्डित जी के प्रभावों का प्रशस्त योग है।

संवत् १९३० तक प्राय: यही क्रम चलता रहा। उन दिनों पंडित जी की आजीविका के दो ही मुख्य साधन थे। एक कथा-कीर्तन, दूसरा ज्योतिष। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि वे ज्योतिष में भी अद्भुत कुशलता रखते थे। गणित और फलित दोनों का उन्हें ऐसा पूर्व ज्ञान था कि पूछने वाले चकित रह जाते थे। इन दोनों साधनों से जो कुछ प्राप्ति होती थी उसी से पण्डित जी की अपनी गृहस्थी एवं भृत्यवर्ग का निर्वाह होता था। उन दिनों पांच भृत्य नित्य सेवा में रहते थे। एक रसोईदार, एक सेवक और भजन-कीर्तन के लिए तीन रबाकी होते थे। जहाँ भी स्वेच्छा से अथवा विशेष निमन्त्रण पर उपदेश के लिए पण्डित जी जाते, वहाँ यह मण्डली साथ होती थी।

'परन्तु संवत् १९३१ से यह क्रम कुछ बदल गया। किसी एक बात पर एक बार फिल्लौर में कथा-कीर्तन के प्रबन्धकों के साथ कुछ झगड़ा हो जाने के कारण पण्डित जी ने सदैव के लिए कथा का चढ़ावा लेना छोड़ दिया। यह उनके त्याग एवं स्वाभिमान की भावना का ज्वलन्त उदाहरण है। तब से लेकर संवत् १९३८ में अपने निधन के समय तक पण्डित जी सर्वथा स्वतन्त्र होकर नितान्त निस्पृह भावना से धर्म-प्रचारार्थ देशाटन करते रहे।' पंजाब के प्राय: सभी प्रमुख नगरों का उन्होंने दौरा किया। उनके व्याख्यानों का मुख्य विषय सनातन धर्म के नियमों, सिद्धान्तों की प्रतिष्ठा करना था। आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज एवं ईसाई धर्म के प्रचारकों के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप जनता में विशेष रूप से तथाकथित अंग्रेजी शिक्षा से प्रभावित जन-समुदाय में जो हिन्दू

धर्मशास्त्र, श्रुति स्मृतियों के विषय में अनास्था फैल रही थी, उसका प्रतिरोध करना ही उनके प्रचार का मुख्य उद्देश्य था। इसलिए जहाँ भी वे जाते वहाँ अपने से वैमत्य रखने वालों को शास्त्रार्थ के लिए सदैव चुनौती देते थे। अपने प्रकाण्ड पांडित्य, मनमोहक शब्द वैभव एवं युक्ति चातुर्य के कारण उन्हें अपने जीवन में शास्त्रार्थ में कभी पराजय नहीं हुई। उनके साहित्य सृजन का भी यही समय है। उनकी अधिकांश रचनाएँ इसी काल से सम्बन्ध रखती हैं।

आखिर शुक्रवार आषाढ़ बदी १३, संवत् १९३८, तदनुसार २४ जून १८८१ को इस प्रतिभा सम्पन्न लोकसेवी धर्मोपदेशक ने परलोक की यात्रा की। इनकी असामयिक मृत्यु पर पंजाब में स्थान-स्थान पर शोक सभाएँ हुई, लैफ्टिनेंट गवर्नर तक ने सहानुभूति के संदेश भेजे, सम्पादकों ने पत्र-पत्रिकाओं में धर्म के प्रति उनकी निस्स्वार्थ सेवाओं एवं अद्भुत पाण्डित्य के प्रति श्रद्धांजलियाँ भेंट कीं। पंजाब से बाहर के पत्र-पत्रिकाओं में भी शोक-समाचार प्रकाशित हुए।

निस्सन्देह पण्डित जी अपने युग के एक प्रमुख सनातनधर्मी नेता थे। उनकी विद्वत्ता अद्भुत थी और वाक्पटुता अनुपम। उनके धार्मिक विचारों से आज सहमत होना आवश्यक नहीं, परन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि उनमें अपने विचारों के निर्भीक समर्थन एवं प्रचार के लिए आवश्यक साहस और पांडित्य दोनों विद्यमान थे। विचारों में सनातनधर्मी होते हुए भी वे सर्वथा रूढ़िवादी नहीं थे। आर्य समाज के अनेक सिद्धान्तों से वैमत्य रखते हुए भी वे शुद्धि एवं विधवा-विवाह के एकदम विरोधी नहीं थे। ऐसी कई एक दिशाओं में, तद्युगीन चेतना को ध्यान में रखते हुए, उनके विचारों में प्रगतिशीलता का आभास मिलता है।

अपने विचारों के प्रसार के लिए पण्डित जी ने कई एक सभा-सोसाइटियों की स्थापना की थी। लाहौर एवं फिल्लौर दोनों स्थानों पर उन्होंने धर्मोपदेश एवं कथा-कीर्तन के लिए 'हरिज्ञान मन्दिर' नाम से दो

भवनों की प्रतिष्ठा की थी। लुधियाना में हिन्दू सभा और हिन्दू स्कूल की स्थापना की थी। सहारनपुर में एक संस्कृत पाठशाला भी उन दिनों उनके नाम से खोली गई थी।

पण्डित जी ने संस्कृत, हिन्दी, पंजाबी और उर्दू की विविध भाषाओं मे साहित्य-सृजन किया है। उनकी कृतियों का संक्षिप्त ब्योरा नीचे दिया जाता है :—

क—संस्कृत-रचनाएं

(१) नित्य प्रार्थना—यह प्रसिद्ध महिमन्-स्तोत्र की शैली पर शिखरिणी छन्द में रचे हुए २२ पद्यों का सकलन है।

(२) आत्म-चिकित्सा—यह ग्रन्थ सर्वप्रथम संवत् १९२४ में रचा गया था, बाद में संवत् १९२८ में हिन्दी मे अनुवाद कर इसे 'सत्यामृत प्रवाह' के पूर्व भाग में जोड़ दिया गया।

इनके अतिरिक्त भृगुसंहिता, हरितालिका व्रत एवं कृष्ण-स्तुति नाम से अन्य पुस्तकें भी पण्डित जी द्वारा रचित कही जाती हैं।

ख—हिन्दी रचनाएं

(१) तत्व-दीपक—इसमें श्रुति-स्मृति पुराणोक्त धर्म-कर्म का वर्णन है।

(२) सत्य धर्म मुक्तावली—यह भिन्न-भिन्न अवसरों पर रचे गये भजनों का संकलन है। इसके तीन भाग हैं। सर्वप्रथम इस के दूसरे भाग का प्रकाशन संवत् १९२८ में हुआ था। उसके बाद संवत् १९३२ में प्रथम भाग की रचना हुई और दूसरे भाग के पहले जोड़ दिया गया। दोनों भागों को मिला कर संकलन को 'सत्यधर्म मुक्तावली' नाम दिया गया। तदनन्तर संवत् १९४७ में इसमें तीसरा भाग जोड़ दिया गया। इस तीसरे भाग में वे भजन संकलित है जिन्हे पण्डित जी के परम भक्त स्वामी तुलसी देव जी ने पण्डित जी के देहावसान के बाद उनकी हस्तलिखित अप्रकाशित सामग्री से प्राप्त किया

था। संवत् १९८० में इस प्रकरण 'सत्यधर्म मुक्तावली' का दूसरा संस्करण लाहौर से प्रकाशित हुआ।

(३) भाग्यवती—यह उपन्यास संवत् १९२६ में रचा गया था। स्त्रियों के लिए जीवन व्यवहारोपयोगी शिक्षा प्रस्तुत करना ही इसका मुख्य उद्देश्य है।

(४) रमल कामधेनु—यह हिन्दी भाषा में रमल ज्ञान की एक सुबोध पुस्तक है।

(५) शतोपदेश—यह नीति शिक्षा प्रधान १०२ दोहों का संकलन है। इसकी रचना संवत् १९३७ में हुई थी, परन्तु प्रकाशन पण्डित जी के निधन के बाद ही हुआ।

(६) बीजमन्त्र—इसमें गुरु शिष्य के संवाद के माध्यम से सफल जीवन एवं परमानन्द स्वरूप मोक्ष की प्राप्ति के साधनों पर विचार किया गया है। इसमें पण्डित जी का दृष्टिकोण धार्मिक एवं पौराणिक की अपेक्षा बौद्धिक हो गया है, अथवा यों कहिये कि आध्यात्मिक की अपेक्षा भौतिक हो गया है।

(७) सत्यामृत प्रवाह—यह पण्डित जी की अन्तिम रचना है। इसे पण्डित जी का सिद्धान्त-ग्रन्थ कह सकते हैं। 'बीजमन्त्र' में जिन बातों की संक्षेप में चर्चा की गई थी उन सब का यहाँ विस्तृत, विशद एवं युक्तिसम्मत विवेचन किया गया है, सुख दुःख, लोक-परलोक, स्वर्ग-नरक, पुण्य-पाप, एवं सत्य धर्म, जीव, जगत् और ब्रह्म आदि अनेक विषयों पर विस्तार से प्रकाश डालने का यत्न किया गया है। इस समूचे विवेचन में पण्डित जी का दार्शनिक एकदम बुद्धिवादी हो गया है। जिन प्राचीन रूढ़ियों एवं विश्वासों की रक्षा का भार वह अपने प्रारम्भिक प्रयत्नों में वहन करता हुआ दिखाई देता है, उनसे ऐसा प्रतीत होता है कि वह पूर्णतः मुक्त हो चुका है। अनेक स्थानों पर तो उसका साहस चकित करने

वाला प्रतीत होता है। परोक्ष परमेश्वर की सत्ता में उसका अब विश्वास नहीं है। जो कुछ है यह प्रत्यक्ष जगत ही है; इस जगत्-प्रपंच से भिन्न कोई पदार्थ ब्रह्म, परमेश्वर, विष्णु नारायण या भगवान् आदि नाम से नहीं। यह जगत् स्वतः सिद्ध है। इसका कोई कर्त्ता-हर्त्ता नहीं। ब्रह्म है, तो यही है। सुख का नाम ही स्वर्ग और दुःख का नाम ही नरक है। ये यहीं हैं और इसी जन्म में प्राप्त होते है। देह से भिन्न जीव कोई वस्तु नहीं। व्यष्टि रूप से इसी का नाम जीव और समष्टि रूप से इसी का नाम ब्रह्म है।* स्पष्टतः पण्डित जी के चिन्तन के ये स्वर कथा-वाचक, सनातन धर्मोपदेशक श्रद्धाराम के स्वरों से भिन्न हैं। इनमें उन्होंने सभी मत-मतान्तरों की अपेक्षा केवल शुभाचार की भित्ती पर ही लोक जीवन के भवन का निर्माण किया है। पण्डित जी का दृष्टि-कोण मत-मतान्तरों की संकीर्ण सीमाओं को पार कर व्यापक हो गया है।

उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त पण्डित जी ने पंजाबी तथा उर्दू भाषा में भी अनेक ग्रन्थों की रचना की है। पजाबी रचनाओं में 'सिक्खां दे राज दी विथिआ' बहुत प्रसिद्ध है। यह पुस्तक संवत् १९२२ में पंजाब के उस समय के लेफ्टिनेट गवर्नर मैक्लोड साहिब की प्रेरणा से रची गई थी। इसके तीन भाग हैं। प्रथम भाग में गुरु साहिबान की जीवनी एव महिमा का वर्णन है। दूसरे मे महाराजा रणजीतसिंह से लेकर अंग्रेजों के आने तक का वृत्तान्त वर्णित है और तीसरे में पंजाब के गीत, कहावतें, रीति-रिवाज आदि सांस्कृतिक गतिविधियों का वर्णन है।

इसके अतिरिक्त 'पजाबी बात-चीत' नाम से इनकी एक और रचना भी प्रसिद्ध है। इसके भी तीन भाग हैं जिनमें क्रमशः माझा, दुआबा एव पहाड़ी प्रदेश के लोगों के रहन-सहन, रीति-रिवाज, बोल-चाल,

* सत्यामृत प्रवाह ५०

आदि के विषय में आवश्यक जानकारी दी गई है। ये दोनों पुस्तकें अंग्रेजी शासकों को पंजाब के सम्बन्ध में आवश्यक ज्ञान करवाने के लिए सरकार की प्रेरणा से लिखी गई थीं।

उर्दू में भी पण्डित जी ने काफी रचनाएँ की हैं। इनमें मुख चपटिका, धर्म-कसौटी, धर्म रक्षा, धर्म-संवाद', 'उपदेश-संग्रह' तथा असूले मजाहिब' आदि अनेक रचनाएँ उनके नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें अधिकांश रचनाएँ पण्डित जी के विविध लोगों के साथ हुए प्रश्नोत्तरों के संकलन हैं जो उन दिनों प्रायः अखबारों में छपते रहते थे। अन्तिम रचना असूले-मजाहिब' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह फारसी के ग्रन्थ दबिस्ताने मजाहिब का उर्दू में अनुवाद है जो सरकार की प्रेरणा से किया गया था। अनुवाद संवत् १९३७ में पूरा हो गया था, परन्तु लाट साहिब को स्वयं पेश करने से पूर्व ही पण्डित जी का निधन हो गया। बाद में यह सरकार की ओर से प्रकाशित हुआ।

इस प्रकार उस समय में पंजाब के साहित्य को पण्डित जी की देन विविध और विपुल है।

पण्डित जी के कृतित्व का महत्व स्पष्ट है। तद्युगीन सामाजिक परिस्थितियों एवं धार्मिक विश्वासों के इतिहास की दृष्टि से तो उनकी रचनाएँ महत्वपूर्ण हैं ही काव्य रूप, भाषा एवं शैली के विकास की दृष्टि से भी उनका महत्व कम नहीं। उनका उपन्यास भाग्यवती' श्री निवास दास के 'परीक्षा-गुरु से पहले की रचना है। हिन्दी उपन्यास-साहित्य के इतिहास में उसका अन्यतम स्थान है। 'सत्यामृत प्रवाह' की भाषा की प्रौढ़ता एवं सशक्तता उस युग में हिन्दी गद्यकार की अभिव्यंजना-सामर्थ्य की परिचायक है। निस्सन्देह पं० श्रद्धाराम जी अपने समय के सच्चे हिन्दी हितैषी और सिद्धहस्त लेखक थे।

सरनदास भनोट
२६-७-६६

चण्डीगढ़

# सत्यधर्म मुक्तावली का इतिहास

## इसकी रचना तथा लोकप्रियता

इस इतिहास में यह बताना है कि यह छोटी-सी भजन-पुस्तक किस प्रसिद्ध महानुभाव पंडित जी ने कब रची थी, इसके आरती आदिक मोहन भजनों ने कैसा मान पाया, इसकी प्रेम-भरी उत्तम कविता पर मोहित जनों ने इसको अपनी रचना प्रकट करने में क्या-क्या अनीति प्रकट की और किस प्रकार की; उस अनीति-कर्म का हेतु क्या है, और अब इस पुस्तक का पुनरुद्धार क्यों कर हुआ है।

रचयिता—श्री पंडित श्रद्धाराम जी अठवंग योशी सारस्वत ब्राह्मण थे। आप निज समय के अद्वितीय बह्मश्रोतृ, ब्रह्मनेष्ठि गुरु, सत्पथ प्रदर्शक आप्तवक्ता आचार्य, वेदशास्त्र पारगामी मर्यादा पुरुषोत्तम राजा-प्रजा-मान्य एक मात्र मोहन उपदेष्टा, दैवी मेधा के अद्‌भुत ग्रंथकार हुए। पंजाब के जिला जालन्धर नगर फुलौर में सवत् १८९४ विक्रम में जन्म लिया और १९३८ में इस असार संसार को परित्याग किया। केवल ४३ वर्ष अवस्था पाई कि जो सर्वथा देशोपकार में लगाई अर्थात् कल्याणकारी उपदेश देना और समय मिलने पर शिक्षाप्रद ग्रन्थ रचना यही दो मुख्य उपकार जीवन भर किये। नाना नगरो में भ्रमण करते हुए मनोहर वाणी से सनातन धर्म का उपदेशदाता, उन्नीसवीं शताब्दी में आपसे प्रथम पंजाब में कोई नही हुआ। आप आशु-कवि भी थे, यदि कोई दूसरा आशु-कवि पिंगल के जिस छन्द-

व न्द म वा साहित्य क निम रस गुण अलङ्कार मे वार्तालाप करना चाहे तो उसके साथ वैसा ही करते थे। आप हास्य रस मनोरंजन-प्रिय परमानन्दी होने पर भी स्वयं गम्भीर सागर थे। आपकी जो रचना हास्य रस पूर्ण है वह भी शिक्षा से पूर्ण है। वृथा हास्य तो कभी था ही नहीं। आपने संस्कृत, हिन्दी, पंजाबी उर्दू में जितने पुस्तक निर्माण किये उनमे 'सत्यधर्म मुक्तावली' नाम यह एक छोटी सी भजन पुस्तक भी है।

इस भजन पुस्तक का दूसरा भाग कि जिसमे दिन रात के समयानुसार क्रम से दश रागो के पचास भजन हैं, प्रथम रचा था और स्वरचित 'आत्मचिकित्सा' नामक पुस्तक के अन्त में लगाया था कि जिसको सम्वत् १९२८ विक्रम मे पूज्य पंडित जी महाराज के एक शिष्य ने छपवाया था।

तदनन्तर संवत् १९३७ मे 'हिन्दू धर्म प्रकाशक' सभा तथा हिन्दू स्कूल लुधियाना, जिसके संस्थापक तथा सभापति पूज्यपाद पंडित जी महाराज स्वयं थे, प्रार्थनानुसार मंगलाचरण व आरती सहित सोलह भजन का प्रथम भाग रचा और प्रथम मुद्रित पचास भजनों का दूसरा भाग नियत किया। उसी समय एक वैराग्य-जनक बारहमास लिखा दोनों भाग के अन्त मे लगाया, और नाम सत्यधर्म मुक्तावली रखवा, उसको उक्त हिन्दू सभा ने हिन्दी और उर्दू मे प्रकाशित किया।

यह भजन-पुस्तक जो सच्चिदानन्द परमात्मा के गुणानुवाद से पूर्ण और उच्च मनुष्य धर्म का वर्णन श्रुति-स्मृति के अनुकूल करने मे अद्वितीय तथा सब स्त्री-पुरुषों के स्मरण करने योग्य थी सज्जन लोग हाथ ले गये और शीघ्र ही स्कूल के लड़कों तथा प्रेमी भक्तों के कंठ हो गई, इसकी लोकप्रिय आरती देव-मन्दिरों तथा सभा-समाजो मे जा विराजी और उत्तरोत्तर

विराजमान हो रही है। इस अनुपम पुस्तक ने उन दिनों बहुत अच्छा प्रचार पाया, विशेष कर लुधियाने में तो इसका घर-घर गायन होने लगा; इसमें से भी अधिकतर आरती और बारह-मास अति प्रेम से सर्वत्र गाए जाते थे।

अस्तु समय सदा एकरस नहीं रहता, कुछ काल के अनन्तर लुधियाना में हिन्दू सभा तथा हिन्दू स्कूल का वह ठाठ न रहा जो प्रथम था, न रहे रचयिता पंडित जी और न रहे प्रकाशक भक्तजन इस कारण धीरे-धीरे यह पुस्तक दुर्लभ हो गई।

संवत् १६४७ विक्रम में तीसरी बार तीन भागों में छपने का समय प्राप्त हुआ। एक तो मेरी और चुने-चुने वृद्ध भक्तों की निरन्तर चली आई अभिलाषा, दूसरा स्थान-स्थान में सभा-समाजों की चर्चा देख कर इस पुस्तक ने मानो नया जन्म पाया। दो भाग तो छपे हुए थे ही जिनका वर्णन ऊपर आ चुका है, तीसरा भाग मैंने एकत्र किया। इसका वृत्तांत यूँ है कि तरण-तारण पतित-पावन मेरे प्राणाधार सत्गुरु श्रीमान् पण्डित श्रद्धाराम जी के देहत्याग के पश्चात् उनके कर-कमल का लिखा रद्दी कागज़ों में भी यदि कोई शब्द दृष्टि पड़ा तो मैंने उसे अमोलक रत्न मान कर वेद-मन्त्र की नाईं हृदय से लगाया। एवं जब किसी वृद्ध प्रेमी भक्त के कंठ या लेख में महाराज की रचना कर्णगोचर हुई, चाहे उनकी बाल-लीला ही क्यों न हो, पर मैं उसे परमोत्तम शिक्षा मान कर तुरन्त लिख लेता रहा। जितना संग्रह हुआ उसका तीसरा भाग नियत किया।

इन तीनों भागों के आरती आदिक भजन स्वामी जी महा-राज के गायक रबाबीजन राग ताल स्वर में तंबूरा ताऊस तबला आदि साज के सहित गायन किया करते थे, इसीलिये भजनों की नवीन रचना का संग्रह अधिकतर उन्हीं रबाबियों के कंठ

रहता था, नित्य प्रातः व सन्ध्या काल कीर्तन के अतिरिक्त प्रति-मास की पूर्णिमा के दिन फुल्लौर के हरिज्ञान मन्दिर में विशेष उत्सव करना नियत था, प्रातः भजन-कीर्तन, मध्याह्न में साधु ब्राह्मण अतिथि भोजन, फिर कथा उपदेश ज्ञान गोष्ठि और रात्रि के दो-तीन बजे तक भजन कीर्तन रागरंग का परमानन्द वह शांति प्रदान करता था मानो आगत जन समाधि में स्थित होते थे। उस समय यह श्लोक साक्षात् चरितार्थ होता था कि "नाहं वसामि वैकुण्ठे, योगिनां हृदये न च, मद्भक्ता यत्र गायति, तत्र तिष्ठामि नारद।"

हर महीने कोई न कोई भजन श्री पण्डित जी महाराज रच देते और गायक रबाबी आगामी पूर्णिमा के कीर्तन में सुना देते थे। वह तीनों रबाबी सहोदर भाई थे, अन्त को पूज्यपाद महाराज के संग ही परलोक सिधारे। अनेक भजन जो उनके कंठस्थ थे लोप हो गये, जितने पद मिले मैंने तीसरे भाग में दिये और यह 'सत्यधर्म मुक्तावली' पुस्तक तीन भागों में छपकर प्रवृत्त हुई।

तीसरे भाग की भजन-क्रम योजना में जो दोष प्रतीत हों वह मेरा है न कि रचयिता आचार्य का। यह बताना भी आवश्यक जान पड़ता है कि तीनों भागों में कहीं-कहीं ठेठ पंजाबी शब्द आने का मूल कारण क्या है। कथास्थानों में वा गद्य-पद्य रचना में यद्यपि पण्डित जी महाराज की मुख्य दृष्टि ऐसे स्फुट पद लाने में हुआ करती थी जिनका अर्थ पंजाबी नर-नारी गण स्पष्ट समझ सकें, तिस पर भी बुद्धिमत्ता का यह चमत्कार स्वतः ही रहता था कि कर्णकटु व ग्रामीणता आदि काव्य के वाणी-दूषण छूने नहीं पाते थे। सो जहाँ कहीं पंजाबी शब्द दिखाई दें वह दूषण नहीं भूषण हैं, क्योंकि स्वदेशवासियों के लिए पद-रचना और सम्भाषण में अन्य भाषा के पद लाना अथवा संस्कृत के गूढ़

शब्द मिलाना महर्षि के विचार में दोष था। यह नहीं कि आप गूढ़ भाषा लिख नहीं सकते थे बल्कि जितनी भाषाएँ जानते थे उनमें पद-रचना साधारण कौतूहल सा था। इसके लिए किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं किन्तु उनको प्रणीत संस्कृत, हिन्दी, पंजाबी, उर्दू गद्य-पद्य जितनी रचना मिली है विद्यमान है।

रही यह बात कि कोई पुस्तक मानव जाति को धर्म में प्रवृत्त और अधर्म से निवृत्त करने की कैसी शिक्षा देती है, इसकी परख व गुण-दोष संसार के आगे रखने के लिए वर्त्तमान में समाचार पत्रों से अधिक उत्तम कसौटी और नहीं। इसी दृष्टि से पूज्य पण्डित जी प्रणीत अन्य ग्रन्थों के सहित यह भजन-पुस्तक भी उस समय के समग्र हिन्दी समाचार पत्रों के निकट निवेदन की गई थी। उनमें जिन महानुभाव सम्पादकों ने समालोचना करने का परिश्रम उठाया, उन्होंने इस भजन-पुस्तक के विषय में निम्नलिखित सम्मति प्रकाश की थी :—

(१) इसकी स्तुति इसके नाम ही से प्रकट है जैसा नाम वैसे ही गुण हैं, असल में यह भजनों की फूलमाला ही है। 'जैन प्रभाकर' लाहौर। (२) प्रत्येक भाइयों को चाहिये कि इसकी एक प्रति मंगा कर देखें और इन भजनों की फूलमाला को धारण करें। 'खिचरी समाचार' मिरज़ापुर। (३) बड़े उत्तम भजन ऐसे हैं कि जिनकी प्रशंसा लिखने से नहीं हो सकती। इन भजनों में ईश्वर-प्रेम तथा भक्ति टपक रही है। 'रत्नप्रकाश' रतलाम। (४) भजनानन्दों ही के लिए यह भी भजनों की ही एक उत्तम पुस्तक है। 'भारत भ्राता' रीवां। (५) इसमें सारंग टोड़ी आदि रागनियों और पदों में ईश्वर के भजन वर्णन हैं। विशेषता यह है कि किसी मत से आक्षेप किये जाने के योग्य नहीं है। 'सर्वहित' बून्दी। (६) आदि से अन्त लौं उत्तमोत्तम भजनों व रागों की भरी है, जो उस जगदीश्वर

परमात्मा से हमारे प्रेम को अवश्य बढ़ाते हैं। अनमोडा अखबार अनमोडा। (७) भजनों की फूलमाला परमात्म लाभकारी है इसमें जितने भजन हैं सब ज्ञान-वैराग्य रस के भरे हुए हैं। श्री जीयालाल प्रकाश फर्रुखनगर।

अस्तु समाचार पत्रों के अतिरिक्त यह भजन पुष्पमाला समय-समय पर कई एक पाठशालाओं व धर्म सभाओं में और कुंभ आदि पर्वों तीर्थों उत्सवों पर अनेक उत्तम जनों में आदर से बांटी गई। एवं अपने पिपासातुर अनेक प्रेमी जन के समीप सत्कार में विराजमान हुई और इसके अधिकारी नर-नारी भक्तों ने उमंग भरे मन से हाथ पसार-पसार कर ग्रहण किया। तथा भजनों के प्रेमी धर्मात्माओं ने इसे मँगाकर आनन्द में दान दिया। इस प्रकार यह पुस्तक देश प्रदेशों में दूर दूर तक पहुँच गई।

इस भजन पुस्तक में महान उत्तमता यह है कि आरम्भ से लेकर प्रथम और द्वितीय भाग के भजन हिन्दुमात्र के अनुकूल हैं बल्कि उनको सुन कर मानव मात्र प्रसन्न होते हैं। वैदिक धर्मावलम्बी हो चाहे पौराणिक सगुण का उपासक हो या निर्गुण का मुसलमान हो चाहे ईसाई, इन भजनों को सुन कर सब को परमानन्द प्राप्त होता है। इसका मुख्य हेतु यह है कि संसार में परस्पर हर दम के बर्ताव से जो जो नीच कर्म करते जीव जीवन में नरक भोग रहे हैं और जिन उच्च कर्मों के बर्ताव से जीवन में ही स्वर्ग सुख भोग सकते हैं उनका वर्णन ऐसे ज्ञान-वैराग्य भरे ओजस्वी शब्दों में किया है कि श्रोता-वक्ता दोनों के चित्त पर लोह चुम्बक का प्रभाव होता है अर्थात् पाप कर्म में असीम घृणा और शान्ति सुख प्रदायक में श्रद्धा भक्ति प्रेम उमड़ता है।

हाँ कभी-कभी मत का दुराग्रह किसी अन्य ग्रन्थकार की सर्वोपयोगी उत्तम शिक्षा से भी भिन्न मतावलंबियों को वंचित रखता है। परन्तु इस सत्यधर्म मुक्तावली के भजनों में किसी को दुराग्रह नहीं हो सकता क्योंकि रचयिता आचार्य श्रद्धाराम ने प्रत्येक भजन के अन्त में अपना नाम आधा केवल 'श्रद्धा' मात्र रक्खा है। यह श्रद्धा शब्द द्वार्थ वाचक होने से कर्ता का बोधक प्रतीत नहीं होता, नहीं जाना जाता कि यह भजन किसने रचे हैं। इस हेतु किसी भी मतावलंबी को उपरामता नही होती बल्कि रुचि बढ़ती है, आरती आदिक भजन सब को पियारे लगते हैं, नरनारी गण उमंग से कंठ करते, प्रेम से गाते है।

मुझे महान गौरव तथा अभिमानपूर्वक यह प्रकाश करना अत्यावश्यक से भी अधिक बढ़कर प्रतीत होता है कि प्रथम भाग की इस आरती ने "जय जगदीश हरे, भक्त जनों के सकट छिन में दूर करे" भारत में पूर्ण प्रचार पाया। लोगों की भजन-पुस्तकों में देव मंदिरों में, सभा-समाजों में पंडित साधु-महापुरुषों को कथा उपदेशों में, नर-नारियों के सत्संगों में, गायक गन्धर्वो तथा भजन मंडलियों में साधारण-असाधारण जन में जहां-तहां हिन्दू मात्र में अभेद भाव पूर्वक प्रेम भरे एक स्वर से सर्वत्र गाई जाती है। विदित हुआ है कि अफरीका आदि अन्य देश भारत-वासी हिन्दुओं में भी इस आरती का पूर्ण प्रचार है परन्तु यहां और वहां यह किसी ही पुरुष को ज्ञात होगा कि यह आरती किस आचार्य ने कब रची थी। सार बात यह है कि इस आरती को हिन्दू मात्र ने अपनाया जिससे रचयिता का पुरुपार्थ सफल हुआ।

अब सुनिये प्रेम से अपनाने और चुराने की बात कि जिसे नीति वा अनीति कहा गया है। यह स्वाभाविक सा नियम है कि अति प्रिय वस्तु पर मोहित होने से हरेक का जी उसे

अपनाना चाहता है। उनमें विचारवान् व्यापकारी पुरुष तो मर्यादा के अन्दर अपनाते हैं और नाम या धन के भूखे अल्पज्ञ जन चोरी से अपना कर मनोकामना सिद्ध करते हैं। सो इस आरती व कई एक भजनों को भी दोनों प्रकार के पुरुषों ने अपनाया।

मर्यादा से अपनाने वाले भद्र जन में स्त्री महाविद्यालय जालन्धर के संस्थापक कर्णधार श्रीमान् लाला देवराज जी हैं। आपने जुलाई २७ सन् १८९७ में निम्नलिखित पत्र लिखा —

"महाशय स्वामी तुलसीदेव जी नमस्ते !

कन्याओं के लिए मैं एक भजन पुस्तक रचने की इच्छा करता हूँ, धर्म मुक्तावली में से तीन भजन दरज करने की आज्ञा चाहता हूँ।

आपका—देवराज।"

इसके उत्तर में मैंने धन्यवादपूर्वक स्वीकार करते हुए लिखा कि कर्ता का नाम-पता अवश्य रहे।

पत्र सनातन धर्म प्रचारिणी सभा अमृतसर ने रचयिता श्री पंडित जी महाराज का पूरा नाम पता मान मर्यादा के सहित इस आरती को कई बार मुद्रित किया, दान किया। इस उचित कार्य के लिए सभा के मन्त्री श्री पंडित कृपालाल जी मालिक बुगाजली पंडित प्रशंसा भागी विशेष हैं।

इसी भाँति अन्य जितने धर्म सभाओं ने इस आरती व भजनों को अपनी पुस्तकों में लिया, अथवा न्यारे छाप कर दान दिया वह सब आदर पालक उदारी पन धन्यवाद के पात्र हैं और उन पर आत्मा सन्तुष्ट है।

इनके अतिरिक्त दूसरी प्रकार के जन हैं जिन्होंने इस आरती आदि भजनों को तस्करों की न्याईं अपनाया, अपनी रचित

बताया, वेच कर कुछ लाभ उठाया। इनमें जो तुच्छ मति निर्धन लोग स्वार्थ में लीन हैं उनकी बात नहीं, बात है उनकी जो विद्यावान् गुणवान् धनवान् यथोचित मान बड़ाई प्राप्त हैं। उन असाधारण पुरुषों में पंडित विष्णुदिगंबर पलुस्कर गायनाचार्य भी हैं। इन्होंने "जय जगदीश हरे" आरती को अपने नाम से छपाकर बम्बई में वेचा और अपनी रचित रागशिक्षा पुस्तकों में छापा। उनकी कीमत लेते है। हमारे नोटिस देने पर मौन के अतिरिक्त और कुछ भी उत्तर न बन पड़ा।

दूसरे हैं होशियारपुर निवासी प्रसिद्ध विद्वान् मानी धनी ख्याति-प्राप्त और चातुर्यता पुंज पंडित कन्हैयालाल जी स्वर्गवासी। इन्होंने आरती आदि कई भजनों पर मोहित होकर उनको उसी ढाल और उन्हीं भाषा शब्दों का संस्कृत में अनुवाद किया। उनका सस्कृत अनुवाद निस्सन्देह प्रशंसा के योग्य है परन्तु उचित यह था कि अपने को रचयिता के बदले अनुवादक लिखते। इनके दो भजनों के संस्कृत अनुवाद उन्हीं भजनों के नीचे पाठकों के मनोरंजनार्थ दिये गये हैं।

तीसरे हैं फुलौर निवासी पंडित हीरानन्द जी। इन्होंने 'सत्यधर्म मुक्तावली' के भजन तोड़-जोड़कर अपने रचित बताये। मैंने इनकी कलमी भजन पुस्तक देख कर कहा कि इसमें तो आपका कोई भजन नहीं, यह सब हमारे ही महाराज के भजन हैं। जिनको आपने तोड़-मरोड़ के आगे-पीछे लगा कर प्रत्येक भजन के अन्त में अपना नाम जड़ दिया है। मेरी बात को पंडित जी समझ गये, उस पोथी को छपाने से रुक गये परन्तु कविवर कहलाने के काम की लालसा ने इनको टिकने न दिया किन्तु सत्यधर्म मुक्तावली के रेल की गजल आदिक भजन जो तोड़-जोड़ कर अपने नाम से लिख रक्खे हैं किसी-किसी गायक मिरासी

क कष्ट कराये हैं कि कहीं देश प्रदेश जाकर किसी सभा में गावें तो इनका नाम हो।

और सुनिये आरती आदिक दो चार भजन चुराने की तो बात ही क्या सब तस्करों के सिरताज एक भलेमानस ने तो वन बनाये दोनों भाग चुराये अपनी रचना बताये छपाये निज प्रांत में चलाये। सर्वप्रथम मुक्तावली के स्थान नाम रक्खा आत्म विलास उसके टाइटिल पत्र पर यूं लिखा—

## आत्म विलास

श्रीयुत परम भक्त दीन मोहन लाल अग्रवाल काडा निवासी जी रचित। तथा प्रमभाजन श्रीयुत बाबू रामगोपाल दर्शनी जी द्वारा प्रकाशित ऐंग्लो संस्कृत मुद्रालय अनारकली लाहौर में लाला रामचन्द मैनेजर के प्रबन्ध में मुद्रित।

३१ अक्तूबर सन् १८९०

इस पुस्तक में मंगलाचरण व आरती से लेकर दोनों भाग के समय भजन थे तीसरा भाग नहीं था। प्रत्येक भजन के अन्त में असली रचयिता का आधा नाम श्रद्धा पद विराजमान रहा। यह पद सार्थक था भजनों की जान था इसके निकाल देने से भजनों का अर्थ शोभा और मारी जाती इस श्रद्धा पद के अर्थ से किसी दूसरे रचयिता का नाम भी बोध नहीं होता था और मोहनलाल नाम जुड़ने से छन्द भंग होता होगा ऐसे कई एक कारणों से जान-बूझ कर अथवा कविता की उत्तमता प्रभाव शक्ति ने श्रद्धा पद पर भक्त मोहनलाल अग्रवाल की श्रद्धा को बलपूर्वक बनाये रक्खा जो हो भजनों के अन्दर अपना नाम जड़ने को कहीं स्थान न मिला। यह पुस्तक छपने के कई वर्ष

अनन्तर मेरे हाथ अचानक आई। इसे देखते ही मुझे अधिक शोक इस बात पर हुआ कि परमेश्वर का परम भक्त बन कर मोहनलाल ने कृतघ्नता व चोरी क्यों की। यदि उसे ईश्वर-प्रेम था, भजन प्यारे लगे थे, जीवों को मन्द कर्म से रोकने की शिक्षा देने का उपकार करना था तो आज्ञा लेता और कर्त्ता का नाम पता देकर धन्यवाद सहित मुद्रित कराता, दान देता। और यदि उसके हाथ आई पुस्तक के आगे-पीछे नाम पता न रहा था तो भी अपने रचित प्रकट करना कदापि उचित नहीं था। मैंने निश्चय किया कि यह कोई नाम का भक्त है, इसको कर्म का फल अवश्य मिलना चाहिये। तब मैंने अपने प्यारे भाई श्रीमान् बाबू हीरूराम जी वकील होश्यारपुर के द्वारा मोहनलाल कांगड़ा निवासी को नोटिस दिया, लिखा कि आपने हमारी भजन पुस्तक 'सत्यधर्म मुक्तावली' का नाम बदल के 'आत्म विलास' रक्खा और अपनी रचित लिखकर छपाने और बेचने का अपराध किया है, तुम पर नालिश क्यों न की जाये ?

नोटिस पहुँचते ही भक्त मोहनलाल काँप उठे। बड़े भयभीत हुए, पश्चाताप किया, गिड़गिड़ा कर क्षमा माँगी और जितनी प्रतियाँ पास थीं हमारे पास पहुँचाकर विनती की कि मैंने यह पुस्तक अधिक नहीं बेची, दान ही दी थी। आगे को ऐसा नहीं करूंगा क्षमा कीजिये।

नहीं मालूम ऐसे और कितने प्रतिष्ठित तस्कर देश-देशांतरों में हैं जिन्होंने ऐसा कर्म किया है। जो महाशय उनकी सूचना देंगे उनका धन्यवाद किया जावेगा।

निदान इसी भाँति विशाल बुद्धि व अल्प बुद्धि लेखकों ने पूज्य सतगुरु प्रणीत अन्य पुस्तकों के लेख भी चुराये हैं, उनका वर्णन उन्हीं पुस्तकों की प्रस्तावना में करेंगे।

अब यह बताना है कि पुस्तक रचना का क्या प्रयोजन होता है और पूर्वोक्त प्रकार की पुस्तक कारी कौन करते हैं और क्यों करते हैं।

पुस्तक रचना में कर्ता के मुख्य तीन मनोरथ होते हैं एक यह कि जिस ज्ञान से मुझे सुख प्राप्त हुआ है वह औरों को भी हो मेरा अनुभूत ज्ञान मेरे साथ न मर जाए। दूसरा यह कि मेरा नाम यशस्वी हो। तीसरा यह कि मेरी उपजीविका सिद्ध हो। इन तीनों में प्रथम मनोरथ उत्तम है जो जन अपने ज्ञान से अथवा किसी दूसरे के ज्ञान से संसार को सुख पहुँचाने की कामना रखते हैं वह किसी ग्रंथकार का नाम नहीं निकालते, और ना ही किसी ग्रंथ का पाठ चुराते हैं किन्तु अपने ज्ञान से नवीन पुस्तक लिखते हैं। अथवा किसी उपयोगी ग्रंथ पर भाष्य वा टीका टिप्पणी से जगत को विशेष लाभ प्रदान करते हैं। षट शास्त्र के अतिरिक्त कई एक आधुनिक विद्वानों ने भी स्व रचित व संग्रह पुस्तकों में किसी का नाम नहीं दिया। मुक्तावली संस्कृत की छोटी सी उत्तम पुस्तक है। इसके पन्द्रह अध्यायों में पन्द्रह विषय की सर्वोपयोगी शिक्षा दी गई है प्रायः प्राय सब श्लोक ग्रंथान्तर के हैं परन्तु किसी का नाम नहीं और न यह विदित होता है कि किस पण्डित ने इसे संग्रह की थी। एवं श्रीमद्भगवत गीता के प्रणेता ने जहाँ शास्त्र का विषय लिया वहाँ उसका नाम दे दिया परन्तु अपना नाम गीता में कहीं न दिया। किसी किसी पण्डित ने ग्रंथकर्ता का पूरा नाम-पता देकर उनके श्लोक लिए पृथक् पृथक् विषयों का पुस्तक संग्रह किया। सिक्खों के ग्रंथ साहिब में प्रत्येक गुरु तथा भक्त की वाणी उसी के नाम से लिखी और आदर से पाठ होता है। इस प्रकार संस्कृत व भाषा निर्माण की विविध शैली में संग्रहकर्ता महानुभाव कवि जनों पर नाम वा धन की भूख मिटाने का कलंक नहीं आता प्रत्युत

मानव मात्र पर निर्दोष उपकार सिद्ध होता है, उनके नाम पर धन्यवाद के फूल चढ़ाये जाते हैं। देखिये वर्तमान में जब कोई नवीन ग्रंथकार व उपदेशक प्रमाण देते समय उसके कर्ता ऋषि मुनि का नाम लेता है तो कैसा शोभा देता है। इस शुभ मार्ग का अवलम्बन करते लोकमान्य तिलक, धर्मावतार गांधी आदिक पूज्य नेतागण अपने लेखों में अन्य पुस्तकों से उद्धृत पाठकर्ता का नाम सादर देते हैं, वह चाहे किसी द्वीप-द्वीपांतर के निवासी मतविरोधी भी क्यों न हों। यह है पुनीत सनातन मर्य्यादा और कृतज्ञता तथा पूर्ण उत्तम सभ्यता।

सार बात यह कि उत्तम बुद्धि के विद्वान कविजन नाम वा धन की भूख को भी मान-मर्यादा के अन्दर अपने विद्याबल से शांत करते हैं, उनको मान रहित अधर्म से राज्य भी प्राप्त हो तो छूते नहीं इतर लोग चाहे विद्वान भी क्यों न हों पर जब वह नाम या धन की भूख के वशीभूत हो जाते हैं तो उचित-अनुचित, धर्माधर्म, पुण्य-पाप का विवेक छोड़कर जिस उपाय से नाम या धन प्राप्त हो सो ही करने लग जाते हैं।

दृष्टान्त के लिए मान लो एक पुस्तक है, किसी अनुभवी पूर्ण विद्वान विशाल बुद्धि गण्यमान्य मस्तक से निकली है, देश कल्याणकारी शिक्षा-पुंज है, उसकी मोहनी शब्द-योजना ओजस्वी प्रभावशाली माधुर्यपूर्ण अंतःकरण को आकर्षणकारी है। अपनी योग्यता से उस पुस्तक ने और उसके कर्ता ने चारों ओर नाम पाया, बस फिर क्या था देखने सुनने वाले दुकानदारों के हृदय में जल भर आया, ईर्ष्या ने आ दबाया या नाम वा धन की भूख ने आ सताया। अपने में वह शक्ति तो है नहीं कि उस जोड़ की पुस्तक लिख सकें अन्त को उसी पुस्तक की चोरी करते हैं।

यह चोरी केवल भारत के ही आधुनिक कवियों में नहीं किन्तु अन्य द्वीप द्वीपान्तर के पुरुषो ने भी की। भारत के अनेक संस्कृत ग्रंथो को लिया, उनके विषय चुराकर अपना ज्ञान प्रकट किया, नाम और धन की भूख मिटाई।

यह चोरी लोग केवल इस लिये करते है कि हमें किसी दूसरे ग्रंथकर्ता का ऋणी व कृतज्ञ न होना पड़े और न हम लघुमति प्रतीत हो बल्कि हमारा ही नाम विद्यासागर कविरत्न हो।

किसी बुद्धिमान् ने कवि चार प्रकार के बताये हैं—

दोहा—नाम चुरावे भार्य्या, अर्थ चुरावे पूत।
युक्ति चुरावे मित्र कवि, सरल कवि अवधूत॥

अर्थात्—किसी कविता मे से कवि का नाम निकाल कर अपना नाम जड़ देने वाला कवि भार्य्या के समान है कि जो पति का नाम नही लेती और जो कवि किसी की कविता का अर्थ चुरा कर अन्य छन्द बन्द मे प्रकट करे वह पुत्र के समान है जो पिता का धन लेता है एवं जिस कवि ने दूसरे कवि की युक्ति लेकर समग्र रचना आप ही की है वह मित्र के समान हैं और जिस कविता मे साहित्य के नियम नही रहते ऐसी रचना वाले अवधूत कवि कहलाते हैं। उत्तम कवियों ने कभी किसी का पाठ नही चुराया केवल युक्ति ली है। निदान किसी ग्रंथ की रचना के चोर भार्य्या हैं कि जिनको घूंघट निकाल कर सदा चोरी की लज्जा मे ही डूबे रहना पड़ेगा।

इस भूमिका व इतिहास मे पूर्वोक्त प्रसंग लिखने का प्रयोजन यह कदापि नही कि कोई उपकारी निबन्ध किसी एक अनधिकारी कृपण मालिक की अलमारी मे बन्द पड़ा सड़ा-गला करे कि जिससे न मालिक को लाभ पहुँचे और नाही दूसरो को, कदाचित् कोई जन उस ग्रंथ को परोपकारार्थ छापे तो मालिक

उसके गले का हार बने। किन्तु मेरा अभिप्राय केवल यह है कि किसी पुस्तक का कोई अंग शिक्षा के लिए किसी अन्य ग्रंथकार ने अपनी पुस्तक में लेना हो और या उस ग्रंथ को वा उसका कोई अंग छाप कर बेचने की अभिलाषा हो तो जब तक उस पुस्तक का स्वत्व किसी के अधिकार में है उसकी आज्ञा लेना और रचयिता का पूरा नाम पता देना नितांत उचित है। इसके विरुद्ध जो लोग किसी की पुस्तक को तस्करों की न्याई चुराकर अपनी रचित प्रकट करते हैं और नाम वा धन कमाते हैं वह महान घृणा के पात्र हैं।

अस्तु आरती आदिक भजन अपनाने और चुराने की कथा सुना चुके, अब पूर्व प्रसंग में आते हैं। पूर्व प्रसग है कि यह भजन पुस्तक तीसरी बार तीन भाग में छपी है और सादर प्रवृत्त हुई, देखते-देखते देवमन्दिरों का प्रसाद बन गई। जब इसके प्रेमीगण ने सुना कि पुस्तक समाप्त हो गई है तो धीरे-धीरे माँग भी बन्द हो गई। जगत् की चाल है जिस पुस्तक की मुनादी होती रहे उसकी माँग बनी रहती है अथवा देश की वर्तमान शिक्षा पुस्तकों में नियत हो जाये तो समाप्त होने पर फिर मुद्रित होती है और या जमात करामात पुस्तक को जीवित रखती है इत्यादि सहकारी साधन न होने से यह भजन-पुस्तक फिर न छपी।

अब चिरकाल के अनन्तर चौथी बार मुद्रित होने का अवसर आया। इस शुभ अवसर प्राप्त होने के अनेक हेतु हैं, प्रथम —इस पुस्तक रची को पचास वर्ष हो गये और तीसरी बार छपी को भी तीस साल बीत चुके, उस काल की भजन शैली और भक्तिभाव का रूप बदल गया, तथापि "जय जगदीश हरे भक्तजनों के संकट छिन में दूर करे" यह मोहन आरती जीवित

यह चोरी केवल भारत के ही आधुनिक कवियो में नही किन्तु अन्य द्वीप द्वीपान्तर के पुरुषो ने भी की। भारत के अनेक संस्कृत ग्रंथो को लिया, उनके विषय चुराकर अपना ज्ञान प्रकट किया, नाम और धन की भूख मिटाई।

यह चोरी लोग केवल इस लिये करते हैं कि हमें किसी दूसरे ग्रंथकर्ता का ऋणी व कृतज्ञ न होना पडे और न हम लघुमति प्रतीत हो बल्कि हमारा ही नाम विद्यासागर कविरत्न हो।

किसी बुद्धिमान् ने कवि चार प्रकार के बताये हैं—

दोहा—नाम चुरावे भार्य्या, अर्थ चुरावे पूत।
युक्ति चुरावे मित्र कवि, भरल कवि अवधूत॥

अर्थात्—किसी कविता मे से कवि का नाम निकाल कर अपना नाम जड देने वाला कवि भार्य्या के समान है कि जो पति का नाम नही लेती और जो कवि किसी की कविता का अर्थ चुरा कर अन्य छन्द बन्द मे प्रकट करे वह पुत्र के समान है जो पिता का धन लेता है एवं जिस कवि ने दूसरे कवि की युक्ति लेकर समग्र रचना आप ही की है वह मित्र के समान है और जिस कविता मे साहित्य के नियम नहीं रहते ऐसी रचना वाले अवधूत कवि कहलाते हैं। उत्तम कवियो ने कभी किसी का पाठ नही चुराया केवल युक्ति ली है। निदान किसी ग्रंथ की रचना के चोर भार्य्या हैं कि जिनको घूंघट निकाल कर सदा चोरी की लज्जा मे ही डूबे रहना पडेगा।

इस भूमिका व इतिहास मे पूर्वोक्त प्रसंग लिखने का प्रयोजन यह कदापि नही कि कोई उपकारी निबन्ध किसी एक अनधिकारी के द्वारा मालिक की अलमारी मे बन्द पडा सडा-गला करे कि जिससे न मालिक को नाम पहुँचे और नाही दूसरो को, कदाचित् कोई जन उस ग्रंथ को परोपकारार्थ छापे तो मालिक

उसके गले का हार बने। किन्तु मेरा अभिप्राय केवल यह है कि किसी पुस्तक का कोई अंग शिक्षा के लिए किसी अन्य ग्रंथकार ने अपनी पुस्तक में लेना हो और या उस ग्रंथ को वा उसका कोई अंग छाप कर बेचने की अभिलाषा हो तो जब तक उस पुस्तक का स्वत्व किसी के अधिकार में है उसकी आज्ञा लेना और रचयिता का पूरा नाम पता देना नितांत उचित है। इसके विरुद्ध जो लोग किसी की पुस्तक को तस्करों की न्याईं चुराकर अपनी रचित प्रकट करते हैं और नाम वा धन कमाते हैं वह महान घृणा के पात्र है।

अस्तु आरती आदिक भजन अपनाने और चुराने की कथा सुना चुके, अब पूर्व प्रसंग में आते हैं। पूर्व प्रसग है कि यह भजन पुस्तक तीसरी बार तीन भाग में छपी है और सादर प्रवृत्त हुई, देखते-देखते देवमन्दिरों का प्रसाद बन गई। जब इसके प्रेमीगण ने सुना कि पुस्तक समाप्त हो गई है तो धीरे-धीरे माँग भी बन्द हो गई। जगत् की चाल है जिस पुस्तक की मुनादी होती रहे उसकी माँग बनी रहती है अथवा देश की वर्तमान शिक्षा पुस्तकों में नियत हो जाये तो समाप्त होने पर फिर मुद्रित होती है और या जमात करामात पुस्तक को जीवित रखती है इत्यादि सहकारी साधन न होने से यह भजन-पुस्तक फिर न छपी।

अब चिरकाल के अनन्तर चौथी बार मुद्रित होने का अवसर आया। इस शुभ अवसर प्राप्त होने के अनेक हेतु है, प्रथम —इस पुस्तक रची को पचास वर्ष हो गये और तीसरी बार छपी को भी तीस साल बीत चुके, उस काल की भजन शैली और भक्तिभाव का रूप बदल गया, तथापि "जय जगदीश हरे भक्तजनों के संकट छिन में दूर करे" यह मोहन आरती जीवित

है उसको सुन सुन कर और देव निविल मन, उनमीर आत्मा भी पुलकित हो उठता है और कहता है कि उस तजनावली को पुराने ये भक्त और गायको म फिर प्रचार हो दूसरा जब किसी अधिकारी का पूज्यपाद प्रणीत पुस्तके प्रसाद देते है और या कहां से समय रचना का भाग आता है तो इस भजन पुस्तक की आवश्यक बना ही रहती है। तीसरा उपकारी रचयिता का स्मरण बनाये रखना अत्यावश्यक है। चौथा सबसे अधिक मुख्य हेतु यह है कि वर्तमान म मानव जाति प्राय मोह माया म उन्मत्त निरन्तर परायण विषयासक्त स्वार्थान्ध अभिमान के वशीभूत होकर नाना उपाधि उपद्रवों म अधानक दुःख देने-लेने म प्रवृत्त है इस नरगामी प्रवृत्ति प्रवाह स घृणा और वैराग्य उत्पन्न हो। इत्यादि कई एक मुख्य कारणों स पुन प्रकाशित करने की हमारी कामना तीव्रतर उत्पन्न हुई। रहा छपाई आदि चौगुने खर्च का प्रतिबन्ध उसको श्रद्धालु देवियों ने दूर किया। और इतिहास रूप भूमिका लिखने का कष्ट व पुस्तक छपाने का परिश्रम केवल साहस हो से मुझ उत्तराम बलहीन वृद्ध ने उठाया। सच तो यह है कि जिन तीन देवियों का धन्यवाद पुस्तक के प्रथम पृष्ठ पर लिख आये हैं केवल उन्हीं की उमग, उत्साह तथा नित्य की प्रेरणा स यह सत्यधर्म मुक्तावली दूसरी बार प्रेमी जन के आगे आई है।

अन्त म इतना और निवेदन करके यह लेख समाप्त होगा कि श्री पण्डित श्रद्धाराम जी महाराज ने बाल्यावस्था म पंजाबी पद योजना की तीस बैत म रामायण और सरल भजनों म अति सक्षेप से महाभारत लिखा था कि जिसको ब्राह्मण लोग राम लीला व कृष्णलीला के समय चाव स गाया करते थ। उन दिनों के दो वृद्ध प्रेमियों के कठ से टूट फूट बैत व भजन मिले हैं जो नमूने के लिए तीसरे भाग म दिये हैं। इसी प्रकार युवावस्था के

आरम्भ में नढ़डानिदान बारामास के स्वरलय पर विरह-बारामास पंजाबी में लिखा था। यद्यपि इस बारामास में नायक कृष्ण महाराज हैं तथापि कई एक विशेष विचारों से इस भजन-पुस्तक में नहीं दिया था। परन्तु स्वामी जी महाराज के एक अति प्रेमी विद्यावान जो श्री पंडित जी महाराज का एक-एक शब्द परम प्रेम और उपदेशक की दृष्टि से देखते हैं और जिनको यह बारहमासा अति ही रुचिकर और भक्ति प्रेम से पूर्ण शिक्षा-प्रद प्रतीत हुआ उनके बलात् अनुरोध से बाधित होकर यह बारहमास भी तीसरे भाग में देना ही पड़ा जिसके लिए ईश्वर-भक्त विज्ञपाठकों से क्षमा का प्रार्थी हूँ। इस इतिहास के विषय में मन में भरी बातें लिखते-लिखते यह भूमिका एक छोटी सी पुस्तक बन गई। पाठक क्षमा करें।

लेखक—तुलसीदेव

# सत्यधर्म मुक्तावली

## प्रथम भाग

### मंगलाचरण

#### दोहा

नमो नमो करता पुरुष, भवभय भंजनहार।
नमो नमो परमात्मा, पाप हरण सुखकार॥
आदि अंत जिसका नहीं, पूरण है सब ठौर।
श्रद्धा नेक प्रणाम है, ताके तुल्य न और॥

#### आरती

जय जगदीश हरे।
भक्त जनों के संकट छिन में दूर करे॥
जो ध्यावे फल पावे दुख विनशे मन का।
सुख संपत घर आवे कष्ट मिटे तन का॥
मात-पिता तुम मेरे शरण गहूँ किसकी।
तुम बिन और न दूजा आस करूँ जिसकी॥
तुम पूरण परमातम तुम अंतरयामी।
पारब्रह्म परमेश्वर तुम सब के स्वामी॥
तुम करुणा के सागर तुम पालन करता।
मैं मूरख खल कामी कृपा करो भरता।
तुम हो एक अगोचर सब के प्राणपती।
किस विधि मिलौं गुसाईं तुमको मैं कुमती॥

दीनबधु दुख हरता ठाकुर तुम मेरे ।
अपने हाथ उठावो द्वार पड़ो तेरे ।।
विषय विकार मिटावो पाप हरो देवा ।
'श्रद्धा' भक्ति दृढ़ावो सतन की सेवा ।।२।।*

---

* इसके अनन्तर मूल पुस्तक में सम्पादक तुलसी देव द्वारा होशयारपुर निवासी श्री प० कन्हैयालाल कृत आरती का संस्कृत अनुवाद भी दिया गया है जो कि इस प्रकार है —

जय जगदीश हरे ।
भक्त जनेऽप विभो त्वयि मम रतिरस्तु परे ।।१।। ध्रुवपदम् ।।
यस्त्वा ध्यायति धन्य सन्ततमनुरागी ।
स भवति जनिमृति रहित श्रेय फल भागी ।।जय० ।।२।।
त्व जननी जनको मे त्व विपदुद्धर्ता ।
त्व शरण शरण-प्रद सकलं नो हर्ता ।। जय० ।।३।।
पूर्णस्त्व परमात्मन् सर्वान्तर्यामी ।
ब्रह्म परेश्वर भर्तस्त्व सर्वस्वामी ।। जय० ।।४।।
त्व पालयिता पालस्त्व करुणासिन्धु ।
दुर्वृ तेरपि जन्तोस्त्वम कारण वन्धु ।। जय० ।।५।।
सर्वागोचर एक सकलासु गणेश ।
प्राप्य केन कुमतिना भय का परमेश ।। जय० ।।६।।
दीनोद्धार प्रभुरसि सर्वाभ्युं द्धर्ता ।
पतितो द्वायुं स्थाप्यस्तेऽहमसत्कर्त्ता ।।जय० ।।७।।
श्रौतो मुनिमुज्जीवय सजीवय धर्मम् ।
विद्यावृद्धि विरचय नमयाभ्युपधमम् ।। जय० ।।८ ।।
विषय विकार विनयाऽह महर जिष्णो ।
श्रद्धाभक्ती सेवा हृदय सता विष्णो ।। जय० ।।९।।

## स्त्रोत्र ठुमरी

जय राम रमे तिहूँ लोकन में ।
पड़ते कबहूँ नहीं शोकन में ।।
वह आदि अनंत अगोचर है ।
उस पूरण का सब में घर है ।।
वह एक अखंडित आतम है ।
परमेश्वर है परमातम है ।।
वह श्याम न लाल सुपेद नहीं ।
नित मंगल मूरति खेद नहीं ।।
निरवैर निरंजन नायक हो ।
तुम संतन संग सहायक हो ।।
तुम मात पिता हम बाल सबी ।
तुमही करते प्रतिपाल सबी ।।
तुमको तजके हम जायें कहाँ ।
तुमरे बिन सीस झुकायें कहाँ ।।
तुम आप ही पंथ दिखाओ हमें ।
अपने मग आप चलाओ हमें ।।
तुम माधव मंगल रूप हरी ।
सब की बिपता तुम दूर करी ।।
तुम पाप निवारण कारण हो ।
मदमोह मलेछ के मारण हो ।।
तुम जानत हो सब के मन की ।
सुध भूलत ना हमरे तन की ।।
तुम सतचित आनन्द रूप प्रभू ।
कलिकाल विनाश अनूप प्रभू ।।

जब से जनमे हम पाप भरे ।
छल मे बल मे हम चित्त धरे ॥
तब भी तुम दृष्टि न फेरत हो ।
निज मात पिता वत टेरत हो ॥
तुमरे सम कौन दयाल सदा ।
तुमही सब ठौर कृपाल सदा ॥
हमरे सब पाप विनाश करो ।
'श्रद्धा' निज भक्ति हृदय मे धरो ॥३॥

## प्रार्थना

हे हरी हम दास हैं तुम पाप मिटावो ।
द्वार तुमरे आ पडे हमे ना भटकावो ।
जसे बालक को पिता तैसे पास बिठावो ।
पाप सिंधु अपार से हमे आप बचावो ।
नाम अपना दीजिये हमे ना भटकावो ।
प्रभु जी० ॥

काम क्रोध विकार से हम पूरण सारे ।
मानमत्सर ईरषा छलके बनजारे ।
मोह माया ममता मनमाह हमारे ।
महाकुटिल कठोर हैं तुमही रखवारे ।
प्रभु जी० ॥

देह मानस पाइके हम भक्ति बिसारी ज्ञान ।
ज्ञान दीपक हाथ ले पडे कूप मझारी ।
नाम हीन मलीन है विषयी व्यभिचारी ।
राख अपनो जानके अब टेक तुमारी ।
प्रभु जी० ॥

दीनबंधु दयाल है प्रभु नाम तिहारा ।
एक अच्युत आतमा तुमे वेद पुकारा ।
मैं कुचील कुचाल हूँ, कपटी कलिहारा ।
दास 'श्रद्धा' जान के करिये उजियारा ।
प्रभु जी० ॥४॥

## विष्णुपद

अब मैं हरि चरनन को दास मोको मत रोको रे भाई ।
काम क्रोध के वश में मेरी सारी औध विहाई ॥
देखन मात्र जगत है सुन्दर ज्यों विष भरी मिठाई ।
भली प्रकार विचार कियो जब अंत समय दुखदाई ।
कालकंट सब दूर होत हैं जग में मिले बड़ाई ।
यम का दंड नरक की पीड़ा मेटत हरि शरणाई ।
झूंठा संग सनेह जगत का झूंठी सब चतुराई ।
'श्रद्धा' सहित गाय हरि के गुन होवे अंत सहाई ॥५॥

## विष्णुपद

जप मन नारायण सुखदाई ।
सुर नर मुनि सब ध्यान धरत हैं नारद शारद प्रीति लगाई ॥
ब्रह्मादिक अरु शिव सनकादिक जाके भय कर चलत सदाई ।
जाकी आज्ञा में शशि सूरज पवन चलत जाको डरपाई ।
जाके भय कर अग्नि तपत है जल में शीतलता ठहराई ।
धरत अकाश खड़े जिसके डर सो मन में धर तज जड़ताई ।
सर्व समर्थ दया निधि ठाकुर भक्त जनों पर होत सहाई ।
'श्रद्धा' सहित जपो निश वासर औध चली जैसे बादर छाई ॥६॥

## विष्णुपद

बारबार बलिहार हरि जू के चरनन के ।
पालन पोषण कर्त भवन को सतत प्राण अपार ।।
अच्युत एक अखण्डित आतम है सब को करतार ।
पूरण ब्रह्म परम पद दायक निर्भय अचल अपार ।।
दीन बंधु दुख भञ्जन ठाकुर कलिमल हरने हार ।
ब्रह्मादिक नित ध्यावत जिसको बुद्ध हमरो सुख धार ।।
जड़ चेतन सब रच दिखलाये करत न लागी वार ।
आपहि थिर कीनी सब रचना आपहि करत विहार ।।
देव अदेव नाग पशु पंछी तरु पषान नर नार ।
कोट चराचर सबो दृष्टि मैं सब को पालन हार ।।
वेद पुराण सबो गुण गावत करन हार उद्धार ।
अव्यय अजर अमर परमातम 'श्रद्धा' करत जुहार ।।७।।

## विष्णुपद

भज भज मन गोविंद स्वामी ।
सुखदायक अंतरयामी ।।
तज कपट कलेश विकार ।
रट हरिगुण बारम्बार ।।
गहु रामशरण सुखदाई ।
तज आलस अरु जड़ताई ।।
कलिकाल विनाशन देवा ।
कर निश दिन ताकी सेवा ।।
नित साधु संग कर प्रीति ।
गहु रीति तजो अनरीति ।।

तज काम क्रोध मद मोहं ।
अभिमान लोभ छल द्रोहं ।
गहु धर्म अधर्महि त्यागो ।
माया ममता को तज भागो ।
सब के हित को मन धारो ।
'श्रद्धा'युत नाम उचारो ॥८॥

## विष्णुपद

मन रे मानो बात हमारी ।
गोविंद नाम हृदय में राखो सतगति होय तुम्हारी ॥
सब साधन तज नाम अराधो दुरमति त्यागो सारी ।
मानस जनम अमोलक छीजत अब तरने की बारी ॥
विषयन में कैसे सुख मान्यो काल त्रास सिर भारी ।
क्या खा सके सिंह के आगे बाँधी अजा बिचारी ॥
जाके सिमरन पाप बिनाशे मुक्त होत नर नारी ।
ताकी टेक धार मन 'श्रद्धा' भागे दुरमति सारी ॥९॥

## दूतीपद

कोऊ कहे हरि है नभ में अर कोऊ कहे हरि भूमि पताले ।
कोऊ बतावत पूरब पश्चम जंगल में बन में कोऊ भाले ।
सागर में सर में कोऊ ढूंडत काठ पषानन में कोऊ टाले ।
जो 'श्रद्धा' करके लखिये तब है सब में सबको प्रतिपाले ॥१०॥

## दूतीपद

तीरथ है सो यही मन है पर जो मन के सब पाप निकारो ।
दान यही उपकार करो पुन यज्ञ यही कोऊ जीव न मारो ।
योग यही हरि म जुरिये अरु होम यही है कुवासना जारो ।
संयम शील यही जप है रट राम सदा 'श्रद्धा' तप मारो ॥११॥

## दूतीकवित्त

कोऊ कहे शारदा सुरेश कोऊ सूर शशि ।
कोऊ कहे अंबिका महेश परधान है ।
कोऊ कहे भैरव भजन कोऊ भूत प्रेत ।
काहू के सहायक गणेश हनुमान है ।
कोऊ पूजे दहरा मसीत कोऊ मढ़ी मठ ।
देवल दिवाल कोऊ पूजन मसान है ।
मेरो प्रभु पूरन प्रतापवान कहाँ नहीं ।
'श्रद्धा' विचार सब में विराजमान हैं ॥१२॥

## दूतीपूजा कवित्त

आतमा को आसन सिंहासन शरीर कर,
प्रेम भाव जल सों सनान अभिलाखिये ।
चंदन हो चित्त शुभचाउ को सुगंध फूल,
ध्यान के बसन में सजाय कर राखिये ।
भूषण भगति भाय आरती सुशील सम्य,
शमदम बालभोग पाछे आप चाखिये ।
परब्रह्म पूरण की पूजा कर 'श्रद्धा' सो,
त्राहि-त्राहि दीनानाथ हाथ जोड भाखिये ॥१३॥

## पद

भज रे मन रामनाम कलि में सुख होई।
तारन संसार सिंधु दूसरो न कोई।
कीरति कल्याण करत नाम अति पवित्रं।
ताके सम नांहिं कोऊ तात मात मित्रं॥
तीरथ व्रत नेम यज्ञ योग यतन दानं।
राम नाम हीन वृथा ज्ञान ध्यान मानं॥
देह गेह राज भाग कुल कुटुम्ब नीके।
विद्या वले बुद्धि विना राम भक्ति फीके॥
भील गीध मृग खगादि क्षण में जिन तारे।
भक्तन उद्धार करन राम रटो प्यारे।
मानस तन पाय हाय विषयन में खोवें।
धिक मति धिक जनम अरे आग जार सोवें॥
सुन्दर अति रूपवंत उत्तम कुल ऊँचो।
'श्रद्धा' विन नीच लखो भक्त नीच सूचो॥१४॥*

---

*इसके अनन्तर सम्पादक तुलसी देव द्वारा मूल पुस्तक में होशियार-पुर निवासी श्री पं० कन्हैयालाल कृत संस्कृत अनुवाद भी दिया गया है जो इस प्रकार है :—

भज रे कलिकलुषहंतृ राम नाम चेतः।
संसृति-संतरण-हेतुरपर इह न चेतः॥१॥
कीर्तिः शिवदायदीयं नामवत पवित्रम्।
माता नहि तेन पिता समो नाऽपि मित्रम्॥२॥
तीर्थ-यज्ञ-योग-व्रत-दया-नित्यदानम्।
राम-नाम हीनमिदं वृथारण्यगानम्॥३॥

## उपदेश ठुमरी

रट नाम सदा हमरी रसना ।
हरि ध्यान धरो तुम मोरे मना ॥
जिन कानन में हरि नाम नहीं ।
जल जायँ वही मेरे काम नहीं ॥
जिन नयनन में हरि रूप नहीं ।
तिन जाय एकान्त निकाल वही ॥
जोऊ हाथ न सन्तन सेव करें ।
कट जाय वही मध आग जरें ॥
पग जो सत संग न जात कबी ।
गल जायँ हिमाचल जाय अबी ॥
मन जो न करे उपकार जरा ।
नहिं जीवत है लखिये सो मरा ॥

---

राज्य-भाग्य-कुल-कुटुम्ब-विद्या-बल-देहम् ।
राम भक्ति रिक्तमेहि मुधा वित्त-गेहम् ॥४॥
जडना तमसा निरीक्ष्य पिहित मुहिषोपुं ।
जगदिनि मुहुरवतनार मुक्तिमिह चिकीर्षुं ॥५॥
तीर्णा यत्न रणायेह खग-मृग-नग-नागा ।
भक्तोद्धृतिकारि राममाशु भज निरागा ॥६॥
मनुज-जनिमाप्य विषय-गशिमहो भुङ्क्ते ।
धिङ् मतिमथ जन्म तस्य वह्निमधिशेते ॥७॥
भवतु कुलज पटु स भवतु सच्चरित्र ।
श्रद्धाविधुर खलश्च भक्त इह पवित्र ॥८॥

मति जो हरि भक्ति विहीन रहे।
धिक ताह सदा मध सिंधु वहे॥
हरि कीरति की 'श्रद्धा' कलि में।
भव पार करे सब को पल में॥१५॥

## उपदेश रागपीलों

गहो मन राम रतन निरमोल।
ताके तुल्य न मानक मोती देख तराजू तोल॥
आन उपाय नहीं सुख पावे वृथा न नीर वरोल।
हरि की भक्ति परम सुखदाई वेद बजावत ढोल॥
जग के राज भाग सुख मिथ्या झूठे केल कलोल।
केवल राम नाम धन साचो तीनों काल अडोल॥
तन से सेव करो संतन की जीभा हरि-हरि बोल।
सहिजे मुक्ति मिले तव 'श्रद्धा' मानो वचन अमोल॥१६॥

इति प्रथम भाग

ओम् नमः

# सत्यधर्म मुक्तावली

## द्वितीय भाग

### राग भैरों

हौं हरि शरण तिहारी आयो ।
काल फाँस यम त्रास न भासे मन आनन्द समायो ॥
दुख विनसे सुख सम्पत पाई, कलह कलेश नसायो ।
तुमरे चरण भजे हम जब से, दुहुँ लोकन यश छायो ॥
दारिद मिटे मिल्यो चिंतामणि, हरिगुण गाय अघायो ।
पत परतीत बनी सब जगमो, हौं पूरण पद पायो ॥
सुन्दर साज बने सब मोरे, काम क्रोध सकुचायो ।
'श्रद्धा' धिक पुनपुन उस जन को, जिन हरि यश विसरायो ॥१॥

अब तो हैं हरि जू रखवारे ।
चिन्ता चाह मिटी सब मन की, नित आनन्द हमारे ॥
आपत विपत फुरत नहिं कबहू, संशय शोक निवारे ।
हरि के हाथ निबाह हमारो, जित चाहे तित डारे ॥
पकडो चरण शरण हम ताकी, जिन अनेक खल तारे ।
सबे प्रकार दयानिधि ठाकुर, मारे चाहे सुधारे ॥
काल व्याल को भय नहीं तिनको, जिनके गोविन्द प्यारे ।
'श्रद्धा' शांत सुखी नित विचरें, निरभय पद आधारे ॥२॥

जब से शरण गहि हरि तोरी।
निखिल प्रपंच स्वपनवत जान्यो, छूटी तृष्णा मोरी ॥
विविध विषय तज हरि रंग राते भरी नाम धन झोरी।
तुम प्रताप को भानु प्रकाश्यो मन त्यागी सब चोरी ॥
यम की भीति अनीति हरी सब सकल वासना बोरी।
कपट छलादि विकार भुलाने मति तुम चरणन जोरी ॥
इत उत चाह रही नहिं रंचक आस फास गहि तोरी।
अब यह दया दान देहु 'श्रद्धा', कटे जनम की डोरी ॥३॥

अब मैं हरि रंगत सो राती।
पी मिलाप संताप भगे सब, तृप्ति भई मन भाती ॥
पूत मीत ममता सब बिसरी, फुरे न जाति जमाती।
आनन्द मगन न विरह व्यथा कछु उमगत सुख सो छाती ॥
कलिमल हरण नाम धन पायो, फार दई भ्रम पाती।
आज लाज जग की सब खोई फूलत नाहिं समाती ॥
सखी सुहाग मिल्यो अब मोरे धन्य मात पित नाती।
'श्रद्धा' धिक हरि वेमुख जो जन, सो हैं आतमघाती ॥४॥

जगत मों लाज रहे न रहे।
हरि भूषण पहिरयो अब उरमों कोऊ कछू कहे ॥
श्रीपति चरण कमल मों उरझो मो मन जग न गहे।
हे हरि हर भ्रम भूत मोर चित तुम तज कछु न लहे ॥
नरक मिलो वा स्वरग पदारथ मन कछु विपत सहे।
पर हरि चरण शरण मत छूटे दिन दिन अधिक चहे ॥
प्रेम सिंधु में मगन रहूँ नित, आँखों नीर बहे।
'श्रद्धा' श्याम रहे इक सम्पत और समाज दहे ॥५॥

## राग आसा

अरे मन धूरत क्यों न अघावे।
भोगत भोग बहुत युग बीते शांति नही कछु आवे ॥
जिन विषयन मों बहु दुख पायो तिन मो फिर उरझावे ।
यथा श्वान श्वानी सो उरझो पुन पुन चोटन खावे ॥
क्षण मो शांति मौन गहि बैठत क्षण मों ताल बजावे ।
धन के हित मूढन के आगे मो सो नाच दिखावे ॥
पुन मीत ममता सो बाध्यो नाना स्वाग बनावे ।
सब के देखत यम ने पकर्‌यो 'श्रद्धा' कौन छुडावे ॥६॥

मन रे गहो राम शरणाई ।
मानुष जनम अमोलक दीनो पुन सब ठौर सहाई ॥
तन सुख मगन काल नहि सूझत खेलत खेल बिहाई ।
इत उत देखत यम ने पकर्‌यो मूसन यथा बिलाई ॥
देखत ही सब बिछुर गये हैं मात पिता मित भाई ।
मैं मेरी अबहू नहि त्यागत निश दिन चाहत बडाई ॥
चार दिनन को जीवन जग मो क्यो नही लेत भलाई ।
फिर पछताय कछु नहि होहै 'श्रद्धा' राम दुहाई ॥७॥

मन रे क्यो नहि राम सभारे ।
या जग मो बहु मान बढत है पुन परलोक सुधारे ॥
कहा भयो सुख सपन पाई अरु धन धाम चुबारे ।
धिक विद्या धन रूप बाहु बल बिन हरि नाम उचारे ॥
हठ व्रत नेम यज्ञ तप कीने जटा लोम नख धारे ।
जो पै राम नाम नही गायो लोक विडम्बन सारे ॥
इत उत देखत औध विहानी रे तन निठुर नकारे ।
अबहु सभार कछु नहि बिगरो 'श्रद्धा' बेद पुकारे ॥८॥

अब भज राम नाम यश नीको ।
अमृत नाम बसत जब मन मों और लगत सब फीको ।।
नाम प्रताप अनक खल उधरे भील गीध जन कीको ।
धन्ना सैन अजामिल गणिका नस्यो भरम सब ही को ।।
तज अभिमान मोह मद मतसर गहु पद रमापती को ।
शम दम दया विवेक टेक धर काट ताप सब जी को ।।
स्वप्न प्रपंच सकल जग मिथ्या त्याग मोह सुत ती को ।
'श्रद्धा' गहु हरिनाम हृदय पुन धार भाल यश टीको ।।९।।

गोबिन्द नाम सुधा रस पीजे ।
आलस त्याग जाग कर मानुष जनम सफल कर लीजे ।।
छिन छिन होकर औध सिरानी यथा आम घट पानी ।
बालू भीत समान देह सुख ता मों मन नहिं दीजे ।।
विषयन मों वहु जनम विहाने नहीं राम सुध लीनी ।
आन अचानक यम ने पकरयो देखत ही सुख छीजे ।।
मात पिता सुत बनता बाँधव नेह बंध्यो दुख पावें ।
'श्रद्धा' शांति न पावे कोई बिना राम रस भीजे ।।१०।।

## राग टोड़ी

मन को भेद न पायो भोरो ।
अपने भूतपने मों उरझो कह्यो न मानत मोरो ।।
विषय बाट मों पुन पुन धावत हरि मग जुरत न जोरो ।
निज करतूत कुमारग सेवत सुवत न वेद ढंडोरो ।।
मानुष जनम पाय नहिं समझत लाज काज सब बोरो ।
पर धन धाम नारि नित ताकत धापत नाहिं चटोरो ।।

सुख भवत हित जित कित डोलत हरि यश नाहि बटोरो ।
'श्रद्धा' सब सुख धरे रहिंगे हैं जब यम आय मरोरो ॥११॥

बीत गये सब जनम दिहारे ।
भोगत भोग शांति नहि उपजी मन मो धरे न हरि चरणा रे ॥
रे मन त्याग कुमति हरिपद गहु पुन पछुताय कहेगो हारे ।
वा छिन कछु बन है नहि मूरख जब यम आय पुकारत द्वारे ॥
काम क्रोध विष को सुख मानत त्यागत क्यों हरिनाम सुधा रे ।
जीवन मुक्त होत नहि रे शठ सत बेद सब तोहू पुकारे ॥
कलिमल हरण नाम हरि जू को पुन जनमादि कलेश निवारे ।
ताहि बिसार अहो सुख चाहत धिक 'श्रद्धा' कुल मात पिता रे
॥१२॥

मेरो मन मूरख सुध न लहे ।
कबहुँ सुमति लग तजत विषय रस कबहुँक कुमति गहे ॥
निज परिवार जाल मो उरझो अनक कलेश सहे ।
तृष्णा तोय तरग मदादिक तिन मो विवश बहे ॥
धन सुत मान चाह बहु पावक देखत पाउँ दहे ।
सत बचन निन बजत ढडोरो सुनबो नाहि चहे ॥
अति मति मद काल नही सूझत तन सुख मगन रहे ।
'श्रद्धा' श्याम शरण सो विछुरो को उपदेश कहे ॥१३॥

मन रे कहाँ बिसारी लाज ।
मानुष जनम दियो जिह ठाकुर तासो रह्यो न साज ॥
कहा भयो जग होत बडाई लोग कहे महाराज ।
जग मा छल कर दरब उपवत हरि पै रहे न पाज ॥

सत शरण गहु नाम अराधो दुष्ट संग सो भाज ।
मानुष जनम मुक्त हित पायो शुभ समाज है आज ।।
तन मन धन कर हरि गुण गावो समझो काज अकाज ।
जनम मरन भय बिनशे श्रद्धा होवहु सब सिर ताज ।।१४।।

जगत मों राम नाम है सार ।
दुख हरता सुख करता ठाकुर सिमरो कपट निवार ।।
धन सुत नार मात पित बांधव ये सब सुपन विहार ।
सतचित आनंद रूप सुवामी ताको नाम उचार ।।
कुटिल कुचील भील खग बानर जिहु सिमरत भये पार ।
गणिका सबरी गीध अजामिल, तरत न लागी वार ।।
पारस परस लोह मल छूटे अमृत कष्ट अपार ।
त्यों 'श्रद्धा' अघ ओघ कटें सब गोविंद नाम अधार ।।१५।।

## राग बिलावल

लग्यो भ्रम भूत तोहे डहिकात ।
रे मन तू जो नहीं थिर बैठत ताकत नाना घात ।।
माटी डेल देह पर बांधत चुन चुन पाग सुहात ।
छांह निहार सुधारत मूंछन ऐंठत टेढ़ो गात ।।
मोह वंध्यो वहुरो दुख पावत तव हूँ नाहिं लजात ।
जिन्हें कहित मेरे प्रिय बांधव अंत न पूछहिं बात ।।
अपनी पोट धरत सिर तेरे मात पिता सुत भ्रात ।
खरवत वोझा उठावत तिन को 'श्रद्धा' कित कुशलात ।।१६।।

नहीं मन अजहुँ संभारत राम ।
छिन छिन औध सिरावत देखे, अरु बिगरत सब काम ।।

जो अति बल धन मति मद मात अरु जिन के बहु दाम ।
सो सब मरे परे यम के वश कोऊ न जानत नाम ॥
काल शिखा गह फिरत रात दिन भोर हनत वा शाम ।
पितृ समूह गये तन यह मग तू चाहत विश्राम ॥
हरि मूरत धर हृदय मूढ मति तब पावहु तहिं धाम ।
'श्रद्धा' श्वास श्वास नित छीजत गहु सपत हरिनाम ॥१७॥

रटहु मन श्रीगोविंद गोपाल ।
जिह प्रताप नर देह मिली लोहे कर पद नयन विशाल ॥
सुंदर रूप अनूप अंग सब सुत संपत धन माल ।
छिन मो सब कछु होत परायो ताकत काल कराल ॥
विषयानद मगन निश वासर त्यागत नाहिं कुचाल ।
कब लो मूस फिरे घून पीतो पहुँच्यो काल विडाल ॥
इंद्रिय सुख आपहि तज जैहैं राखो कहा सम्हाल ।
तब पछुताय हाथ मल हो शठ 'श्रद्धा' अजहू टाल ॥१८॥

माई मेरे घर मो उपजे चोर ।
काम क्रोध पुन लोभ मोह मद लूटत पाच बटोर ॥
कहा भयो जग के रिपु जीते वृथा लगाओ जोर ।
घर मो लूट मची नहिं जानो बाध्यो ज्यो पशु ढोर ॥
मानुष जनम अमोलक छीजत संयम करत न भोर ।
हरि धन त्याग लग्यो झूठे रस राखत राख बटोर ॥
हों मद भाग विषय सुख माती प्रेम न तुमरी ओर ।
आप हाथ सिर राखो 'श्रद्धा' मैं पतग तुम डोर ॥१९॥

जगत मो को ऐसो बलवान ।
विषय बाट सो खेंचे मन को उपजे अतर ज्ञान ॥

बड़ो कुपूत भूत यह मनुआ तजत न अपनी बान ।
लाखन शीप दई नहीं मानत सुनत न वेद बखान ॥
पर धन हरन हेत अति चातुर सिमरन मों अनजान ।
काम क्रोध की करत बड़ाई शुभ मग काढ़त कान ॥
मैं मति हीन दीन हे माधव ना कछु बूझ पछान ।
मनमुख मद माया वश श्रद्धा राखो अपनो जान ॥२०॥

## राग भैरवी

क्षमा करो रघुराई ।
हौं अनजान कुमारग गामी सूझ परत नहिं राई ॥
निरबल निगुण अनाथ दीन हौं निश दिन करत बुराई ।
पाप पुण्य को भेद न जानो नाहि भजन लिवलाई ॥
आदि अंत लौं सब बिगरी है नहिं मों सों बन आई ।
दोष न गिनो कृपा द्रग देखो तौ तुमरी ठकुराई ॥
मो सम मूढ मंद को तारो तव कछुहै अधिकाई ।
जो तुम भक्तजनों को तारहु श्रद्धा कौन बड़ाई ॥२१॥

पतित पुनीत तुम्हारो नाम ।
हौं मतिमंद मूढ खल कामी कुटिल कठोर कुनाम ॥
मानुष जनम शुभग तुम दीनो सब सुख संपत धाम ।
सो मैं शिशनोदर बश खोयो ताकत धन सुत वाम ॥
पर धन हरण हेतु अति चातुर बेमुख आठो जाम ।
बिविध बिषय रस वारि मगन हों निशि दिन करत कुकाम ॥
मोर विकार गिनो मत माधव निज स्वभाव गहु श्याम ।
विरद विचार हाथ शिर राखो हे 'श्रद्धा' के राम ॥२२॥

नाथ मोरी बिगरी आज सुधारो।
तुम तज कहूँ कौन पै विनती जैसो वैसो थारो ॥
काम क्रोध लालच को सेवक हो अति कुटिल नकारो।
मिथ्यालाप पाप सों पूरण कपट कमावन हारो ॥
तुम कृपालु होय दीनो नर वपु भक्ति मुक्ति को द्वारो।
पर धन धाम नारि के रस मो सो मैं वृथा बिगारो ॥
शरणागत के तुम प्रतिपालक मो को नाहिं विसारो।
गुन औगुन मत देखो 'श्रद्धा' अपनो जान उबारो ॥२३॥

नाथ मोहे आपहि पथ दिखाओ।
हौं अनजान आधरो मूरख पडतो कूप बचाओ ॥
समझ न पडे शुभाशुभ मो को पकर हाथ निगवाओ।
ज्यों गुरु देत शिष्य को शिक्षा तैसे मोहे पढाओ ॥
चाहत हूँ पर मन नहिं लागत ऐसी जुगत बनाओ।
तुम पद त्याग आन नहिं चाहे अपनो नाम रटाओ ॥
हौं असमर्थ हाथ सब तुमरे नाहिं मोको भटकाओ।
हार पर्यो तन डार्यो 'श्रद्धा' जैसे चहो चलाओ ॥२४॥

अब मैं धरी तुमी पर टेक।
बहु विधि मन विषयन सो रोक्यो मोरी चली न एक ॥
सब अपनी समझावत देखे जग के मते अनेक।
जो तुम भावे सोई रटावो मोको नाहिं विवेक ॥
भरमत फिर्यो वृथा दसहू दिश सुने पुराण कितेक।
तुम पर डोर धरी बिन माधव भरे न दुख को छेक ॥
तुमरे बस ब्रह्मादिक सुर मुनि पशु मानुष खग भेक।
तुम चरनन रज 'श्रद्धा' चाहत यह पूरण अभिषेक ॥२५॥

## राग सारंग

प्रभु जी बार बार बलिहारी ।
वारि बूंद सो देह बनायो ता मों अंग भरे नर नारी ।।
नाशा नयन कान युत पुतली शुक्र शोण सों अधिक सुधारी ।
शेष महेष अनक पचहारे रचना लखी न जात तिहारी ।।
रंच बीज मों डाल पात युत वट विशाल राखो गिरिधारी ।
नाना बरण मयूर रेत मो नख शिख लों प्रगटाये भारी ।।
किह मुख नाथ सराहौं तुम को मंद बुद्धि हौं दीन विकारी ।
अपनो गति मति आपे जानो 'श्रद्धा' श्रुति सिमरत कहि हारी
।।२६।।

नहीं प्रभु अंत तुम्हारो पायो ।
महिमा गाइ थकित भई शारद नारद मन सकुचाओ ।।
शेषनाग नित रटत अनेक मुख तवहू पार न पायो ।
चारहु वेद अनंत कहें नित शिव सनकादि चुपायो ।।
भरसत फिरें सदा शशि सूरज चहुँ दिश चित्त चलायो ।
तुमरी थिति की ठौर न पाई अन्त अथाह वतायो ।।
कहित न बने न लिखित समावे यश ताको जग छायो ।
कहो समान कौन के 'श्रद्धा' हरि सब सो अधिकायो ।।२७।।

हरि को समझ न परत विहार ।
जल को थल कर देत पलक मों थल जल करत अपार ।।
निर्गुण गुणी धनी होय निर्धन भूपहि करत भिखार ।
बाजहि झपट चलावत चिरिया हम देखी बहु बार ।।
जिनके एक अनेक भये तहाँ सिंहहि हनत सियार ।
पंडित नगन फिरें तन मैले मुगधन मोतिनहार ।।

धन सुत दल सब घने रहिन हैं पुजियत दुष्ट अचार ।
जाकी गति मात कोऊ न जान 'श्रद्धा' ताहू जुहार ॥२८॥

नाथ तुम कैसी बनत बनाई ।
घर के लोग जगाये आपहि चोरहि दियो लगाई ॥
बुद्धिहि कह्यो सुचाल चलाओ मनहि कुचाल सिखाई ।
आग लगाय कह्यो भर पानी यह नीकी ठकुराई ॥
तन मा पाच विषय भर दीन मोहे अचाह दृढ़ाई ।
अचरज अहो दूध की पहिरू बिलिया स्याय बैठाई ॥
जो तुम करो धरा हम सिर पर कछु नहि पार बसाई ।
साम दाम को सो जहाँ 'श्रद्धा' मौन तहा सुखदाई ॥२९॥

राम यह कैसी खेल पसारो ।
खग मृग नाग मोह बस व्याकुल देव यक्ष नर नारी ॥
धर्म अधम सबी जग जानत पर कछु बन नहि आवे ।
जो हम चाहे सो होत न कबहू कीनो होत तिहारी ॥
चाहत धन धाम नारि सुत गुण यश मान घनेरो ।
राज माग सपत हम मागत तुम कर देत भिखारी ॥
हम ताकत बनवास मुक्ति पद शम दम दया विवेका ।
आछो सुनी विनती 'श्रद्धा' कर दीने घरबारी ॥३०॥

## राग धनासिरी

भाकी टरत नैक नहि टारी ।
गुणी गभीर धीर मुनि पडित सृष्टि सबी पचहारी ॥
डोलत कहा वृथा धन के हित इत उत सुध बुध हारी ।
तो सों न्यून अधिक नहि होहै जो रच दीन मुरारी ॥

अनहोनी जो होत कदाचित राम न विपत निवारी ।
अर्जुन भीम नकुल के बैठे, नगन होत क्यों नारी ॥
निर्बल मूढ बिलावल गावत बैठत शुभग अटारी ।
'श्रद्धा' बहु उद्यम गुण माते पंडित फिरैं भिखारी ॥३१॥

नर रे कहा करत चतुराई ।
जो हरि ठटी सो कबहु न उलटत क्योंकर सोचं बढ़ाई ॥
तृण तोरन को तू समर्थ नहिं कैसी करत बड़ाई ।
तार हाथ गह काठ पुतलिया जैसे चहीं नचाई ॥
यह मैं कियो और यह करहों यह महान यह राई ।
वृथा संकल्प उठत हैं मन मों होवत जो प्रभु भाई ॥
हरन भरन है नाम हरी को नर सों क्या बन आई ।
'श्रद्धा' कहा फिरत कटि बांधे तज इत उत की धाई ॥३२॥

हरि हम हार परे तुम आगे ।
उद्यम धार न कछु सुख पायो फिरे चहूँ दिश भागे ॥
रंचहुँ नांहि अधिकता तामों जो रच राखी आगे ।
ताके घाट बाध करबे को दौड़त हैं मति ठागे ॥
तुमरो कियो न होत अन्यथा हम तन मन कर लागे ।
अतरू तरे जिन्हें नहिं उद्यम तरुए वहे अभागे ॥
देत जगाकर धन सौतन को सूने रंहित सुजागे ।
अब तुम चहो करो सोई 'श्रद्धा' हम सब पौरुष त्यागे ॥३३॥

जगत मों है सौ की यह बात ।
सब कुछ अरपे हाथ गोविंद के सोवे निश परभात ॥
खान पान पहिरन की चिंता हम क्यों धारें भ्रात ।
सर्व जगत को भरता ठाकुर जीवत हमरो तात ॥

वाको कियो मिटे नहिं रचक रे मन क्यों अकुलात ।
ताके तजे ठौर नहिं पाते ज्यों तरु टूटे पात ॥
कर विश्वास आस धर हरि की तज मन के उत्पात ।
'श्रद्धा' सो हरि के हो रहिये तब सब कछु बन जात ॥३४॥

हरि की रेख न किनहुँ मिटाई ।
शिव विरंच लो सब थक बैठे आगुर नहिं सरकाई ॥
रची मिरच मो कटुता गोविंद ऊखन माहिं मिठाई ।
जल को शीत अगन को उशना नहिं किनहूँ पलटाई ॥
कौन समर्थ मिटावे भावी समझ बूझ ठहिराई ।
अचरज अहो वारि मे वन्हि मिघहु नाहिं बुझाई ॥
यश अपयश पुन गुन अर औगुन चातुरता जड़ताई ।
जो हरि दियो भलो कर मानो 'श्रद्धा' तज दुचताई ॥३५॥

## राग कल्याण

जगत सब सुपने को व्यवहार ।
देखन मात्र सत्य सब भासत मिटत न लागे बार ॥
धन संपत सुत नार मात पित बांधव मित्र अगार ।
छिन मों उपजत मिटत पलक मो कामो बांध्यो प्यार ॥
चार दिवस की खेल पसारी छिन जल अगनि बयार ।
मिले तत्व मो तत्व फूट कर कहा रहे ससार ॥
मैं मेरी मो उरझ रह्यो शठ हृदय न धरो विचार ।
'श्रद्धा' अजहु शरण गहु हरि की तज माया जजार ॥३६॥

जगत सब देखत ही छिप जाय ।
थिर नहिं रहत न जात गह्यो कछु ज्यो तरवर की छाय ॥

रोग शोक युत भोग जगत के जो इन मों लपटाय ।
छूट न सके गही मधु माखी सिर धुन धुन पछताय ।।
सिंवल फल मों करत कीर रुचि रोवत समय बिहाय ।
त्यों सुन्दर लख फस्यो जगत सुख वृथा अवधि विनशाय ।।
इंद्रजालवत खेल जगत की हम देखी बहु भाय ।
बिन हरिनाम काम कछु नांही 'श्रद्धा' सत्य बताय ।।३७।।

साधो हरि ने खेल पसारी ।
छित जलादि की पाँच गुथलिया पहले ही विस्तारी ।
सत रज तम त्रै बँटे काढ़े माया रसरी डारी ।
जो देखे सो सरप निहारे चकित भये नर नारी ।।
मिथ्या आंब जगत प्रगटायो दशो दिशा जिह डारी ।
अंडज और जरायुज हरि ने खोली चार पटारी ।।
देखन मात्र सत्य यह रचना सदा न रहे संभारी ।
जब संकोच करे वह 'श्रद्धा' एकहु बचे मदारी ।।३८।।

प्रभु यह कैसो रूख लगायो ।
ऊपर मूल अधो मुख डाली अचरज सो प्रगटायो ।।
या को आदि अंत नहिं दिखयत कौने दिवस लगायो ।
जावे कहाँ समझ नहिं परतो कौन बीज सों आयो ।।
सत्य कहूँ तो गह्यो जात नहिं असत कहुँ तो छायो ।
कांटन भरयो फूल फल भासत जिन सेव्यो दुख पायो ।।
चलतो रहे जगत है याते थिरवत होय दिखरायो ।
'श्रद्धा' महामोह को कारण बचे जो राम बचायो ।।३९।।

जगत मों चार दिनन को मेलो ।
कोऊ बाप कोऊ सुत बन बैठो कोऊ गुरु कोऊ चेलो ।।

जल को बूंद गरभ मा बैठा नख शिख अग दिखावे ।
ब्राह्मण वश्य देह को मानत है माटी को ढेलो ।।
भूषन वस्त्र त्रिविध विधि भोजन जा तन हेत बटोरे ।
सो तन स्वास विहीन होत जब मोल न परत मघेलो ।।
देख्यो जगत धूम को बादर विनसत विलम न लागे ।
'श्रद्धा' सो हरि के पद पकरो फेर न मिल है बेलो ।।४०।।

## राग कान्हरा

सबन को देख्यो ठोक बजाय ।
झूठी प्रीति मीन मव सुख के का सो रह्यो बधाय ।।
स्वारथ परे होन सब नेरे तात भ्रात पुन माय ।
अन्त समय तज नेह पुरानो देह तुरत जलाय ।।
का को लखूं परायो अपनो कतहुँ न मन पतियाय ।
हम तुम पशु पक्षी सब जग मा खेलत अपनो दाय ।।
मतन मों सगरो जग सेवक विपत न कोऊ सहाय ।
'श्रद्धा' परम सखा नारायण गहो शरण तिह धाय ।।४१।।

जगत मो बात भली है येह ।
झूठो प्रेम मरल जीवन को हरि सों करो सनेह ।।
पुत्र कलत्र मित्र प्रिय बांधव अरु यह अपनो देह ।
खान पान लों सब कोऊ अपना अत तजे सब नेह ।।
धरे रहित कछु सग न चालत मान भृत्य धन गेह ।
प्राण समान प्रेम थो जिन सों जार करें ताहे खेह ।।
सब मो मिलो न उरझो कतहुँ तज मद होह निसनेह ।
घर ही मांह परम सुख 'श्रद्धा' जैसे जनक बिदेह ।।४२।।

रे मन करत किन सों प्यार।
ध्यान घर कर देख सब तन अस्थि मांस विकार ॥
भरयो मूत्र पुरीख नखशिख चरम रुधिर असार।
कान नाशा नयन मुख मल भरे नवहू द्वार ॥
तजत कोला नांहि कालस धोइये बहु बार।
त्यों अशुद्ध मलीन यह वपु कहा उरझत गँवार ॥
थूक रारा शुक पूरयो परम अशुचि भण्डार।
करे इन सो प्रीति 'श्रद्धा' होत निपट चमार ॥४३॥

रे मन करत का पर मान।
कौन तेरो मित्र जग मों कौन वंधु सुजान ॥
एक तरु पर अनक पंछी रात काटत आन।
कौन का को मीत कहिये करत गमन विहान ॥
चढ़त एकहि नाव बहु जन होत छिनक मिलान।
पीठ दै दै चलत सब ही रहित नांहि पछान ॥
अरथ पर सब होत अपने कहित प्राण समान।
अंत वेमुख होहिं 'श्रद्धा' सिमर श्रीभगवान ॥४४॥

कासो कहौं अपनो मीत।
काल जब मोहे आय पकरयो रहे सब चुपचीत ॥
दरब गुण यश मान जब लों बनी पत परतीत।
फिरत पाछे जगत तब लों अंत तोड़त प्रीत ॥
देख संपत सब सहायक विपत मो भयभीत।
अरथ के वश जगत सगरो परम अचरज रीत ॥
सुखन मों सब बाप-टे-त दुखन सुलह न कीत।
त्याग जग का प्यार 'श्रद्धा' गाउ गोविंद गीत ॥४५॥

## राग कमाच

साधो ऐसे बनो विरागी ।
इत उत चाह रहे नहिं रंचक माया ममता त्यागी ॥
काम क्रोध मद लोभ मान छल कपट क्लेश निवारो ।
हरि बिन और न सूझै कोऊ जाति जमाती भागी ॥
सत संतोष चित्त को संयम तन मन शुद्ध सनाना ।
परम प्रेम पूजा विस्तारो रहे राम धुन लागी ॥
निंदा असतुति फुरे न कबहू भाउ भक्ति मन दीजे ।
'श्रद्धा' इस करनी बिन धिक सब माला तिलक तडागी ॥४६॥

जोगी जोग युक्ति सुन आद ।
अलख निरंजन सों मन जोरहु जीतहु काल विषाद ॥
एक अलेख भेख सब ताके पूरण आदि युगाद ।
हो अवधूत लखो वह मूरत त्यागो वाद विवाद ॥
शम दम दया धरम धन मांगो भोजन भजन सवाद ।
दृढ आसन होगा बहु हरि गुन यह अनहद कर याद ॥
इंद्रिय जीत अतीत नाथ बन आपत शिव सनकाद ।
'श्रद्धा' इस करनी बिन योगी धिक मुद्रा धिक नाद ॥४७॥

साधो यह उत्तम सन्यास ।
हरि सों मगन रहे निश वासर सब सो फिरे उदास ॥
एक अखंडित सतचित पूरण परमानन्द बिलास ।
तिह सिमरे क्षय होत बासना पुन होय मन को नास ॥
भेद भरम भय लाज निकालो गुरु उपदेश हुलास ।
मन को रंगो न चीर रंगावो त्यागो इत उत आस ॥
परम हंस परमातम पावन सब घट करत निवास ।
'श्रद्धा' तिह जाने बिन धिक सब दण्ड कमंडल रास ॥४८॥

साधो कहा बनावहु भेख ।
काम क्रोध मद लोभ मोह तज सिमरो पुरुष अलेख ॥
विष वत जान त्याग जग के सुख सब को सम कर पेख ।
छाड़ कुसंग गहो सत्संगत तब उघरत है लेख ॥
माला तिलक जटा भगवें पट धारत हो बहु रेख ।
तन को साधु साधु नहिं कहियत मन को साधु विशेष ॥
पकरो चरण शरण गोविंद की सब जग झूठो देख ।
'श्रद्धा' हरि गुण गावो निश दिन लगे रेख पर मेख ॥४९॥

जगत मों सो है उत्तम संत ।
भेद भरम भय नाशे सगरे सब सों रहे इकंत ॥
राग द्वेष मद लोभ मान छल कपट भये जिह हंत ।
धीरज धरम दया धन जा के तजे जंत अरु मंत ॥
संयम शौच संकोच चित्त को लगी प्रीति भगवंत ।
निश दिन मगन रहित अपने उर पायो प्यारो कंत ॥
आप तरे औरन को तारे कस मल हरत तुरंत ।
ताके पग रज 'श्रद्धा' चाहत करत प्रणाम अनंत ॥५०॥

## बारहमासा वैराग्यजनक

चेतर चित में सोच पराणी, यह जग झूठ पसारा है ।
चार दिनन की खेल पसारी ओड़क चलन हारा है ।
किसको कहे बिगाना अपना बजता कूच नगारा है ।
सो धन भाग पुरुष जिन 'श्रद्धा' हरी हृदय में धारा है ॥१॥

चढ़ा बैशाख विचार पियारे, किस पर आकड़ करता तूं ।
मात पिता सुत होत पराये, जिनकी खातर मरता तूं ।

अपने सुख का सब कोई गाहक किसको समझें घर का तूं।
सब को त्याग जाग कर 'श्रद्धा' नाम सिमरले हरि का तूं ॥२॥

जेठ जगत के मित्तर बांधव सभी असां परताय लिये।
विपत समय सब होन पराये भली तरे अजमाय लिये।
जग के सुख इकसार न रहते दो दिन चित परचाय लिये।
पकड़ी शरण हरी की 'श्रद्धा' सब से हृदय उठाय लिये ॥३॥

आषाढ़ हरी सुन बिनती मोरी अपना प्रेम दृढ़ाईं तूं।
झूठे प्रेम जगत के देखे कभी न फेर दिखाईं तूं।
अपनी भगति गुरां की सेवा मेरे मनो कराईं तूं।
हे जगनाथ हाथ फड़ 'श्रद्धा' मारग भले चलाईं तूं ॥४॥

श्रावण साक सनेही सारे जो तन मन से पियारे थे।
आठो पहर रहन सग फिरते कभी न दूर पधारे थे।
सो छिण असां पराये देखे ज्यों मुहृत से न्यारे थे।
एहो चाल जगत की 'श्रद्धा' चारो वेद पुकारे थे ॥५॥

भाद्रव भाव भक्ति मन दीजो सिमरो वलमल हारी जी।
पतत पुनीत दयानिध ठाकुर पावन माच बिहारी जी।
दीन दयाल गुरु प्रभु पूरण पाप हरन बनवारी जी।
येह सुन्दर जब पायो 'श्रद्धा' जग की प्रीत विसारी जी ॥६॥

आश्विन आज कुसगत लग कर उत्तम जनम गवाया मैं।
दुरलभ लाल अमोलक गण ही कौडी साथ वटाया मैं।
काच के मोल लुटाया कचन अमृत तज विष खाया मैं।
अब भी देवो सुधारक 'श्रद्धा' दीनानाथ बचाया मैं ॥७॥

कातक कौन कहूँ अब अपना सब जग चल्लन हार सखी।
साच छोड़ जो झूठ खरीदे सो जन मूढ़ गवार सखी।
अमृतनाम अमोलक हरि का बैठ इकंत उचार सखी।
जग का नेह खेहवत 'श्रद्धा' सिमरो भगवत नाम सखी ॥८॥

मगशिर में इक नेम सुनावां हरदम हरिगुण गावांगा।
वेद विहीन जो होवे मारग कभी ना पैर टिकावांगा।
परमातम पूरण बिन अपना कहीं न सीस झुकावांगा।
श्री यदुनाथ कृष्ण विन 'श्रद्धा' कोई न मीत बनावांगा ॥९॥

पोष परम गति पावे सोई जो जन हरि गुण गावे जी।
जनम जनम के कसमल काटे अन्त वैकुण्ठ सिधारे जी।
विषवत विषे विसारे सारे कपट कलेश मिटावे जी।
'श्रद्धा' से हरि के पद पकड़े सतसंगति चित लावे जी ॥१०॥

माघ मगन मन निरमल हूवा हरदम रहे अनंद में रे।
काम क्रोध मद लोभ मान छल कपट शोक भये मंद मेरे।
सम दम दया धर्म धन पायो हरि का भजन पसंद मेरे।
और मीत सब विसरे 'श्रद्धा' मीत भये नन्द नंद मेरे ॥११॥

फागुन फूल रही फुलवारी ऋतु वसंत सुख दैय्या है।
चिंता चाह मिटी सब मन की मंगल मोद वधैय्या है।
झूंठे मीत तजे अब मनसो कौन मात पिता भैय्या है।
'श्रद्धा' प्रभू टेक इक मेरो मुक्ती राह दिखैय्या है ॥१२॥

(सं० १९३२ की रचना)

॥ इति द्वितीय भाग ॥

## सत्यधर्म मुक्तावली

### तृतीय भाग

### आरती

(सं० १९२०)

बंदौं हित चित लगाय श्रीपति रघुराई ।
ध्यान धरूं आठ याम
पूरण सब होत काम
जन्म मरण नाश होत मिटत पाप छाई ।।बंदो।।
काल फास गई दूर
भेद भ्रम भये चूर
जब से गुरु दया कीनी छीनी जड़ताई ।।बंदो।।
लागी सत्संग प्रीति
भूली सब कपट रीति
रामनाम धार रिदे दुवधा बिसराई ।।बंदो।।
जाके गुण गाय गाय
वेद भी न भेद पाय
सो प्रभु सब ठौर मिलो पूरण सुखदाई ।।बंदो।।
छूटे सब काम क्रोध
परगट भये ज्ञान बोध
टूटे सब आल जाल सत शरण पाई ।।बंदो।।
पाय के मनुष्य देह
हरी सो न कीनो नेह
कौन काज राज भाग जग की प्रभुताई ।।बंदो।।

जो जन हरि नाम हीन
विषयन में रहत लीन
धन कुल रूप तिसे झूठी चतुराई ॥बंदो॥
मांगो हरि नाम दान
दीजो करुणा निधान
राखो शिर हाथ नाथ 'श्रद्धा' शरणाई ॥बंदो॥

## माधव मंगल

(विवाह में वर-वधू अग्नि-भ्रमण के समय गाने का मंगल)

जय माधव मंगल रूप वरम
भव भीत विनाशक शांति करम् ।
अति मान मदादिक नास तबी
जन श्रीवृजनाथ नमंत जबी ।
जय कृष्ण कलानिध गोप सखे
तुमरी गति नांह बिरंच लखे ।
धर मोरसिरे निज हाथ वरम
दस दोष मिटे भव पासि टरम ।
सिर शोभत जास करीट कला
झलके सम कुण्डल द्वै विमला ।
अलके बिथुरी सुथरी मुखपै
दृग कंज खिले मनो भृंगथ पै ।
अधरारुण की छवि दांत पड़े
मनो दाड़म फूटत हास करे ।
मुख पंकज बास सबोल झरे
जग त्रय विध ताप समूल हरे ।

शुभ श्यामल मूरत बैंन लिये
पटपीत भरे नर वेष किये।
तहँ वेद कहे अजर अमरम
निर्वैर अजून परातपरम
धरनी पर जो जिह देह धरी
धर्मादि धरे पर पीर हरी।
खल मतन के कुल दुष्ट हरे
जन पाप भरे वह पार करे।
अघ ओघ भजे जहँ नाम भले
तह पाद सरोज अथ लोक सजे।
अति भाग भले तिन गोपन के
हरि नाचत हैं बस हो जिन के।
सब वेद पुराण बतावत हैं
हरि भक्ति अधीन जनावत हैं।
तुम पूरण ब्रह्म सनातन हो
हरि आद अनत पुरानन हो।
कँह की मति जो उपमा उचरे
सब वेद अनत अनत ररे।
इस कृष्ण कलानिध के पद की
महिमा कहतो अलि शेष थकी।
यह जो उपमा उचरे हित सो
मद मोह विकार छुटे चित सो।
तिन के पद को कर जोर नमो
मृत स्वास धरे श्रद्धा हितमो ॥२॥

(स० १९२०)

## यथार्थ पूजा

रूप न रेख निरंजन जोऊ ताको कहा सनाना ।
विन शरीर ठाकुर हित कैसे बस्तर भूषन नाना ।
सीस आकाश पताल पैर कित चंदन पुष्प चढ़ावहूँ ।
भूख प्यास विन सदा विराजै काको भोग लगावहूँ ।
नासा नैन न जाके कोऊ धूप दीप कितजोरो ।
कान कला नहिं जिस ठाकुर के काहे बजंतर ढोरो ।
घटघट पूरण है परमातम कोऊ न जानहु दूजा ।
'श्रद्धा' सहित सबन को पोपहु मुक्ति पंथ यह पूजा ॥३॥
(सं० १९३७)

## हरिनाममाला चौपाई

राम कृष्ण गोविंद गोपाल ।
केशव माधव दीन दयाल ॥
विष्णु जिष्णु शिव शंभु गणेश ।
नारायण हरि ईश महेश ॥
शंकर प्रभु परमेश्वर पालु ।
महादेव सर्वज्ञ दयालु ॥
ब्रह्म वरिष्ट वरद बलवान ।
वासुदेव बलभद्र महान ॥
लोकनाथ विभु पूरण करता ।
सर्व समर्थ स्वयंभू भरता ॥
आदि अनादि अरूप अजून ।
अज अविनाशी नित्य अनून ॥

निराकार निरभय नर रूप ।
निर्गुण सगुण निरंजन भूप ॥
जगत नाथ जगदीश सुरेश ।
कलमल हारी हरत क्लेश ॥
निर्विकार निर्वैर प्रकाश ।
पावन शुद्ध स्वरूप निराश ॥
आतम अजर निरीह असंग ।
अघहर शक्त अगाध अभंग ॥
पतित पुनीत परम पद दायक ।
प्रेरक पालक सत सहायक ॥
अमित अनंत ऋषीश्वर स्वामी ।
पुरुष पुरातन अंतरयामी ॥
अचल अलक्ष्य अगोचर दाता ।
आदि पिता अद्भुत सुखदाता ॥
अग्नि इन्द्र यम वरुण कुबेर ।
शक्ति धनेश चन्द्र मुनि नर ॥
विश्वनाथ विश्वेश्वर वीर ।
भग भगवान सखा गुरु धीर ॥
अष्टोत्तर शत नाम उचारे ।
'श्रद्धा' सहित गम अघ हारे ॥४॥

(सं० १९७०)

## पद वैराग्य मे

आओ सकल जन हरि गुन गाओ रे ।
तात मात सुत सखा सनेही जानो स्वप्न समान रे
उपजत मिटत पलक नहिं लागत तज तिन को सतसंगत धाओ रे ।
॥आओ०॥

लटपट पाग वकत सुख अटपट लाज न करत अजान रे ।
पल पल घटत मिटत सुख क्षण क्षण अजहुँ समझ मन भजन
लगाओ रे ।।आओ०।।

जब लग देह स्नेह सभन को जब निकसत हैं प्रान रे ।
झट पट पटकट अग्नि चिता में ताते हरि पद मन ठहराओ रे ।
।।आओ०।।

जागो जतन करो तरबेको भाषत वेद पुराण रे ।
श्रद्धा सहित जपो निस वासर राम नाम नह कबहूँ भुलाओ रे ।।
।।आओ०।।५।।

## पद ज्ञान में

वस्तु अगोचर पाई सत गुरु किरपा से ।
वेद कितेब छिपावन जिसको आपे सन्मुख आई ।।सत०।।
पूर्व पश्चम ढूंढ ढूंढ कर पच पच मरी लुकाई ।
सो ठाकुर मैं घट घट जाना द्वैत उपाधि मिटाई ।।सत०।।
वाद विवाद उठाये सारे सकल एकता छाई ।
घर ही मांह निरंजन देखा जात सिफात उठाई ।।सत०।।
कर्म उपासन योग अराधे भरमत औधि विहाई ।
ज्ञान गुफा जब खोली 'श्रद्धा' सोहं सुरत समाई ।।सत०।।६।।

## पद

नहीं कहन की बात सखीरी मत पूछौ ।
पी मिलाप सुख कैसे भाखूँ भावन में उतपात ।।सखी०।।
जाके विरहं महा दुख पायो तजे मात पित भ्रात ।
सो सबगी श्याम सलोनो कंठ लगायो रात ।।सखी०।।

विधि निषेध की मिटी कल्पना फुरे न जाति जमात ।
एक अखंडित भासत है सब जड़ चेतन संघात ।।सखी०।।
तन मन सीतल भयो हमारो मिटी मिलन की घात ।
गुरु चरणन में 'श्रद्धा' कीना पाया सुख विख्यात ।।सखी०।।७।।

## पद

मुझे आज मिली सुध हर की ।
सतगुरु मोपर किरपा कीनी खोली खिरकी घर की०।।
तीर्थ वरत नेम बहु कीने द्वैत उपाधि न सरकी०।
सत्संगत मिल संशय भागा छानी भ्रम की घर की०।
विष विकार भरे जिनके मन सो जन जानो नर की०।
जीवत मुक्त भये हम पल में देखी छवि हरदर की०।
सम दम दया विवेक प्रकाशे नहिं सुध इधर उधर की०।
'श्रद्धा' शीतल नैन निहारी सूरत श्याम सुन्दर की०।।८।।

## भजन

गुरु मोहि पूरण ज्ञान बतायो ।
मम घट पूरण जोत पछानी भ्रम भय सब बिसरायो ।गुरु०।
द्वैत उपाध मिटी अब मन की सब घट राम जनायो ।
अपना आप लख्यो अरु सब जग सत् गुरु सत्य दृढायो ।गुरु०।
नाम रूप सब कल्पित जाने वरणाश्रम छुटकायो ।
सत्ता मात्र ब्रह्म मन पाई बंधमुक्तभ्रम धायो ।गुरु०।
अहो महान अनंद भया अब एक अटल पद पायो ।
'श्रद्धा' शांत दई संतन ने शोक कलेश मिटायो ।।गुरु०।।

## पद

अपने सतगुरु पै मैं बार बार बलिहार ।
द्वैत उपाधि मिटाई सौकन अब मिलाया भरतार०।
किस को कहूँ बिगाना अपना सभ में है करतार०।
अपना आप निरंजन पूरण दिखता यह संसार०।
दया क्षमा अरु मुदता समता सखियां मिलियां चार०।
पाया कंत सुहागन होई मारी द्वैत छनार०।
जीव ब्रह्म की मिटी कल्पना तप तीरथ सभ भार०।
'श्रद्धा' श्याम मिले हर रंगी बेड़ा होया पार०।।९।।

## होरी पद

आज हमारे सतगुरु आये मिट गई मन की पयास री ।
हर हर नाम अमी रस पीना सदा हुलास बिलास री०।
चलो सखी मिल खेलिये होरी सम दमादि की डारो रोरी ।
प्रेम वसंत खिले चहुँ देसन कटी लाज अय फांस री०।
ताल मृदंग बजाओ प्यारे भागे आज भरम भय सारे ।
तत्वमसी की तत्थई बोलो खेलो कर उपहास री०।
माया ममता डरी जिठानी तृष्णा ननद आप सकुचानी ।
'श्रद्धा' श्याम सलोनो पायो मरी अविद्या सास री०।।१०।।
खेलो होरी संत पियारे आज हमारे फाग रे०।
प्रभु अविनाशी घर में पाया गुरु मिल मैं बड़ भाग रे०।
आज वसंत कंत गल लागो बुझी विरह की आग रे०।
संत प्रताप फुआरे छूटे मिटे भरम के दाग रे०।
हर हर नाम काम सब पूरे गावो अनहद राग रे०।
"श्रद्धा' श्याम मिले हर रंगी पायो परम सुहाग रे०।।११।।

## रेल की गजल

सटेशन जिस्म है मेरा नफस की रेल चलती है।
पकड़ सक्ता नहीं कोई कि जब फारम निकलती है०।
नहीं आती है जब तक तार घुर से सैंकलियर की।
करो दिल की सफाई फिर जरा फुरसत न मिलती है०।
टिकट नेकी का हो जिस पास वुह अंदर पहुँचता है।
वगैरज टिकट के दुनिया खड़ी ही हाथ मलती है०।
बजा करती है मोटी रात दिन या मौत की लोगो।
बेदों के वास्ते हर दम पुलिस दर पै टहलती है० ।
करे नेकी अगर ज़ायद तो पावे दरजहे अव्वल।
टिकट लेलो अभी कुछ देर है इजन बदलती है०।
गया बचपन जवानी ने बजाई दूसरी घंटी।
चलो जल्दी नहीं तो तीसरी घंटी उछलती है०।
उठा असबाब अपना एक दानाई का चढ़ो जल्दी।
नहीं तो पछड़ जावोगे घड़ी इस की न टलती है०।
खड़े रह जायेंगे चुपचाप फाटक पर जो गाफिल हैं।
वुह चलदी रेल 'श्रद्धा' अब भला क्या पेश चलती है०॥१२॥

इसके अनन्तर सम्पादक तुलसीदेव ने पण्डित जी द्वारा रचित निम्नलिखित दो पंजाबी पहाड़ी बोली में कवित्त दिये हैं—

(१) अवो देश म्हात्मा विचारी के निहार मुआ
कुछ गये चन्द्र दादा धन माल छड्डी के।
तुभी नही मस्त रता जगदे मवादा वास
मौत जो विसारी बैठा मत्तो वाद गड्डी के।

ईश्वरे दा नाम अज्ज धारिआ मनां दे विच्च
करिगा पवित्र तुझो नरकां ते कढ्ढी के।
संता अते साधुआं दी संगती गलावे वेद
श्रद्धा वहीन जय मारू गला वढ्ढी के ।।

२) इत्थू उत्थू जित्थू कित्थू मिजो दिक्खा करीदा
है साहिबां गलाया जिस ईश्वरा विचारी के।
जीव अते ब्रह्म एदा भेद म्है की न्हई रहिया
वेदे मिजो रूप म्हारा दसया नितही।
जपी जपी नाम मते मान्हू मरी खप्पी गये
ईश्वरे दा भेद कुसु पाया मना धारी के।
चरणा जो गुरां दे मनाय करी श्रद्धा ते
लद्धड़ा गुपाल मिजो भेद भ्रम टारी के ।।

(पद वैराग्य से लेकर यहाँ तक सं० १९३७ की रचना है)

## कृष्णोपमा

ऐरे मन मेरे तू अंधेरे में परो ही रहत,
जाग के अभाग ब्रज चंद को निहारे क्यों न।
तारी ब्रज ग्वानरनी, अवारी भीलनी सी नारी,
भारी है भरोसो गिरधारी को उचारे क्यों न।

ऐरे जम राज निज द्वारे के किवारे देले,
लोह खम्भ कौन काज 'श्रद्धा' उखारे क्यों न।
पाप दल दलवे को कृषण जो पधारे जग,
एरे चित्र गोप अब दफतर को फारे क्यों न ।।१।।

पापी हूँ जरूर काम क्रोध धूर पूर पूरयो,
तू जो कह्यो चात मोह मोते ही कहाय ले।
नारी सुत वित मो सदा ही मन रह्यो घेरो,
लोभ मोह चेरो मेरो औगुन गिनाय ले।
यद्यपि हूँ ऐसो पर कृष्ण 'श्रद्धा' है नेक,
अजामिल साथ मोरो मिसल मिलाय ले।
आय ले डराय ले वलाय सहे दंड तेरो
एरे जमदूत तू समाज को उठाय ले ॥२॥

जाको हम राजा ते प्रजा को कहा बाकी रही,
ताको शयाम आस पास कौन दिखरावेगो।
सपन समाज ब्रजराज को निहारो अब,
पुरहूत भाज कैसे चित्त को लुभावेगो।
एरे जमदूत पूत जसुधा को संग मेरे,
'श्रद्धा' की सुने तो न मोसो गह पावेगो।
करे न गरूर दूर व्है के समझावो मोह,
हाथ जो लगावे तो भलो ही पछतावेगो ॥३॥

बांसुरी बजैया भैया बलराम जू के
गैया बनमो चरैया वाको विपता हरा करें।
छाड आन पौर को भजैया जो कन्हैया जू के,
जसुधा के छैया को एकत हो ररा करें।
ऐसे काल बयाल या को नाम स्वपने ही कहो,
'श्रद्धा' सो कहो तो न बंधन रहा करें।
शयाम जो कृपा करे डगा के त्रिदेव वा ते,
हा करे न दंड यमराज को भरा करें ॥४॥

एरे मन मेरे सांस सांस समझाऊँ तोहे,
तू तो बृथा समय को न रंचक बिगारा कर।
नर देह पाई तो कमाई कछु करें क्यों न,
नंद के लला को नाम जोभते उचारा कर।
ब्रह्मा शिव इन्द्र आदि कर हैं अगोत तेरी,
'श्रद्धा' भाज जै है चित्र गोप घर तारा कर।
पाप को न रहे पंक अंक बैठ शयाम जू के,
को है दंड दाता जमराजै ललकारा कर ॥५॥

इसके अनन्तर सम्पादक तुलसीदेव ने पण्डित जी द्वारा रचित पंजाबी बैत में रामायण के निम्नलिखित छः छन्द दिये हैं। सम्पादक के अनुसार ये पण्डित जी की बाल्यकाल की रचना हैं।

अलफ आन अजुधिआ जनम लीता,
सभी राक्षसांदा कुफर तोड़िआई।
विश्वामित्र दा यज्ञ संपूर्ण करके
राजा जनक दे धनुष नू तोड़िआई।
परशुराम आया नाम सुन के,
क्षत्री कला खेंच के पीछे नूं मोड़िआई।
श्रद्धाराम केकई ने कीता,
मंदा रामचंद्र बनवास न तोरिआई। (१)

बे बचन केकई दे मंन लीते,
रामचंद्र बनवास नूं जामदे मी।
दुखी होए संसार दे लोक सारे,
सीआराम ते राम ध्याउंदे सो।

राम लछमन सीआ नू सग ले गये,
लोक शहर दे शोक मनाऊँदे सी ।
श्रद्धाराम नर नारी पाताल रोवे,
रामचद्र बनवास नू जाम दे सी । (२)

ते तदो जा मात कोशल्या ने,
सोने लाये लीते नैनी नीर लोको ।
रोवे मात कौशल्या रानी राजा,
रामचद्र दा देख शरीर लोको ।
कर मे धनुप ते लायो सधूर माथे,
जटा बधीम्रा बक्ल दे चोर लोको ।
श्रद्धाराम नर नारी ये देख रोवें,
रामचद्र दा भेख फकीर लोको । (३)

से सीस पर पिता दे वचन धर के,
रामचद्र बनबाम नूँ उट्ठ धाये ।
राजा खडा चुबारे पर देखदासो,
रामचद्र ना ओम नूँ नजर आये ।
खाधीगश, वेहोश हो तुरत गिरिया,
प्राण त्यागदे सार बैकुण्ठ जाए ।
श्रद्धाराम पहुँचे पचवटी मन्दर,
तुरत फुरत अगस्त न सीस नाये । (४)

जीम जदो फिर राम जी सग सीता,
पचवटी अन्दर डेरा आन करियो ।
जाणी जाण भगवान महराज तू हैं,
जिना भूलना चित्त पर खेद करियो ।

पंछी सीस पर आन विलास कर दे,
साधु संतां ने आन निवास करियो ।
श्रद्धाराम आया भरत नाम सुन के,
औगुण हार ने चर्ण पर सीस धरियो । (५)

हे इथ वन्ह के आगे हैं आन खड़दा,
छड़ छोड़ डेरा कित्थे जाइये जी ।
जानी जान महाराज भगवान तू हैं,
हुकुम होवे तां टहल कुमाइये जी ।
तेरे वाझ अयुध्या है शोक वीरा,
चलो पिता दे कर्म कर आइये जी ।
श्रद्धाराम है नाम आधार तेरा,
चलो सृष्टी नूं तृप्त कर आइये जी । (६)

## भजनों में महाभारत

(युवा आरम्भ की रचना)

युधिष्ठर यज्ञ रचियो अति भारी ।
देश देश के भूप बुलाये सकल बंधु नर नारी ।
मुनी मुनीश्वर देव बुलाये होर प्रजा सभ सारी ।।
वेदी रची वेद विध कीना सामग्री विस्तारी ।
जय जयकार चार दिश बोले धन राजा बलकारी ।।
करी एक चतुराई ता छिन सभ के छलने हारी ।
जल में थल थल में जल भास्यो अद्भुत खेल पसारी ।।
दुर्योधन जब आओ तब ही सारी सभा निहारी ।
थल में चीर उठाये अपने जल में दीने डारी ।।
सारी सभा हँसी देखत ही द्रुपदा देख पुकारी ।
वह अंधा अंधे का बेटा 'श्रद्धा' बुद्धि बिसारी ।।१।।

सुनत ही दुर्योधन घबराये

अहो आज पाडव मद माते मम पै लोक हँसाये ।
हम मूरख अपना ग्रह तजके क्यो इन के घर आये ॥
यह कारण है द्रुपद सुता को, नीचे नैन लजाये ।
भरी सभा मे कहे अधला तीक्षण बचन सुनाये ॥
कठिन नेम धारियो दुरयोधन, यह सकल्प उठाये ।
देउ कष्ट बनवास, पाँच को तो यह बहु दुख पाये ॥
इनका राज आप हर लेऊँ बन बन फिरैं सिताये ।
'श्रद्धा' नगन द्रोपदा होवे जे हम जननी जाये ॥२॥

भरिया दुर्योधन मन मान

दुस्सासन से बात विचारी कीनो सर्व बखान ।
भरी सभा मे हुवा निरादर हमरा मरण सुजान ॥

## गोपियों का बिरह बारहमासा

चेत चितमनी लाग सखीरी मैं बिरह सिताई ।
री मैं कुटिल कुचील कुचाल हरी ने मनों भुलाई ।
छिन छिन रहा उदास पियास हरि दरशन ताई ।
री मैं श्रद्धा' भगन विहीन हरी के मन ना भाई ॥१॥
चढे बसाख विदेश गये प्रभु मन के मेली ।
री मैं सूनी छेज बिछाय तडफदी रही अकेली ।
सुपने मे गल लाय सुत्ती री मैं 'श्रद्धा' बेली ।
री मैं जब जागी मद भाग बिलखदी उठी अकेली ॥२॥
जेठ जलाई दाम सखी ना भेजी पाती ।
री मैं रो रो करौं पुकार बिरह ने जामी छाती ।

री मैं जे जाना दुख होत कत्रो नां प्रीत लगाती ।
री मैं 'श्रद्धा' मन की वात नहीं कह सकां संगाती ।।३।।
हाढ़ हमें नहिं चाह कहो भामें कुछ कोई ।
री मैं शाम सुन्दर के हेत जगत की लाही लोई ।
नां कुछ लाज ना काज अटक सभ मन की खोई ।
री मैं 'श्रद्धा' सभ सुख त्याग वैरागन हर की होई ।।४।।
सावन सुन्दर साज समा वर्षा का आया ।
री मां वादल की घन घोर मोर ने शोर मचाया ।
घर घर आज आनन्द भये जग मंगल छाया ।
री मैं 'श्रद्धा' अति दुखियार शाम बिन दरद सवाया ।।५।।
भादों भड़की आग शाम विन कौन बुझावे ।
री मैं उठ उठ देखां राह शाम मेरा कद घर आवे ।
रो रो करां पुकार कि नां कोई प्रीत लगावे ।
री मां ःरी प्रीत की रीत कि 'श्रद्धा' कूक सुनावे ।।६।।
अस्सू अती उदास कहाँ ना मैं किसनू माये ।
री मैं भर जोवन के जोर कि हार सिंगार लगाये ।
शाम विराजे दूर कौन रस रंग दिखाये ।
री मैं 'श्रद्धा' हिरदे धार कि अपने आप मिटाये ।।७।।
कातक करम बहीन शाम मैं आप रुसाया ।
री मैं विरछ अंब का काट आक का रूख लगाया ।
रो मां भुजां पसार कीया मैं अपना पाया ।
री मैं 'श्रद्धा' अपने हाथ पीया परदेश पठाया ।।८।।
मघर मैं क्यों जनी वनी मेरे भाग नी माये ।
री मैं सुख नां देखे मूल जनम दी वह दुख पाये ।
उड़ जामां उस देश जहाँ मेरे हरजी छाये ।
री मैं 'श्रद्धा' किस विध उड़ां न हरने पंख लगाये ।।९।।

पोह पवन अति सीत लगे अब पड़ने पाले ।
री मैं करवट लेले उठा रात मेरी कौन निकाले ।
सो बड भाग न नारि जिन्हों घर कंत सुखाले ।
री मैं 'श्रद्धा' अति दुखियार शाम बिन कौन संभाले ॥१०॥
माघ मेरे संग प्रीति बहुत करदे थे जानी ।
री मैं तब मातीमद भाग फिराती गरब दीवानी ।
अब तड़फा दिन रात जिमे मछली बिन पानी ।
री मैं पीय बिछुड़न की सार 'श्रद्धा' आज पछानी ॥११॥
फागन फूल बसन्त खिले हर जी घर आये ।
री मैं बिरह क्लेश मिटाये भुजा गह कंठ लगाये ।
घर घर आज आनन्द भये जग मंगल छाये ।
री मैं 'श्रद्धा' देऊँ असीस कि जिन मेरे शाम मिलाये ॥१२॥

## सिद्धांत बारा मास

चेत चपल सब भोग रोग उपजावत हैं भारी ।
उन से दृष्ट उठाय प्रीति परमेश्वर पर धारी ।
चित्त मत संगत को धाया ।
'श्रद्धा' सहित बिचार राम जी घर ही मे पाया ॥१॥
माह बिसाख विशेष धूप ज्यो ज्यों पडने लागी ।
सुन सुन कथा पुराण प्रीति व्रत तीरथ की जागी ।
नाम का जप मन को भाया ।
'श्रद्धा' सहित बिचार राम जी घर ही में पाया ॥२॥
जेठ जलावे भान फेर हम पंचागिन तापी ।
कियो योग अष्टांग इडा पिंगल सुखमन थापी ।
वृथा हम मन को बहकाया ।
'श्रद्धा' सहित बिचार राम जी घर ही मे पाया ॥३॥

मास आपाढ़ अनंत चले लो ग्रीष्म की ताती ।
तज के गृह बन बसे भेष हम धारे बहु भाँती ।
जगत को लूट लूट खाया ।
'श्रद्धा' सहित विचार राम जी घर ही में पाया ॥४॥
श्रावण सीतल पवन चित्त पर छाई हरयाली ।
हर मिलने के हेत वहुत सा विद्या पढ़ डाली ।
नहीं कुछ सुख मन मे छाया ।
'श्रद्धा' सहित विचार राम जी घर ही में पाया ॥५॥
भाद्रव भड़की आग हमारी सुध बुध सब भागी ।
यंत्र मंत्र अर तंत्र रसायन को तृष्णा जागी ।
अन्त को हाथ न कुछ आया ।
'श्रद्धा' सहित विचार राम जी घर ही में पाया ॥६॥
आश्विन अधिक उदास कोई कहे राम बसे जल में ।
काठ पषान आकाश कोई कहे है बन में थल में ।
साच नहीं किनहू वतलाया ।
'श्रद्धा' सहित विचार राम जी घर ही में पाया ॥७॥
कातिक कव हर मिले ज्ञान शशि कैसे परकाशे ।
जन्म मरण कव मिटे द्वैत का संशय कब नाशे ।
गुरु ने मारग दरसाया ।
'श्रद्धा' सहित विचार राम जी घर ही में पाया ॥८॥
मगसिर मन तन सीत हमारी तपत मिटी सारी ।
बन तृण पर्वत आस पास सभ देखे गिरधारी ।
द्वैत का घुँघट सरकाया ।
'श्रद्धा' सहित विचार राम जी घर ही में पाया ॥९॥
पौष पिया गल लाय हमारे पाले सब भागे ।
संत शरण में जाय हमारे भाग आज जागे ।

नाद सोऽहं का बजवाया।
'श्रद्धा' सहित विचार राम जी घर ही में पाया ॥१०॥
माघ मग्न मन भयो फिरी चहुँ दिश सीतलताई।
आज सफल मम जन्म धन्य पित मात सखा भाई।
उलट मैं घर अपने आया।
'श्रद्धा' सहित विचार राम जी घर ही मे पाया ॥११॥
फागुन फूल बसंत फुहारे आनन्द के छूटे।
उडत अबीर गुलाल कुमकुमे समता के फूटे।
रंग मुदता का बरसाया।
'श्रद्धा' सहित विचार राम जी घर ही में पाया ॥१२॥
प्रेम सहित जो पढे सुने या बारामासी को।
जीवन मुक्त प्रकाश मिलावे हर अविनाशी को।
वेद ने सार यही गाया।
'श्रद्धा' सहित विचार राम जी घर ही मे पाया ॥१३॥
(सं० १९३७)

## अथ मनमोद नाम द्वादश मास

### दोहा

चढे चैत्र चित चैन नहि, टप टप टपकत नैन।
भूंजू बिरह कृसानु मे, पी बिन सुख दुख दैन॥

### छन्द

चढ्यो अब चैत्र अकथ दुख दायक।
छूटहि नाहिं पदारथ मायक।
देखूं कौन कोई कल घायक।
फारहि हृदय बिरह के सायक।

पी बिन और न कोई सहायक ।
चलहूँ आज मनाय विनायक ।
पिय की सार में ।।

अरी हौं विरहं अग्नि ने दही ।
नर्क स्वर्गादि भीति ने गही ।
मुहे अब जीवन चाह न रही ।
समुद्र अनेक पक्ष के वही ।
पुराणन वेदन भाष्यो यही ।
अरी तू नहीं सत्त है वही ।
सकल संसार में ।

दुखावे जाति पाति की लाज ।
वृथा दुखदायक सर्ब समाज ।
भ्रमावें चिंता मुहे अकाज ।
भाग गये मात पिता सुत आज ।
करे मैं वहुत नेम व्रत साज .
पड़ा अज्ञान समुद्र जहाज ।
गिरी दुख धार में ।

अरी हौं गहौं कौन की शरण ।
कटे जित जन्म बंध दुख मरण ।
गहौं कब हित सों पीके चरण ।
पटक जग जाल मोक्ष सुख हरण ।
लखूं कब आतम सुख की धरण ।
होय बिन शरधा कबी न तरण ।
लख्यो युग चार में ।।१।।

दोहा—वैशाखी विसरियो मुहे, घन सपत सुख भोग।
कटक वत हग मे भये, 'श्रद्धा' समरे लोग॥

छन्द

बिसर गये सार शरीर अनद।
गई वन विचरन की स्वच्छद।
तजे दुख द्वैतमोह् अर द्वद।
करे अनगिनत कर्म शुभ मद।
मिटावो विरह् कष्ट दुख कद।
जो छूटू रोग से॥

करे व्रत नेम यज्ञ तप दान।
ध्यान कर खेंचे ऊपर प्राण।
भई तत बुद्धि वृत्ति गलतान।
लियो अभ्यास सिंघु सनान।
काम क्रोधादि करे सब दान।
भयो अजहू न द्वैत भ्रम हान।
न छूटो ब्योग से॥

कोई कहे तजो अन्नदुख भरो।
चित सेवित सुतादि सुख हरो।
तपो पचाग बार मे गरो।
घरो तप तामस दुख विसतरो।
खान पानादि समर्पण करो।
मिले तब पी आनद सो भरो।
कर्म सयोग से॥

भरो हौं इन विधान मे लगो।
मीत की सुध न कहूँ विध पगो।

भयानक रौचिक वचनन ठगी।
स्वर्ग भोगादि चाह चित जगी।
लगी मग कर्म कांड के भगी।
ज्योति उर आशर मिलन की जगी।
हटी सुख भोग से ॥२॥

दोहा—जेठ जरी तप तेज से, मिली न पी की ठौर।
ढूंढ थकी घरघर सखी, कौन मित्र की पौर ॥

छन्द

जेठ जनमादि दुःख सितई।
पीड़ भई काल भीत सुन नई।
दिनो दिन देत कष्ट मुहि दई।
अरी हौं हाय गईरी गई।
भूत भ्रम बाँह पकर मम लई।
सखी हौं जीवत मृत्तक भई।
कठिन वैराग में ॥

फिरे आनंद सकल नर नार।
करत हैं विविध भाँति शृंगार।
पटंवर भूषादि शुभ धार।
करे दिन रैन सर्व व्यवहार।
मुंहे व्यवहार हलाहल हार।
लगे मुहि देख देख तरवार।
बिरहं की लाग में।

विखर रहे केश बिगर गयो रूप।
पड़े सब सुख समाज मम कूप।

शिथल भये अंग गात भयो सूप ।
फौज ले चढ्यो विरह को भूप ।
गई मैं हार जनम को जूप ।
वृथा भई मानुष देह अनूप ।
अलाभ अभाग में ॥

रहियो जब कुछ न समागम छोर ।
सुन्यो तब सन्त साधु की पौर ।
गहो हम जाय शीघ्र वह ठौर ।
कह्यो कर जोर शरन नहिं और ।
गहे तुम चरण जगत तज दौर ।
चढाई 'शंकर' पग रज पौर ।
मंगल भय त्याग में ॥३॥

दोहा—अब आषाढ में संत पग, सिमरो सदा सप्रीत ।
तिनके मुख में बचना, सुन्यो वाक बिनमीत ॥

छन्द

यहाँ बिन मृतन दूसर बैन ।
जपत हैं नाम मित्र दिन रैन ।
नसे सुन लोभ मोह मद मैन ।
प्रेम में पुलक गात जल नैन ॥
भई हौं पावन यही सुबैन ।
संत सतसंग महासुखदैन ।
परी सुध पीय की ॥

लगी सतसंग प्रीत दिन रात ।
गिरो गृह काज हमारो खात ।

छुटे भ्रम वर्णाश्रम उत्पात ।
नाम बिन और न कछू सुहात ।
बरज कर थके मात पित भ्रात ।
मुंहे बिन नाम न दूसर बात ।
बधो रुचि जीय की ॥

बिवेक वैरा पाहरू जगे ।
मृषा संताप चोर सब भगे ।
समादिक साधन प्रगटन लगे ।
द्वैत भ्रमभूत पलक ना तगे ।
चित संकल्प गए सब ठगे ।
सुदीपक आ विचार के जगे ।
लगी टक हीय की ॥

संत सत्संग मिले सुख होय ।
दुःख दरिद्र भजे सभ रोय ।
भजे तम जगे ज्ञान की लोय ।
होय धन भाग रहे तित सोय ।
कपट छल द्वैत मोह मद खोय ।
प्रीति कर 'धाशर' मग में जोय ।
राम ज्यों सीय की ॥४॥

दोहा—श्रावण सीतल नैन मम, भये संत पग देख ।
'धाशर' धिक सतसंग बिन, वरणाश्रम कुलभेष ।

छन्द

सखीरी चढ़ो सु श्रावण मास ।
भये चहुँ ओर मेघ प्रकाश ।

मनादिक चातक खोई प्यास ।
हुए चहुँ देशन विविध हुलास ।
प्रेम के जलध भुवे आ पास ।
गई मिट तपत देह अध्यास ।
दई भ्रम धूलरी ।।

अरी अब लगी प्रेम की झरी ।
करक कर बिज्जअरी सिर परी ।
धरी हम सरन गुरुन की खरी ।
बजी अनहद सितार खजरी ।
समाधिक घटा स्याम उल्लरी ।
इन्द्रगुरु देव वृष्टि सुख करी ।
मुहे अनुकूल री ।।

भयोरी आनद चित्त मयूर ।
हुए सभ शोक मोह भ्रम दूर ।
परी अविवेक शत्रु सिर धूर ।
काम क्रोधादि कूर भये चूर ।
चढायो मस्तक भय सधूर ।
भयो सब गात प्रेम भर पूर ।
मिट्यो भ्रम मूलरी ।।

दया तपदान यज्ञ इसनान ।
काव्य व्याकरण सुवेद पुराण ।
नेम व्रत तीरथ धन सुत मान ।
विना सत्सग सर्व दुख खान ।
मात पित भ्रात जात कुरबान ।
त्याग कर 'धाशर' सिमरे भान ।
यथारथ भूलरी ।।५।।

दोहा—भाद्रव, भ्रम नास्यो सभी, मिल्यो मीत घर माहि।
'धाशर' गुरु परताप से, अब कछु संशय नाहिं॥

## छन्द

भाद्रव भजे भरम जंजाल।
भरयो अब द्वैत भूत चंडाल।
गुरु पग देख काल भयो काल।
भई हौं घर ही माँह निहाल।
थकी अब वृत्ति आनन्द सम्हाल।
बीज में पात फूल फल डाल।
लख्यो इस ज्ञान को।

लखी यह पंच तत्व की देह।
नहीं हौं मन बुद्धि इंद्रिय एह।
छुटे विव जीव ब्रह्म संदेह।
न ज्ञाता ज्ञान क्रिया को नेह।
न मुझमें स्वत्वपरत्व सनेह।
संत पग देख भई निस प्रेह।
त्याग अभिमान को॥

आज आनंद रंच नहि खेद।
लयो पद अक्षय अजर अछेद।
अदाझ असोख अमर अकलेद।
न जिस में स्याम न रक्त सुपेद।
छुटे सब संसे भेद अभेद।
पुकारे नेति नेति सब वेद।
न मान अमान को॥

कहत है 'घासर' तिने धिक्कार ।
छोड़ सुखरूप जो भजे असार ।
जीव अर ब्रह्म कल्पना भार ।
त्याग कर सकल कर्म जंजार ।
विचार असार सर्व समार ।
विसार परोक्ष प्रकट उर धार ।
निवार गिलानि को ॥६॥

दोहा—हम प्रीतम सो रस भरी, मरी दुक्ख की फौज ।
'घासर' शुभ दिन शुभ घरी, पावन मास असोज ॥

छन्द

अरी अब भाज गये सब भीत ।
छुटी कुल वेद लोक की रीत ।
भई हों आज पिया अर मीत ।
लियो अब द्वैत दुष्ट को जीत ।
भाग गई नीत न रही अनीत ।
भरी हों शुद्ध स्वरूप अतीत ।
कल्पना नाश री ।

न देखूं भरम किसू के बीच ।
भूल गये भेद ऊच अर नीच ।
ज्ञान की ग्रंथि हो गई पोच ।
लई अद्वैत बेल हम सीच ।
छूट गये जनम मरण में कीच ।
नही जब जन्म तहां कब मीच ।
मिटी सब प्यास री ।

अरी अब छूटे देहाध्यास ।
नास भये सगरे नास अनास ।
न रह्यो गृहस्थ कहाँ सन्यास ।
अधेय आधार आत नहीं पास ।
अहो अब सदा हुलास बिलास ।
अहं ब्रह्मादि फुरे बिन आस ।
अखिल सुखरास री ॥

सदा सुख संयम सहत बहार ।
लियो उर लाय आपनो यार ।
मिटे अब चाव अचाव बिकार ।
पिया सुख निरख भयो उर धार ।
पिया ही रह्यो कहाँ संसार ।
छुटी अब 'धाशर' कर्म बिगार ।
सदा उपहास री ॥७॥

दोहा—कातक किंचत भरम नह, पड़ो भरम को मरम ।
सो भ्रम भ्रमहं निवार के, भयो भरम को भरम ॥

### छन्द

मास शुभ कातक करम विहीन ।
न करता करम क्रिया यह तीन ।
छीन भये विधि निषेध पद दीन ।
अरी हम सोहं निश्चय कीन ।
जहाँ सो तू मैं त्रिकुटी लीन ।
इदं तत कहाँ कहूँ मुख हीन ।
सच्चिदानंद है ॥

कहूँ यथा नहीं कथन की बात ।
कथन ते होत दुगन उत्पात ।
जहाँ पर मन बुधि चित्त बिलात ।
नाम रूपादि परे सब भ्रात ।
मिटे जब जड़ चेतन सघात ।
अत को अनजु तब अधिवात ।
सोई सुख कद है ॥

यहाँ नहिं मान अमान गिलानि ।
न बधन मोक्ष प्रमेय प्रमाण ।
न जाप अजाप न मोह ध्यान ।
न एक अनेक कहाँ पुन आन ।
न वेद पुराण ज्ञान अज्ञान ।
कहै जो व छुक मौन की खान ।
न शुभ अरु मद है ।

कोई कहे रब्ब रहीम ऋशीप ।
कोई कहे व्यापी प्रभु जगदीश ।
कहे कोई पच तत्व विनवीन ।
कोई कहे ब्रह्मजीव कोई ईश ।
सकल यह वेद लोक की रीत ।
लखो हम 'धारर' सर्वाधीश ।
सदा निरद्वद है ॥८॥

दोहा—मगसिर मगल मोद है, भई विगत सदेह ।
पिय पायो पाई न हौं 'धारार' त्याग न गेह ॥

## छन्द

मौज भई मघसिर में तज भरम ।
उठे सब वर्णाश्रम के धरम ।
मिल्यो मुहि आज आपनो मरम ।
कट्यो सभ पी वियोग का वरम ।
वाक परयंत छुटे सब कर्म ।
लियो हम आप खोय पद मरम ।
शांति को भौन है ।

वेद सभ कहे छिपाय छिपाय ।
लोक परलोक मांझ उरझाय ।
न भ्रम को परदा देय उठाय ।
न निश्चय सत्य किसू को भाय ।
सत्त में लेन देन सभ जाय ।
न देखे कवी सुपेष्ठि राय ।
तहाँ पर कौन है ।।

सत्त सुन कहे लोक सब भ्रष्ट ।
यही है सत्त वाक में कष्ट ।
सत्त में वेद लोक सब नष्ट ।
बुद्धि सों सोचो यहाँ सपष्ट ।
भरम उठ जावे तुरत समष्ट ।
कहूँ क्या भयो सोच कर मष्ट ।
कथन सब गौण है ।।

भई सो भई कहे अब कौन ।
पिया जब मिल्यो रही तब हौन ।
पसर गई सर्व जगत सुख पौन ।

भयो अब सर्व समाज अलीन ।
सकल परपंच निहार्ं मौन ।
मौन पर मौन है ॥६॥

दोहा—पीप, पटक सब अटक को, कियो त्याग को त्याग ।
'धाशर' पिय के भरे से, पायो आज सुहाग ॥

छन्द

पीध म पीनी निरभय भग ।
ज्ञान को लीनो खड्ग निसग ।
देखकर वध पशु भये दग ।
बिसर गये सकल कर्म के ढग ।
लियो अब जीत आलि को जग ।
रटन है आठो याम उमग ।
न रचक प्याम है ॥

प्यास अब कौन कौन की करे ।
करे क्यों जब समग्र दुख हरे ।
आज हम सुख समुद्र के परे ।
अहो हम पार पार क परे ।
वार अरु पार रहे सब धरे ।
गुरु पग देख भेप सब टरे ।
नहीं कछु फासि है ॥

लख्यो मैं अधिष्ठान सब मूल ।
बिसारी सब अध्यस्तक भूल ।
मिट्यो अब ग्रहण त्याग को मूल ।
न विश्व न तैजस प्राग असूल ।

न कारण लिंग कहाँ स्थूल ।
न जागृत स्वपन सषुप्ति कूल ।
एक सुख रास है ॥

त्रिकाल अबाध असंगी आप ।
लख्यो तज जन्म मरण संताप ।
त्याग कर नाम रूा को पाप ।
रहे जो सत्ता रूप अजाप ।
अनाद अनंत आपनो आप ।
मिल्यो सो 'धाशर' अमल अनाप ।
भरम सभ नास है ॥१०॥

दोहा—माघ मगन मन से छुटे विधि निपेध के भार ।
'धाशर' सत्संगत विना, को जन उतरे पार ॥

छन्द

माघ मन मोद हमारे भयो ।
तरंग निवार आप जल भयो ।
न एक अनेक भरम सब गयो ।
आज हम जन्म सफल कर लयो ।
देव कर दया दान निज दयो ।
अहं मम पाप ताप विसरयो ।

पिया सो रस भरी ।
अरी री परी मीत शुध धरी ।
जरी थी हौं अबोध से भरी ।
मरी अब भ्रान्ति शालि बिसतरी ।
हरी अब भोल मीत सब हरी ।
हरी हौ भई रही नहिं मरी ।
तरी हम विधि निषेध की सरी ।
कहां अब मित अरी ।।

नही अब रंचक मन मे भटक ।
लूट लो सत्त शुद्ध की लटक ।
गई हौं सकल सग से सटक ।
ज्ञान अज्ञान दिये सभ पटक ।
रही अब सोय अरी बे खटक ।
कहो अब करूँ कौन सो अटक ।
द्वैत सभ झरपरी ।।

खुले अब अनभव द्वार कपाट ।
गयो उर वर्णाश्रम को फाट ।
दये सब जन्म मरण भये काट ।
अरी यह ब्रह्म समुद्र अघाट ।
वृत्ती आनद नहीं उच्चाट ।
लियो हम 'धाधर' सुख घर बाट ।
विपति सब अब टरी ।।११।।

दोहा—फिरन फिरत फिरकि फिरी, फिरी आपनो पोर ।
'धाधर' हौं कछु जानती, भई और कौ और ।।

## छन्द

फिरे नर नारि मचत है फाग ।
उड़े अंबीर त्याग को त्याग ।
उठी पिचकारी प्रेम की जाग ।
गए सब शोक मोह भय भाग ।
लाल हो गई लाल संग लाग ।
रंग सों मिल्यो विवेक वैराग ।
फाँसि सब कट गई ॥

धरी जिहं कारण शुद्ध समाधि ।
सहारी कर्म मंत्र की व्याधि ।
छुरी सो छिन में द्वैत उपाधि ।
लख्यो सो रूप अनाम अबाधि ।
कहत जहं सगरे वेद अगाधि ।
करी गुरुदेव कृपा मुहि साधि ।
सकल सुध पट गई ॥

कहूँ क्या आवत है उपहास ।
लखे सो जाने मोर विलास ।
भयो अब पूरण द्वादशमास ।
मुमुक्षु पढ़े लखे सुखरास ।
मिटे सब ज्ञान ज्ञेय की आस ।
छुटे पुन ध्यान ध्येय अध्यास ।
जहाँ मति घट गई ॥

अहो शुभ सतलज तीर मुकाम ।
नगर फुल्लौर पुनीत सुधाम ।
तहाँ द्विज 'धासर' श्रद्धाराम ।
रची यह भाषा सुगम सुकाम ।
लगी मस होवन यहाँ तमाम ।
टूट गई लेखनि कर विश्राम ।
पत्रवा फट गई ॥१२॥

दोहा—बोल बचन नहिं कूप मे, देत बुलाए बैन ।
रामदास सुनके कहे, हौं यह रचो सुसैन ॥१६॥

(सं० १६१७ की रचना)

समाप्तोय ग्रन्थ ॥

# शतोपदेश

अर्थात्

## सारभूत १०० दोहा

एक-एक दोहे में अर्थ परमार्थ साधक एक-एक उपदेश

नित्य पाठ और नैष्ठार्थ

**कण्ठाग्र से कुशाग्र बुद्धिकर्त्ता**

समय-समय पर मंत्ररूप प्रमाण सुनाया दोहा परम सुखदाई
शिक्षा सबको परमानन्ददायक ।

सद्मार्ग प्रदर्शक आचार्य, मोहन उपदेष्टा ।

**श्री पं० श्रद्धाराम जी विरचित**

श्रद्धापाद पूजक……—

**स्वामी तुलसीदेव हरिज्ञान मन्दिर लाहौर**

द्वारा प्रकाशित



संवत् १९८३ वि० सन् १९२७

पं० शरच्चन्द्र, मैनेजर के प्रबन्ध से बाम्बे मशीन प्रेस, मोहनलाल रोड,
लाहौर में छपा ।

पांचवीं बार ३००० मूल्य :

---

प्राचीन पुस्तक का आवरण-पृष्ठ

# प्रस्तावना

## रचयिता और महिमा

रचयिता—परमानन्दी गम्भीर सागर महर्षि श्रीमत् पं० श्रद्धाराम जी महाराज अठवंश योशी सारस्वत ब्राह्मण थे। आप ब्रह्मश्रोत्रि, ब्रह्मनेष्ठि, तत्ववेत्ता, वेद-शास्त्रपारगामी, सर्व मतमतान्तर के मर्मज्ञाता, सत-पथ प्रदर्शक, आप्त वक्ता, मर्यादा पुरुषोत्तम, सदाचार के अवतार, मोहन उपदेष्टा तथा जिन महान् आत्माओं ने वेद-वेदांग रचे, अनेक विद्या प्रकट की, उसी अमोघ दैवीमेधा के उच्चतर निगमागमकार हुए। राजा प्रजा दोनों में पूजे गये। पंजाब जिला जालन्धर नगर फल्लौर में संवत् १८९४ विक्रम में जन्मे और १९३८ में मुक्त हुए। केवल ४३ वर्ष अवस्था पाई कि जो सर्वथा देशोपकार में लगाई। सुख प्राप्ति दुःख निवृत्यर्थ बंधन विमुक्त कल्याणकारी उपदेश देना और राजा प्रजा के लिए शिक्षाप्रद ग्रन्थ रचना, यह दो मुख्य उपकार जीवन भर किये। नगरों में भ्रमण कर सनातन धर्म का उपदेशदाता उन्नीसवीं शताब्दी में आप से प्रथम पंजाब में कोई नहीं हुआ। आपने विद्या विज्ञान अनुभव से वह अटल सिद्धान्त सिद्ध और लिपिबद्ध किये कि जिनके धारण से जगत अज्ञान-अविद्या-भ्रमकूप से निकले, अन्धविश्वास व नाना मत-पंथ का दुराग्रह त्यागे, मानव मात्र एक जाति माने, प्राकृतिक धर्मात्मा बने, अखण्ड सुख पावे। आप संसार सुधार भारत उद्धार में कैसे तत्पर रहे, उनका जीवन-चरित्र पढ़ो। आपने संस्कृत, हिन्दी, पंजाबी, उर्दू में जितने ग्रंथ निर्माण किये, उनमें यह 'शतोपदेश' निज प्रणीत सत्यामृत प्रवाह आगम का सार संवत् १९३७ में लिखा था, और उनके देहान्त पीछे छपने लगा था।

**महिमा**—इस शिक्षा-पुंज शत (१००) उपदेश में वेद-शास्त्र का सिद्धान्त, शुभ कर्म, त्याज्य कर्म लक्षण नीति, ज्ञान का यथार्थ वर्णन

है। रोचक भयानक (पालिसी हिकमत अमली) बिलकुल नहीं। संसार में मानव जाति को जीवन पथ में सुखी रहने के लिए जो कुछ जानना करना चाहिए और जिन दुखदाई बुराइयों को त्यागना उचित है, सत्य सत्य परम सत्य बताया है नेता जनता त्यागी गृहस्थी सभी जाति वर्णाश्रम मत पथ के अनुकूल है। घट घट विराजमान होने योग्य है। न्याय प्रिय साहित्य अनुरागी गुणग्राहक समुदाय के हृदय में सादर मान पाया, सबने मन मोद से अपनाया, प्रेम रूप मुखभूषण बनाया, नित्य पाठार्थ अनेक जन ने कण्ठ कराया है, इसके रचयिता आचार्य की यथोचित कृतज्ञता उपहार पूजा यह कि दुराग्रह रहित पाठशालाओं ने शिक्षा में लगाया है। एक योग्य पंडित ने प्रमोहित हो इसके सौ दोहे का सौ ही संस्कृत श्लोक बनाया है।

उदय (मेवाड) के एक अग्रवाल दुकानदार ने परोपकार पुकार पुकार इसका रचना क्रम बिना पूछे तोड़ा विषय विभाग किया, छपाया मनमाना लाभ उठाया पकड़ने पर क्षमा माँगी गिड़गिड़ाया पछताया।

## धन्यवाद

सती सती सरल आत्मा बाल विधवा माता भ्राता के आश्रित पुत्री रामप्यारी लाला गयाराम हरिकृष्ण मेहरा सौदागर चाह अमृतसर निवासी की सहोदर भगिनी के व्यय से इसे पांचवीं बार छपाया है, तथा बाबू गुरदाससराम गिडमैन रेलवे की धर्मपत्नी श्रीमती भागवन्ती ने लागत का तीसरा भाग लगाया है, इन धर्मात्मा परोपकारी दानी देवियों का धन्यवाद है।

श्रद्धापाद पूजक—

तुलसीदेव हरिज्ञान मन्दिर, लाहौर

# शतोपदेश

## ।। दोहा ।।

नमो नमो श्री गुरुचरण्य, नाशक सकल कलेश ।
तिनकी कृपा कटाक्ष से, वरनों शत उपदेश ।।१।।

चार वेद पट् शास्त्र में, बात मिली हैं दोय ।
दुख दीने दुख होत है, सुख दीने सुख होय ।।२।।

ग्रंथ पंथ सब जगत के, बात बतावत तीन ।
राम हृदय मन में दया, तन सेवा में लीन ।।३।।

तन मन धन कर कीजिये, निशदिन पर उपकार ।
यही सार नर देह में, वाद विवाद बिसार ।।४।।

चींटी से हस्ती तलक, जितने लघु गुरु देह ।
सब को सुख देवो सदा, परम भक्ति है येह ।।५।।

गुरु बांधव सब पूज्य हैं, पूज्य सकल विद्वान ।
पुरुषोत्तम सब सन्त जन, करो सेव सम्मान ।।६।।

तिलक छाप माला जटां, भगवें पट तन छार[1] ।
दण्ड कमंडलु वेष तन, उदर भरण व्यवहार ।।७।।

जाके त्याग विराग धन, यथा लाभ सन्तोष ।
सीधा चले सो साधु है, ज्ञानी राग न रोष ।।८।।

परा और अपरा कही, दो विद्या जग माहि ।
जाने वरते जो इन्हें, पंडित कहिये ताहि ।।९।।

---

१. छार = भस्म ।

नीच ऊँच लों जीव को, जानत आप समान।
सुख देवे दुख को हरे, भक्त तिसी को मान ॥१०॥

लोक और परलोक के, सुख हित जिह उपदेश।
सतगुरु ताको जानिये, काटत भरम कलेश ॥११॥

तन मन धन अर्पण करे, हरे लोक कुल लाज।
गुरु आज्ञा मस्तक धरे, शिष्य सुधारे काज ॥१२॥

काम क्रोध अरु लोभ मद, मिथ्या छल अभिमान।
इन से मन को रोकवो, साचो व्रत पहिचान ॥१३॥

मद क्रिया से तन रुके, मन सब तजे कुचाल।
तन ताडन मन को दमन, यह तप परम विशाल ॥१४॥

स्वास स्वास भूले नहीं, हरि का भय अरु प्रेम।
यही परम जप जानिये, देत कुशल अरु क्षेम ॥१५॥

एक टेक जगदीश की, एक क्रिया से नेह।
जीवन सो जिसके रहे जान परम यत मेह ॥१६॥

जितनी चाह अचाह की, होन अधिकता चीत।
उतना सुख दुख जानिये, तन मन को हे मीत ॥१७॥

मान धाम धन नारि सुत, इन मे जो न अशक्त।
परम हस सो शात मन, घर ही माहि विरक्त ॥१८॥

जहाँ मान मत्सर मैथुन, मदिरा मिथ्या धून।
सो कुसग उपहास वह, जाय न तहाँ सपूत ॥१९॥

न्याय विवेक गुणज्ञता, विद्या शील स्वरूप।
धैर्य सत्य उदारता, समता बसन अनूप ॥२०॥

प्रिय भाषण पुन नम्रता, आदर प्रीति विचार।
लज्जा क्षमा अयाचना, ये भूषण उर धार ॥२१॥

भाग पराया त्याग के, जो अपना राह लेत ।
सो न किसी से दुख लहे, औरन दुःख न देत ।।२२।।

जिसकी सब से मित्रता, ता को शत्रु न कोय ।
आप भलो सब जग भलो, बुरो भलो नहिं होय ।।२३।।

पर नारी रत पुरुष जो, पर नर रत जो नार ।
शांति न पावे एक क्षण, चिंता शोक अपार ।।२४।।

सीस सफल संतन निमे, हाथ सफल हरि सेव ।
पाद सफल सत्संग गत, तब पावे कछु भेव ।।२५।।

तन पवित्र सेवा किये, धन पवित्र कर दान ।
मन पवित्र हरि भजन कर, होत त्रिविध कल्यान ।।२६।।

धिक मानस तन भक्ति बिन, धिक मति बिना विवेक ।
विद्या धिक निष्ठा बिना, धिक सुख बिन हरि टेक ।।२७।।

धन पावे कुछ दान कर, अथवा कीजे भोग ।
दान भोग बिन धन गहे वृथा बटोरत रोग ।।२८।।

अस्थि मांस मल मूत्र त्वक, सब देहन के बीच ।
गुण करमन कर पूज्य है, नातर[1] जानो नीच ।।२९।।

जा के दृग लज्जा नहीं, वाक्य बिचल हो जास ।
ता सो धरो न आस कछु, त्यागो सब विश्वास ।।३०।।

वेद पुराण विवाद में, मत उरझे मतिमान ।
सार गहे सब ग्रंथ को, अपनी रुची समान ।।३१।।

पर दूषण में मन धरे, पर भूषण में वैर ।
सो म्लेच्छ मूरख अधम, धरत नरक में पैर ।।३२।।

मात पिता बनिता तनुजा, जा के सब अनुकूल ।
देह अरोग विचार धन, यही स्वर्ग मत भूल ।।३३।।

---

१. नातर=नहीं तो ।

विद्या बल धन रूप यश, कुल सुत वनिता मान ।
सभी सुलभ संसार में दुर्लभ आतम ज्ञान ॥३४॥

मात पिता जो जो करत, पुत्रन से उपकार ।
ता को जो भूलत तनय, सो गर्धभ निरधार ॥३५॥

प्रिय भाषी शीतल हृदय, सुंदर सरल उदार ।
जो जन ऐसो जगत मे ता सो सब को प्यार ॥३६॥

पूरण भय जगदीश को, जा के मन मे होय ।
गुप्त प्रकट भीतर बहर[1] पाप करत नहि सोय ॥३७॥

सुख को मूल विचार है, दुःख मूल अविचार ।
यह भाष्यो संक्षेप से, चार वेद को सार ॥३८॥

मिले बुराई मोल को, पुनि जग निन्दा होय ।
करत भलाई यश मिले, मोल न लागे कोय ॥३९॥

उदय अस्त लो मेदिनी, जो तेरे वश होय ।
कौन काम मे मन समझ, जग जीवन दिन दोय ॥४०॥

चोरी हिंसा पर तिया, निन्दा मिथ्या गालि ।
क्रोध ईर्षा मान छल, तन वच मन से टाल ॥
स्नान दान शुभ जीविका, शिक्षा सत्य सुभाख ।
शौर्य न्याय प्रीती दया, तन वच मन मे राख ॥४१॥

धन भोगो की खान है, तन रोगो की खान ।
ज्ञान सुखो की खान है, दुःख खान अज्ञान ॥४२॥

धीर परखिये विपति मे, मीत परखिये भीर ।
ज्ञान परखिये हानि मे, पति योषित के तीर ॥४३॥

तृष्णा चिन्ता दीनता, माया ममता नार ।
ये षट् डाकिन पुरुष का, पीवत रुधिर निकार ॥४४॥

---

१ बहर = बाहर ।

शांति दया समता क्षमा, मुदिता विद्या प्रीत।
ये जननीवत पुरुष की, रक्षा करें सनीत[1] ॥४५॥

वचन करो संसार से, सब की बुद्धि समान।
जहाँ बुद्धि पहुँचे नहीं, तहाँ न करो बखान ॥४६॥

अभ्युथान प्रणाम धन, आसन भोजन वार।
घर आये को कीजिये, भेंट यथा अधिकार ॥४७।

तप तीरथ जप यज्ञ को, यही परम सिद्धान्त।
दुःख न दीजे किसी को, सब मन राखे शांत ॥४८॥

अपने पर के दुःख सुख, जब लख लेत समान।
पाप न रहे शरीर में होत द्वैत भ्रम हान[2] ॥४९॥

जो अपने सुख के लिये, औरन को दुख देत।
शून्यो आत्मज्ञान से, है मतिमंद अचेत ॥५०॥

पर धन गुण यश रूप में, होत ईर्षा जाहि।
जलत रहे दुख अग्नि में, कौन बचावे ताहि ॥५१॥

लघुन संग लघुता मिले, गुरुता गुरुजन संग।
बाल संग मति नाश हो, नारि संग यत भंग ॥५२॥

व्याधि कष्ट है देह का, तिह औषधि से टार।
आधि कष्ट है चित्त का, ता को हरे विचार ॥५३॥

अति उदारता कष्ट है, अति संकोच अनर्थ।
यथा योग्य वर्ते दुहन, सो जन सदा समर्थ ॥५४॥

भाषत भाषन के समय, धरे समय बिन मौन।
ऐसे बुद्धि निधान को, जीत सकत है कौन ॥५५॥

---

१. सनीत = नीतिपूर्वक, तत्परता से।

२. हान = नाश।

वचन करत नाचत सदा, कर दृग मस्तक नाव ।
शोभ न पावत सभा मे, ज्यो हसन में काक ॥५६॥

जागन सोवन के समय, शुभ अर अशुभ विचार ।
कहाँ करूँगो क्या कियो, तब सुख मिले अपार ॥५७॥

अति कठोर ऊचो अधिक, मान युक्त जिह बोल ।
सो जन सब ससार को, लेत शत्रुता मोल ॥५८॥

विद्या बुद्धि विवेक बल, यद्यपि होय अपार ।
मनमथ रहे न जगे बिन, जहाँ एक नर नार ॥५९॥

अपने अपने अर्थ के सब जन सब के दास ।
बिना अर्थ अपनो चवन, कोऊ न बैठे पास ॥६०॥

जहाँ सौम्यता चाहिये, तहाँ न होवे क्रूर ।
जहाँ क्रूरता हो भली, करे सौम्यता दूर ॥६१॥

विद्या उद्यम बुद्धि बल, रूप तथा सयोग ।
पट् धारण धन लाभ के, जानन हैं सब लोग ॥६२॥

मिथ्याहार विहार से, तन मे उपजे व्याधि ।
बिन विचार करते जु जन, मन मे उपजे आधि ॥६३॥

परमेश्वर परलोक को, भय न होत यदि चीत ।
गुप्त देश मे पाप से, कोई न बचतो मीत ॥६४॥

अज्ञानी तज देन अघ, भय कर लालच पाय ।
ज्ञानी तजे विचार बल, ताको सहज सुभाय ॥६५॥

अपरा का अधिकार जिह, तासों परा न भाख ।
जो समझत हैं परा को, तासों गुप्त न राख ॥६६॥

चार वेद पट् शास्त्र को, विद्या अपरा जान ।
ब्रह्म जानिये जास ते, परा तिसी को मान ॥६७॥

धर्म शास्त्र है नाम जिस, सो है अपनो चीत ।
शुभ अर अशुभ विवेक सब, उस से सीखो मीत ॥६८॥

होते अंग उपांग बल, कब याचत मतिमान ।
भीख माँगने से अधिक, अधम वृत्ति नहिं आन ॥६९॥

बिन कीने उपकार कछु, जो भोगत पर भोग ।
सो कृतघ्न मतिमंद ठग, बहिकाये सब लोग ॥७०॥

जल थल पर्वत रूख तृण, मानुष पशु खग खान ।
गुण ग्राहक सब से गहे, शिक्षा गुरुवत जान ॥७१॥

शक्ति हीन छोड़े नहीं, निज कुल देश लकीर ।
शक्तिवान जिस दिश चले, पाछे चलत बहीर[1] ॥७२॥

धन सुत तिय युत बहुत जन, दुखी रहित दिन रैन ।
बिन धनादि विज्ञान बल, निशदिन राखत चैन ॥७३॥

मात तात सुत भ्रात तिय, गुरु बांधव पुन मित्र ।
द्रव्य विछोरत सबन को, अद्‌भुत यही चरित्र ॥७४॥

जिस कारज के किये से, अंत होय पछताप ।
तिस आरंभ मत कीजिये, आदि विचारो आप ॥७५॥

जो कार्य करणो नहीं, कहो न ता को भूल ।
जो कहकर करतो नहीं, सो जन हलको तूल ॥७६॥

अति नीचो नहि हूजिये, अति ऊँचो मत होइ ।
मध्य भाव में वरतिये, शोक न व्यापे कोइ ॥७७॥

निन्दा करे जो आन की, सो जन निन्दित आप ।
पर दूषण में चित्त धर, पावत बहु संताप ॥७८॥

---

१. बहीर=सेवक-वर्ग ।

भोग सकल संसार के, प्रथमे सुधा समान ।
अंत हलाहल होत हैं, बरते समझ सुजान ॥७९॥

विषय सभी विष रूप हैं, पर विशेष व्यभिचार ।
तन मन धन हर मान हर, लज्जा हरत विचार ॥८०॥

कहित बहिन पुन रहित मे जा को देखो शुद्ध ।
सो सतसंगी जानिये, नातर परम अशुद्ध ॥८१॥

पूरण मूत्र पुरीष[1] से, यह तन अशुच भंडार ।
कहित शुद्ध जो देह को सो जन निपट चमार ॥८२॥

तन के धोये मल टरे, मन धोये अघ नाश ।
तन मन को मल जब टरे, तब मुख होत प्रकाश ॥८३॥

जगत समुद्र अगाध है, सुख दुख भोग तरंग ।
उपजत मिटत स्वभाव से, यही सनातन ढंग ॥८४॥

सत रज तम यह तीन गुण, उपजे तन के साथ ।
मूल नाश नह होत हैं, समता तुमरे हाथ ॥८५॥

युगल दास हैं देह के, सुख दुख वा को नाम ।
एक रहित ठाढो सदा, एक करत विश्राम ॥८६॥
निश बीते दिन होत है, दिन बीते निश होइ ।
योंच इसी मे कट गई, कारज बने न कोइ ॥८७॥

खान पान सुख भोग मे, पशु भी परम सुजान ।
कहा अधिकता मनुज की, जो न लखे भगवान ॥८८॥

प्रिय के हित से लजत जन, तन मन धन कुल लाज ।
मन भी एक न देत है, हरि के हेतु कुकाज ॥८९॥

---

१ पुरीष = मल ।

छीजत[1] जब सुत नारि वित, जीव करत बहु शोक।
क्षण क्षण तन छीजत रहे, राखत ताहि न रोक ॥९०॥

लोक वेद पशु कुल पशु, गुरु पशु पशु ये चार।
साच झूंठ परखे नहीं, चलें तिहीं अनुसार ॥९१॥

विद्या सत्य विवेक युत, वचन लेत जो मान।
गुरुमुख ताको जानिये, चतुर प्रवीण सुजान ॥९२॥

जो मन माने सो करे, भयो जो मन को दास।
ताहि मनोमुख जानियें, बुद्धि न आई पास ॥९३॥

जब लों ईश्वर जीव की, होत न दृढ़ पहिचान।
निर्भय पद पावत नहीं, होत न संशय हान ॥९४॥

सत्य कहे जग नष्ट है, झूठ कहे अति कष्ट।
इस विध पूरब वृद्ध जन, बोल न सके सपष्ट[2] ॥९५॥

जाने जब संसार में, सब को अपनो अंग।
रहे न छल बल वैर कछु, आनन्द रहे अभंग ॥९६॥

ताप पाप सन्देह हर, सतगुरु है कोई एक।
तन मन धन हर शिष्य को गुरु मिल जाहं अनेक ॥९७॥

यद्यपि है मत सब भले, तद्यपि यह मत धार।
नाम स्नान दया गहो, पुन दश दोष निवार ॥९८॥

अपनी अपनी कहत हैं, यद्यपि सगरे ग्रन्थ।
ज्ञानवान की दृष्टि में, सब हरिपुर के पन्थ ॥९९॥

परावान की दृष्टि में यद्यपि अपरा मार।
तद्यपि जन कल्याण हित, वरते तिहं अनुसार ॥१००॥

---

१. नष्ट होते हैं। २. सपष्ट = स्पष्ट।

हरि हेरत हरि ही भयो, पायो मन विश्राम।
गुरुचरणन श्रद्धा किये, घर ही निकरो राम ॥१०१॥

स्याही कानो ब्रह्म है, कागद लिखनेहार।
श्रोता वक्ता आदि ले, सभी ब्रह्म निरधार ॥१०२॥

— ० —

## कवित्त*

एरे मन मेरे तू अंधेरे में परो ही रहत,
जाग के अभाग ब्रजचंद को निहारे क्यों न।
तारी ब्रज ग्वारनी अधारी भीलनी सी नारी,
भारो है भरोसो गिरधारी को उचारे क्यों न।
एरे जमराज निज द्वारे के किवारे दे ले,
लोह खम्भ कौन काज श्रद्धा उखारे क्यों न।
पाप दल दलवे को कृष्ण जो पधारे जग,
एरे चित्रगोप अब दफ्तर को फारे क्यों न ॥१॥

पापी हूं जरूर काम क्रोध धूर पूर पूर्‌यो,
तू जो कह्यो चाह मोह मोते ही कहाय ले।
नारी सुत वित्त मों सदा ही मन रह्यो घेरो,
लोभ मोह चेरो मेरो औगुन गिनाय ले।
यद्यपि हूं ऐसो पर कृष्ण श्रद्धा है नेक,
अजामिल साथ मोरी मिसल मिलाय ले।
आय ले डराय ले बलाय सहे दण्ड तेरो,
एरे जमदूत तू समाज को उठाय ले ॥२॥

---

* 'श्रद्धा प्रकाश' से उद्धृत।

आकी हम राजा ते प्रजा की कहाँ बाको रहो,
ताकी श्याम आस त्रास कौन दिखरावेगो।
संपत समाज ब्रज राज को निहारो अब,
पुरहूत साज कैसे चित्त को लुभावेगो।
एरे जमदूत पूत यशुधा को संग मेरे,
श्रद्धा की सुने तो न मो को गह पावेगो।
करे न गरूर दूर ह्वै के समझावो मोह,
हाय जो लगावे तो भलो ही पछतावेगो ॥३॥

बांसरी बजैया भैया बलराम जू के,
गैया बन मों चरैया वाकी विपता हरा करें।
छाड़ आन पौर को भजैया जो कन्हैया जू के,
यशुधा के छैया को एकन्त को ररा करें।
नसे काल व्याल या को नाम स्वप्ने ही कहो,
श्रद्धा सो कहो तो न बन्धन रहा करें।
श्याम जो कृपा करे डरा करे त्रिदेव वा ते,
हा करे न दण्ड जमराज को भरा करें ॥४॥

एरे मन मेरे सांस सांस समझाऊँ तोह,
तू तो वृथा समय को न रंचक बिगारा कर।
नर देह पाई तो कमाई कछु करे क्यों न,
नन्द के लला को नाम जीह ते उचारा कर।
ब्रह्मा शिव इन्द्र आदि कर हैं अगोत तेरी,
श्रद्धा भाज जै हैं चित्रगोप घर तारा कर।
पाप को न रहैं पंक अंक बैठ श्याम जू के,
को है दंडदाता जमराजै ललकारा कर ॥५॥

कवित्त*
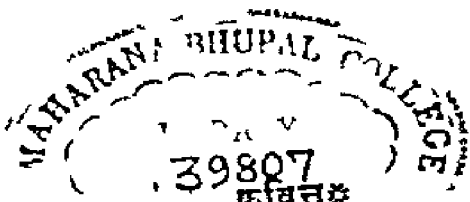
मात पित को न नेह गेह को निहार,
हार सभी हार वे सहार हार नाह को।
परिवार वार बोले को बार बार तोह,
निरवेद भाग को गवार बार चाह को।
काल भौन ते निकाल बाल को निकाल अरे,
आज काल भीत नरदेह भीत आह को।
श्रद्धा परनाम को न मान जा अनाम माहि,
तास अप्रनाम को प्रनाम मान याहि को ॥१॥

नार नार नार को अनार शोक दुख मूर,
नार के छुहे ते नार रक्त तजे नार का।
लीन काम मे मलीन काम में अधीर मूढ़,
धाशर सुधासर कुमुधासर कार का।
रोम हाड चाम मैल मेद निध पाप भरी,
मोक्ष सुख शान्ति की विडारक कटारिका।
मन हरी मन हरी लाज मान हरी मान,
हरी हिये राग ना तो राख करे नारिका ॥२॥

मत मन मान करे मान मान मान नीको,
मूत्र कोश तें अनन्त कोश मोक्ष भाग है।
भाग हीन भाग हीन हीन करे भाग निज,
शरधा स्वभोग भोग लहे रोग आग है।

---

* 'श्रद्धा प्रकाश' से उद्धृत।

यथा श्वान आन मान करत सआन मान,
आपनो रुधिर खात हाड को न त्याग है।
अहो तथा जीव निज बुद्धि बल जीव खोय,
नार प्यार ते अजेपि होत न अराग है ॥३॥

अहो नरदेह वृथा खेह में न देह मूढ़,
मोर तोर तोर चित्तचित्त में लगावरे।
भावनी को भावनी को आनपैन आन आप,
आपदा विहीन चीन चाव यही चावरे।
श्रद्धा कर श्रद्धा सार सार साखे को काज,
मोर कहा मोर अरे मोर कहा जावरे।
भोरे भज भोरे भज जा है दुःख भोरे वन,
भाग भाग मंद ते सुभाग माह आवरे ॥४॥

त्याग तियागात जो अयान नाहिं खात तोह,
मोह खात डार के विडार करे लोक को।
तास अवि लोक के अनङ्ग फुरे अंग अंग,
अंगना अनंग करे मोद देत शोक को।
मोक्ष करे मोक्ष अरे आधि व्याधि रोष भरी,
कामनी को ताकवो न कामनी को ओक को।
शरधा न धार हिये अंक लो अटंक होय,
पाय पाय चित्त में सुपास ज्ञान रोक को ॥५॥

आतम विवेकी जोऊ वासना न शेष कोऊ,
न्यारो गत लोकते अशोक लाभ हान मे।
जहा चह रहै वहै निर द्वन्द सदानन्द,
पर मत जात पात की न होत आन मे।
इच्छा नारि मान की न खान पान को विचार,
माग के मधूकरी विराजे ब्रह्म ध्यान मे।
राजे तिह लोक मे पराजे कर दीनी भ्रम,
धाशर न राजे भवराजे निज ज्ञान मे ॥८॥

# धर्मसम्वाद

अर्थात्

उस प्रश्नोत्तर का संग्रह जो सांसारिक और पारमार्थिक
विषयक श्री पंडित श्रद्धाराम जी के संग प्राय:
लोगों के होते और भिन्न-भिन्न अखबारों
में छपते रहे थे।

---

इस पुस्तक में परमोत्तम शिक्षा की वह लाभकारी बातें
लिखी हैं कि जिनका सुनना और सीखना और मानना
गृहस्थियों और साधुओं के लिए अति लाभदायक है।

---

**श्री स्वामी पं० श्रद्धाराम जी फुल्लौरी के शिष्य**
**तुलसीदेव ने उर्दू से हिन्दी में उलथा किया**

संवत् १९५३ में

**यंत्रालय विलास लाहौर में छपवाया है।**

---

प्राचीन पुस्तक का आवरण-पृष्ठ

# धर्मसम्वाद

## (महाराज पंडित फुल्लौरी जी से एक सभा के बीच में एक पंडित के प्रश्नोत्तर।)

**प्रश्न :**—आपका धर्मोपदेश सुनने को सहस्रों स्त्री-पुरुष इकट्ठे होते हैं परन्तु सुना जाता है कि आप अन्य पंडितों की भांति किसी से झड़ावा नहीं लेते; बताओ तो सही तुम को इतना कष्ट उठाने से क्या लाभ है ?

**उत्तर :**—मैं इसमें चार लाभ समझता हूं। एक यह कि जो लोग उपदेश सुनेंगे वह अपने धर्म से जानकार होकर किसी अन्य मत के काबू में न आवेंगे। दूसरा यह कि जितना समय मेरा इस धर्म-कार्य में व्यय होता है, उसको मैं सफल समझता हूं। शेष को वृथा। तीसरा यह कि ब्राह्मण वर्ण की श्रेष्ठता इसी में है कि वह ब्रह्म का उपदेश बिना कुछ लिये किया करें। चौथा यह कि मुझ को देख कर और पंडित जन भी धर्मोपदेश सुनाना आरम्भ करें।

**प्रश्न :**—जिन लोगों को परमेश्वर ने भिन्न मतों के आधीन करना है वह तो ब्रह्मा का उपदेश भी नहीं मानेंगे, फिर पंडित लोगों को क्या लोड़ कि व्यर्थ तुम्हारी तरह माथामारी किया करें।

**उत्तर :**—इसी समझ ने तो हिन्दोस्थान के लोगों को मट्टी में मिलाया कि वह सारे कामों को परमेश्वर पर छोड़ के आप सो रहना पसन्द करते हैं। यदि यही बात योग्य होती तो वेद-व्यास और शंकराचार्य आदिक महात्मा लोग अपने धर्म की रक्षा के लिए पुरुषार्थ क्यों करते ? श्रीमान् ! इस माथामारी

से तो मेरा या और लोगों का कुछ भला भी होता है। उस समय क्या प्राप्त होगा कि जब यह माथा सारे सिर के सहित जला दिया जावेगा।

प्रश्न —क्या आपके हिसाब परमेश्वर कुछ भी नहीं करता? सब कुछ मनुष्य के ही आधीन है?

उत्तर —नहीं महाशय। परमेश्वर का नाम सर्वशक्तिमान् है और वह सब कुछ कर सकता है। परन्तु बोलना-चालना आदि काम जो उसने मनुष्य के अधीन कर दिये, उनसे मनुष्यों को वेकार न होना चाहिए। जैसा कि आप मुझे उपदेश सुनाने से हटाना चाहते हैं।

प्रश्न—क्या यदि वह परमेश्वर न चाहे या तुम्हारी जिह्वा को बन्द कर देवे, तो तुम कुछ बोल सकते हो?

उत्तर—अब तक तो उसने मेरी जिह्वा को बन्द नहीं किया, और न उसने मेरे नाम इस विषय का कोई आज्ञापत्र ही भेजा है कि तुम बोलना बन्द करो। फिर क्या आवश्यक है कि मैं उपदेश सुनाना छोड दूँ। वल्कि इससे तो यह बात पाई जाती है कि परमेश्वर जो मुझे बोलने देता और मेरी जिह्वा को बन्द नहीं करता, वह स्वयं चाहता है कि मैं धर्मोपदेश सुनाया करूँ।

प्रश्न—सुनाया तो करो, परन्तु यह बताओ कि कलियुग मे तो सब लोगों की बुद्धि भ्रष्ट होने वाली है। फिर किस-किस को समझाओगे?

उत्तर—यह दशा तो कदाचित् तीसरे या चौथे चरण मे हो, शास्त्र की आज्ञानुसार अब तो कलियुग का केवल प्रथम ही चरण है फिर अभी से धर्मोपदेश सुनाना क्यों त्यागना चाहिए। यदि कलियुग का यही स्वभाव है कि वह किसी को धर्म कार्य नहीं करने दिया करता, तो वह मेरे मन से इस धर्मोपदेश सुनाने

का संकल्प दूर क्यों नहीं कर देता, क्योंकि मैं उसकी इच्छा के विरुद्ध काम करता हूँ। हाँ, यदि आपको उस कलियुग साहिब ने ही अपना मुखतार-कार बना के मेरे साथ झगड़ने को भेजा है, तो अच्छा, परन्तु आप अपने मवक्कल से कह दो कि वहाँ वकालत कोई नहीं सुनता असालतन आके सवाल व जवाब करे। इस बात को सुन के सभी समुदाय जन हँस पड़े।

—o—

## लुधियाना के एक पुरुष की पंडित जी से अप्रसन्नता

एक पुरुष ने पंडित जी से पूछा, कल मैं लुधियाना में गया, एक योग्य पुरुष से मिलाप हुआ तो वह आपके साथ बड़ा अप्रसन्न पाया। इसका क्या कारण है ?

उत्तर—वह और किसी से अप्रसन्नता नहीं। उनके लेखों को देखो, ईसाइयों और मुसलमानों और ब्रह्म समाजियों और प्रत्येक मत के साधुओं व ब्राह्मणों की ओर क्या-क्या कटाक्ष चलाते हैं और अतिरिक्त इसके उन सब के नवियों और अवतारों व श्रेष्ठ वृद्धों के विषय में क्या-क्या लिखते हैं ?

प्रश्न—आप से तो उनका कोई मुख्य विरोध दृष्टि आया इसका क्या कारण है ?

उत्तर—और तो कोई कारण नहीं केवल एक बार मैंने उनकी भरी सभा के सन्मुख इस भाँति का उपदेश किया था कि हिन्दू धर्म की उन्नति या रक्षा उसके पुरुषार्थ से हो सकती है कि जो पहले स्वयं हिन्दू बन ले अर्थात् वेद और शास्त्र को सत्य मान के उनकी आज्ञानुसार शिखा सूत्र को धारण करे। आश्चर्य नहीं कि मेरा यह कहना उनको असह्य प्रतीत हुआ हो।

प्रश्न—न महाराज उसके मन में तो कोई बड़ी भारी शत्रुता

है कारण उसका यह नहीं होगा, कुछ और होगा जिसको आप छिपाते हो।

उत्तर—मुझे तो कुछ स्मरण नहीं, आपने उन्हीं से पूछ लिया होगा। हाँ, इतना और भी है कि वह पुरुष अपने लेखों में अपने को वर्तमान के समय का नबी या अवतार लिखता है, आश्चर्य नहीं कि उसको हमारा स्थान-स्थान धर्मोपदेश सुनाना और लोगों का जाति-पाति में स्थिर करना पसन्द नहीं क्योंकि यह काम उसकी इच्छा के विरुद्ध है। परन्तु निश्चय है कि वह जो इल्म इखलाक का बहुत बड़े के दावेदार है व्यर्थ मेरे से इतना अप्रसन्न नहीं होगा जितना आप कथन करते हैं।

प्रश्न—अस्तु ! जो-जो कुछ उसने आपके विषय में कहा वह तो कथन के योग्य नहीं परन्तु आप यह तो बताइए उसका मत क्या है ? उसने मेरे सामने कहा कि हमको किसी से परहेज नहीं और मैंने स्वयं भी देखा कि वह सारे घर में जूते सहित फिरता था और मेरे माथे के तिलक को देख के उसने बहुत-सी हुज्जतें सुनाईं।

उत्तर—मैं उनके मत से भली भाँति ज्ञात हूँ परन्तु उनके लेख और कथन से पाया जाता है कि उसका कोई मत नहीं। अस्तु हमको उनके मत से क्या प्रयोजन है, परन्तु सुना जाता है कि उनका इखलाक बहुत ठीक है।

प्रश्न—मेरे सामने तो जितने भूतकाल और वर्तमान के श्रेष्ठ वृद्धों का वार्तालाप चला वह किसी को भी अच्छा नहीं कहता था। वेदव्यास, शंकराचार्य आदि महात्मा पुरुषों और श्रीरामचन्द्र व कृष्णचन्द्र महाराज के विषय में जो-जो घृणा भरे तुच्छ शब्द उसकी जिह्वा से निकलते थे योग्य पुरुष ऐसे शब्द किसी और के विषय में भी नहीं कहता, और वर्तमान काल के कई पंडितों व साधुओं के विषय में भी उसने स्पष्ट

यही कहा कि यह सब फरेबी और दगेबाज़ व जालसाज़ हैं। न मालूम कि लोग उसको साहिब खुलक (शील स्वभाव) क्यों समझते हैं, और जिनके पूज्य वृद्धों के विषय में वह ऐसे कठोर वचन लिखता और बोलता है वह लोग उस पर तौहीन मजहब का दावा और नालिश क्यों नहीं करते।

उत्तर—इसमें भी दो कारण विदित होते हैं; एक यह कि जिसके साथ उसका मन से विरोध होता है, कटाक्ष व चतुराई से तो उसके विषय में बहुत कुछ लिखता और बोलता है परन्तु नाम किसी का नहीं लेता, दूसरा यह कि दूरदृष्टि और भद्र पुरुष यह समझ के भी चुप हो रहते हैं कि बुराई के बदले में बुराई करना उस बुरे से भी अधिकतर बुरा बनना है। वरन् नालिश करना क्या दूर है, और जो वह और लोगों की बाबत गाली-गलौच और कठिन कठोर लिखता और बोलता है उसके उत्तर में और लोग भी बहुत कुछ लिख व कह सकते हैं। परन्तु "जवाबेजाहिलां बाशिद खामोशी" (धूर्तो को उत्तर देने से मौन श्रेष्ठ है) इस पर अनुमति करना योग्य समझते हैं।

**प्रश्न**—उसके लेख और कथन से तो लोग बहुत बिगड़ते जाते हैं आप इस बात को बुरा नहीं समझते ?

**उत्तर**—इस बात का मैं क्या बुरा मानूं जैसे पादरी और मुसलमान लोग हिन्दुओं के विषय में बुरा-भला कहते हैं, उन्हीं का संगी हमने उसको समझ रखा है।

**प्रश्न**—उसने मेरे सामने कहा कि पंडित मेरी निन्दा करता रहता है, परन्तु मैंने आपकी रसना से कोई शब्द उनकी निन्दा का नहीं सुना, कदाचित् इसका यह कारण हो, कि वह आप जो सबका छिद्रान्वेषण करता और गालियाँ देता और निन्दा करता रहता है उसको दूसरों पर भी यही संदेह रहता है कि लोग मेरी निन्दा करते होंगे।

उत्तर—हाँ उनका स्वभाव भ्रमयुक्त तो आदि से है परन्तु अच्छा अब आप कुछ और वार्तालाप करो।

—०—

## [ शास्त्र के निर्णयार्थ एक पुरुष के प्रश्न और पंडित जी के उत्तर ]

एक पुरुष ने पंडित जी से कहा कि हम जो बचपन से फारसी पढ के उपजीविका करते रहे, अपने धर्म मे सर्वथा अनभिज्ञ हैं। यदि कष्ट न हो तो मुझे यह कृपा करके कहिए कि वेद क्या वस्तु है और शास्त्र और पुराणो मे क्या भेद है, और धर्मशास्त्र किसको कहते हैं।

उत्तर—कष्ट क्या मैं अति आनन्द समझता हूँ कि आपने मुझ से धर्म सम्बन्धी बात पूछी, वेद वह है जो परब्रह्म परमेश्वर की ओर से श्री ब्रह्मा जी के हृदय मे प्रकट हुआ और ब्रह्माजी ने अपने मनु आदिक श्रद्धालु पुत्रो को सुनाया। यह वेद ऋक्, यजुर्, साम, अथर्वण नाम से प्रसिद्ध हैं और इन चारो वेद मे एक लाख मत्र हैं। ८० हजार मत्र में तो कर्मकण्ड की शिक्षा है कि जो यज्ञ होम व्रत आदिक से प्रयोजन रखता है, और १६ हजार मत्र उपासना का विधानकर्त्ता है जो भक्ति का प्रयोजक है और ४ हजार मत्र मे केवल ज्ञान का उपदेश है जिसको ब्रह्मज्ञान कहते हैं। बहुत लोगो का विचार है कि श्री ब्रह्मा जी के चारों मुख से केवल चार वाक्य निकले थे और उन चारो पर व्यास जी ने विस्तार करके लाख श्लोक बना दिये यह बात ठीक नहीं क्योंकि यदि व्यास जी ने वेद का विस्तार किया होता तो वेद पर रावण की टीका क्यों होती जो व्यास जी से बहुत

देर पहले श्री रामचन्द्रजी से लड़ा था। अब शास्त्रों का निर्णय सुनो :—

न्याय, मीमांसा, वेदान्त, सांख्य, पातंजलि, वैशेषिक यह छह शास्त्र हैं। और उन्हीं चार वेद से बनाए गए हैं। न्याय को गौतम ऋषि ने ऋग्वेद से बनाया और इसमें यह निर्णय है कि ईश्वर सब का स्वामी है और उसी की इच्छा से एक से अनेक हुए और २१ दुःख के दूर होने का नाम उनके यहाँ मुक्ति है। मीमांसा शास्त्र को जैमिनी ऋषि ने यजुर्वेद में से बनाया और उसकी यह सम्मति है कि परमेश्वर कुछ नहीं करता और यह जगत न आदि रखता है न अन्त और मुक्ति ज्ञान से होती है। वेदान्त शास्त्र को भगवान वेद व्यास जी ने सामवेद से बनाया, यह जीव और ब्रह्म को एक मानता और जगत को अनहुवा जानता है और मुक्तिजीव और ब्रह्म को एक जान लेने का नाम कहता है। सांख्यशास्त्र को कपिल मुनि ने बनाया, यह भी ईश्वर को जगत का कर्त्ता नहीं मानता और पुरुष और प्रकृति को जगत का रक्षक जानता है। पातंजल शास्त्र को भी पातंजलि ऋषि ने अथर्व वेद से बनाया, और सांख्यशास्त्र से कुछ थोड़ा ही भेद है। वैशेषिक शास्त्र भी कणाद ऋषि ने अथर्वणवेद से ही बनाया, और उनके कथन में इन पूर्वोक्त दोनों शास्त्रों से कुछ अधिक भेद नहीं। जो तुमने पुराणों की बात पूछी सो पुराण १८ हैं और सब श्री वेदव्यास जी के बनाए हुए सुने जाते है, यद्यपि उनके भाँति-भाँति के विषयों और लक्षणों से यह बात भी पाई जाती है कि सब वेदव्यास के बनाए हुए न हों परन्तु अधिकतर प्रसिद्ध बात यही है कि १८ पुराणों का कर्त्ता सत्यवती का पुत्र व्यास जी ही है।

**प्रश्न**—उन सब पुराणों के नाम क्या-क्या हैं?

**उत्तर**—मत्स्य पुराण, मार्कण्डेय पुराण, भविष्यत् पुराण,

भागवतपुराण ब्रह्मपुराण वैवर्तपुराण, ब्रह्माण्डपुराण वायुपुराण वामनपुराण वाराहपुराण, विष्णुपुराण, अग्निपुराण नारदपुराण, पद्मपुराण, कूर्मपुराण, स्कन्दपुराण, लिंगपुराण गरुड़पुराण ये सब पुराणो के नाम हैं। जसे यह १८ पुराण हैं वैसे ही १८ उप पुराण हैं।

प्रश्न—क्या महाभारत व रामायण इन १८ पुराणों मे नही गिने जाते ?

उत्तर—महाभारत इतिहास गिना जाता है और जिसमे रावण और श्रीरामचन्द्र जी की कथा वह रामायण नाम से कहा जाता है और वह इन १८ पुराणो से अलग है।

प्रश्न—धर्मशास्त्र क्या चीज है ?

उत्तर—जिसको स्मृति कहते हैं उसी का नाम धर्मशास्त्र है। सो वह स्मृतियाँ १८ हैं।

प्रश्न—यह किसके बनाए है ?

उत्तर—ऋषियो के।

प्रश्न—उन ऋषियो के क्या नाम हैं ?

उत्तर—मनु अत्रि विष्णु हारीत याज्ञवल्क्य, उशना, अंगिरा, यम, आपस्तम्ब संवर्त कात्यायन, बृहस्पति पराशर, व्यास शंख, लिखित दक्ष गौतम शातातप, वशिष्ट। ये सब ऋषि लोग स्मृतियो के कर्ता हैं। और आपको यह स्मरण रखना चाहिए कि हिन्दू उसी का नाम है जो श्रुति अर्थात् वेद और स्मृति अर्थात् धर्मशास्त्र के वचन को सत्य जान उसकी आज्ञा किये धर्म को धारण करे।

प्रश्न—हिन्दू शब्द के असली अर्थ क्या हैं ?

उत्तर—इसके अर्थ हैं हिंसा अर्थात् जीवघात से दूर रहने वाला क्योंकि हिंसा और दूर मे से व्याकरण की रीति से सकार और रकार को दूर कर देने से हिन्दू रह जाता है।

प्रश्न—शोक कि हम लोग नित्य मांस खाते हैं जो कि विना हिंसा के पैदा नहीं हो सकता तथापि हिन्दू कहलाते हैं। फिर पक्के हिन्दू तो सरावगी मत के लोगों को समझना चाहिए जो कभी हिंसा नहीं करते।

उत्तर—निःसन्देह मांस खाना हिन्दू को योग्य नहीं परन्तु सरावगी मत के लोगों को तो पक्के हिन्दू न समझो क्योंकि पक्का हिन्दू हमारे शास्त्र की आज्ञानुसार वह होता है, जो श्रुति और स्मृति की आज्ञा पर चले, सो वह श्रुति व स्मृति की कोई आज्ञा भी नहीं मानते। केवल अपने मत के पुस्तकों से अपनी मुक्ति जानते हैं।

प्रश्न—हमारी मुक्ति श्रुति और स्मृति की आज्ञानुसार कैसे प्राप्त होती है ?

उत्तर—कर्म और उपासना और ज्ञान से मुक्ति होती है।

प्रश्न—मुक्ति का स्वरूप क्या है ?

उत्तर—परमब्रह्म परमात्मा के आनन्द में मग्न होने का नाम मुक्ति है कि जहाँ किसी प्रकार का दुःख नहीं रहता परन्तु मग्न होने से यह प्रयोजन नहीं कि तुम परमेश्वर ही हो जाओ, सिद्धान्त यह है कि जैसे शुष्क पृथ्वी से उठा कर मछली को नदी में गेर देने से उसके ऊपर, नीचे और दाहिने और बायें जल हो जाता और वह उस जल के आनन्द में मग्न हो जाने पर भी ऐंन जल नहीं हो जाती, उसी भाँति ब्रह्म के आनन्द में मग्न होने से भी जीव और ब्रह्म की एकता न समझनी चाहिए।

प्रश्न—स्वर्ग और नरक क्या वस्तु है ?

उत्तर—शुभ कर्मों के करने से जो सुख मिलता है, उसका नाम स्वर्ग और अशुभ कर्मों से दुःख मिलने का नाम नरक है।

प्रश्न—क्या वह किसी नियत स्थान पर होता है ?

उत्तर—यद्यपि पुराणों मे कल्पित रीति से नियत स्थान भी लिखे हैं परन्तु सर्वशक्तिमान् परमात्मा, विना नियत स्थान भी दुःखी और सुखी कर सकता है।

प्रश्न—क्या यह जीव शरीर से अलग होकर भी दुःख-सुख को भोग सकता है?

उत्तर—निःसन्देह जब स्वप्न में हाथ कट जाने का दुःख और भूषण पहरने का सुख मान लेता है, उस समय भी तो शरीर मे कोई न्यूनता व अधिकता नही हुई होती। फिर जब वह विना शरीर के केवल जीव ही को दुःख या सुख मिलता है, तो मृत्यु के पीछे मिलने मे क्या नकार है।

प्रश्न—बहुत लोग कहते हैं कि जीव कोई वस्तु ही नहीं। केवल भूतों की साम्यावस्था या पाचक अग्नि ही का नाम जीव है। जैसे दीपक और तेल और बत्ती और अग्नि के संयोग से प्रकाश उत्पन्न होकर इनकी अधिकता और न्यूनता से उसका नाश हो जाता है वैसे ही तत्वों की साम्यावस्था टूट जाने से जीव छिप जाता है। क्या आप इस बात को सच मानते हो?

उत्तर—इसके सच मानने से संसार का प्रबन्ध सर्वथा टूट जाता है, बस हम यह मानते हैं कि जीव न तो शरीर के साथ उत्पन्न हुआ और न इसके टूटने से उसको हानि पहुँचती है क्योंकि वह न भौतिक वस्तु है और न इनकी साम्यावस्था, कोई ईश्वर की शक्ति है कि जिसको आज तक किसी ने न समझा और न समझ सकेगा।

प्रश्न—क्या आप इसको अनादि मानते हैं? या ईश्वर का रचा हुआ?

उत्तर—यद्यपि हम यह तो कहेंगे, कि परमेश्वर ने इसको प्रकट किया परन्तु यह नही कह सकते कि कब बनाया और कैसे बनाया, और काहे में से बनाया और क्यों बनाया, यदि

यह इसी शरीर के साथ उत्पन्न हुआ होता तो शरीर में से किसी हाथ पाँवों के कट जाने से उसमें जरूर न्यूनता हो जाती और शरीर के पुष्ट हो जाने से इसके प्रमाण में अधिकता हो जाती।

प्रश्न—जीव सब में एक है या बहुत ?

उत्तर—यह तो प्रत्यक्ष प्रकट है कि यदि एक ही आत्मा सब स्थान विद्यमान हो तो एक की मुक्ति हुई तो सब की हो जानी चाहिए।

प्रश्न—पाप-पुण्य का फल आत्मा को परलोक में होगा या यहाँ फिर जन्म धारण करना पड़ेगा ?

उत्तर—थोड़े से समय में गम्भीर प्रश्नों का उत्तर आप कहाँ तक सुनोगे, मेरी रचना से 'आत्मचिकित्सा'[1] नाम एक पुस्तक छपा हुआ है कि जिसमें इस भाँति के सब प्रश्नों का उत्तर और अन्य बहुत सी बातें लिख चुका हूँ उसको आप पढ़ो, परमेश्वर चाहे तो कोई सन्देह शेष नहीं रहेगा।

—o—

वह प्रश्नोत्तर कि जो काश्मीर देश के श्रीनगर शहर में पंडित जी फुलौरी व एक कश्मीरी पंडित के आपस में शाक्तक धर्म अर्थात् वाम मार्ग के विषय में हुए थे।

एक दिन चंक्रमन के समय एक कश्मीरी ब्राह्मण से पूछा यह किसका मन्दिर है ? कश्मीरी पंडित ने उत्तर दिया कि यह शारिका भवानी का मन्दिर है।

---

१. 'आत्मचिकित्सा' अब स्वतन्त्र नहीं छपता किन्तु 'सत्यामृत-प्रवाह' नाम ग्रन्थ के पूर्व भाग में रखा गया है। अतः उसी के साथ मिलता है।

फुलौरी—आप कुछ शास्त्र पढे हो ?

कश्मीरी—हां पूछो क्या पूछते हो ?

फुलौरी—मैं यह पूछता हूँ कि शास्त्र मे जो दुर्गा के नाम लिख है, उनमें तो 'शारिका' नाम आया नही, कदाचित वास्तव मे यह नाम शारदा भवानी का हो कि जिसको कश्मीरी लोग भूल से 'शारिका' बोलने लग गए, जैसा कि यहाँ से कुछ दूर पर दो तीर्थ है, जिनको कश्मीरी लोग 'बारामूला' और 'मटन' तीर्थ बोलते हैं। असल मे उनका नाम 'वाराह मूल' और 'मार्तण्ड' तीर्थ होगा।

कश्मीरी—दुर्गा अनेक हैं और शास्त्र मे उनके नाम भी अनेक हैं, फिर तुमने सर्व शास्त्रो को पढ लिया है ?

फुलौरी—शास्त्र तो मैंने सब नहीं पढे। परन्तु दुर्गा के नाम शास्त्र मे केवल नौ ही लिखे हैं और नौ ही उसके स्वरूप, बल्कि यह शारदा नाम भी उनसे बाहर है। क्योंकि दुर्गा नाम शिवजी की शक्ति का है। और शारदा किसी की शक्ति नहीं।

कश्मीरी—तुम्हारे माथे पर वैष्णव लोगो का श्रीतिलक देख के ज्ञान हुआ कि तुम वैष्णव हो सो तुमको दुर्गा की क्या खबर है। इसको वही जानता है, जो दुर्गा का उपासक हो, यदि तुम हमारे मत के होते तो हम तुमको दस विद्या के नाम और स्वरूप सुनाते कि जो तुम्हारी नौ दुर्गा से अलग हैं।

फुलौरी—निस्सदेह मैं विष्णु के भक्तो का दास तो हूँ परन्तु आपकी दस महाविद्या को ही भली भांति जानता हूँ। क्योकि मैं एक बार मूल के शाक्तक अर्थात् वाममार्गी हो गया था।

कश्मीरी—शिव ! शिव !! शिव !!! क्या तुमने इस परमोत्तम धर्म को त्याग दिया ?

फुलौरी—हाँ, परन्तु यदि तुम उसको उत्तम सिद्ध करो तो मैं आज ही फिर अंगीकार कर लूंगा, बल्कि मैंने तो उसको सब धर्मों से भ्रष्ट और प्रतिकूल समझकर त्याग किया है। जैसा कि आप स्वयं ही न्याय कीजिए कि जिसमें मद्य मांस की आज्ञा और मैथुन और मिथ्या पुण्य गिना जावे कोई बुद्धिमान उसको उत्तम धर्म कह सकेगा ? मैं तो उसको कभी धर्म भी नहीं कहूँगा कि जिसमें यह श्लोक लिखा हो।

मद्यंमांसंतथामुद्रामिथ्यामैथुनमेवच।
मकारपंचकं चेतन्महा पातकनाशनं॥

यह श्लोक 'शिवामारहस्य' नाम ग्रंथ का है और अर्थ इसके यह हैं: मदिरा, मांस, मुद्र, मिथ्या, मैथुन, यह पाँच मकार महापापों को दूर करते हैं। बलिहारी ऐसे उत्तम धर्म के कि जहाँ इन वस्तुओं के सेवन की शिक्षा दो कि जिनको संसार के सब मतमतान्तर त्याज्य और निंद्य बताते हैं। मैं तो बचपन में एक पुरुप की प्रेरणा से इस धर्म को कुछ दिन अंगीकार कर बैठा था परन्तु जब इसकी बुराइयाँ देखने में आईं तो तुरन्त पश्चाताप किया और प्रायश्चित करके शुद्ध हुआ।

कश्मीरी—हाँ, यह तो इस मत में अवश्य लिखा है, परन्तु साथ ही यह बात भी लिखी है कि इस मत का पुरुष प्रकट में भ्रष्ट और अन्तर से मुक्तरूप होता है। जैसा कि वचन है—'प्रकटे भ्रष्टो गुप्ते मुक्तः' फिर यह भी लिखा है कि जो मनुष्य इस मत के हों उनके लिए भुक्ति, मुक्ति यह दोनों वस्तु हाथ पर रखी रहती हैं। जैसा कि लिखा है कि 'भुक्तिश्च मुक्तिश्च करेस्थितैव।'

फुलौरी—भला विचार तो करो कि जो मनुष्य बाहर से भ्रष्ट हो वह अन्तर से कब उत्तम हो सकता है और जब सांसारिक सुख-भोग में ग्रस्त रहा तो मुक्ति हाथ में कैसे रखी जा

सकती है ? यह तो किसी विषयी ने विषय छिपाने के अर्थ श्लोक बना रखे मालूम होते हैं। भला सम्भव है कि कभी किसी मद्यपी मांसाहारी और व्यभिचारी का मन अपवित्रता व अश्रेष्ठता से पवित्र होता हो जो पवित्रता मोक्ष के विषय में बहुत आवश्यक है।

कश्मीरी—नहीं महाराज। विषयी क्या बड़े-बड़े पंडित और महात्मा सन्त जन इस मत में प्रविष्ट हैं। और ग्रन्थ व श्लोक सब शिवजी महाराज के बनाए हुए हैं। आप किसी विषयी पुरुष के कैसे कहते हो ?

फुलौरी—मैं तो उनको कभी पंडित और महात्मा नहीं कहूँगा कि जो पूर्वोक्त वस्तुओं को ग्राह्य समझें। और न वह ग्रन्थ शिवजी महाराज के बनाए हुए सिद्ध हो सकते हैं कि जिनमें मनुष्य को पांचों 'ऐब शरई' बना देने की शिक्षा हो। भला यह तो विचारिये कि आप इन लोगों का व्यभिचार और विकार बुरा नहीं समझते तो जो अन्य विकारी और व्यभिचारी लोग बाजारों में रहते हैं उनको बुरा क्यों समझते होंगे।

कश्मीरी—जो आदमी बिना गुरु दीक्षा और मन्त्रों के मांस, मद्य, व्यभिचार आदि को ग्रहण करे, वह पशु होता है। और जो विधि से करे, वह बहुत उत्तम होता है। बल्कि सर्व कर्मों और धर्मों से श्रेष्ठ है जैसा कि देखो शास्त्रों में लिखा है—

सर्वेभ्यश्चोत्तमा वेदा वेदेभ्यो वैष्णवं परं
वैष्णवात्परमं शैवं शैवाद्दक्षिणमुत्तमम्।
दक्षिणादुत्तमं वामं वामात् सिद्धान्तमुत्तमं
सिद्धान्तादुत्तमं कौलं कौलात् परतरं न हि॥

अर्थ इसके यह हैं कि सबसे उत्तम वेद है, और वेदों से उत्तम वैष्णव धर्म, वैष्णव धर्म से उत्तम शिव और शिव से उत्तम दक्षिण मत, दक्षिण मत से उत्तम वाममार्ग, वाममार्ग से

उत्तम सिद्धान्त और सिद्धान्त से उत्तम कौल धर्म और कौल से बढ़ कर कोई नहीं।

**फुलौरी**—वाह यह तो अपनी ही जिह्वा से झूठे हो गए अर्थात् जब कहा सबसे उत्तम वेद है तो कौल धर्म भी सबके अन्दर ही आ गया, बस वेदों को इससे भी उत्तम समझ कर नित्य उसकी आज्ञा पर निश्चय रखना योग्य है। फिर हम आपसे यह भी पूछते हैं कि यह वचन किस वेद के हैं जो आपने पढ़े। हमारा एक यह भी प्रश्न है कि जो आदमी बिना गुरुदीक्षा के शराब को पीता या मांस को खाता है, उसको नशा नहीं आता—या जिह्वा को रस कम मिलता है? बड़े आश्चर्य की बात है कि यह लोग अपने को वीर या शम्भू समझ कर औरों को पशु मानते है। श्रीमान्! इस श्लोक को अप्रमाण जान कर मनुष्यत्व को व्यर्थ भस्म में न मिलाया करें। मैं सत्य कहता हूँ कि जिसको आप मंत्र-शास्त्र कहते हो, वह ऐन कुमार्ग शास्त्र है। सुनो असल शास्त्र उसका नाम है कि जिसका नाम श्रुति या स्मृति है। पहले मुझे भी भ्रम था कि मंत्र शास्त्र के वचन योग्य विश्वास के हैं। परन्तु श्रेष्ठ महापुरुषों का सत्संग किया और सत्य शास्त्र को देखा तो मेरा विश्वास इस मंत्र शास्त्र से सर्वथा जाता रहा।

**कश्मीरी**—हम तो तब सत्य मानेंगे तुमने कभी अवश्य इस मत को ग्रहण किया था कि जो इस मत की गुप्त बात हमको बताओ या यह बताओ कि दश महाविद्या में से तुमको किसकी उपासना थी या इतना बता दो कि इस मत में मदिरा का क्या नाम है।

**फुलौरी**—यद्यपि उन दिनों में तो मैं अपने देवता का नाम प्रकट नहीं किया करता था परन्तु अब मैं बता देने को बुरा नहीं समझता। उपासना मुझको गुरु ने तारा जी की दी थी

और मदिरा का नाम तो वह लोग 'वचैया' और 'कारा' आदि कहते हैं परन्तु मांस का नाम उनके सकेत मे 'शुद्धि' है, खूबी यह है कि जब वह लोग अपनी पूजा म बैठते हैं तो चारो वर्ण के आदमी एक पात्र म ही खाते और पीते हैं। इससे अधिक एक बात वहाँ मैंने और बड़ी ग्लानि की देखी कि जब नशे की अधिकता क कारण किसी को वहाँ वमन आ जावे कि जिसको वह अपने सकेत मे 'भैरवी' बोलते हैं सब मिल कर चाट लेते हैं। और जिस स्त्री को प्रथम शक्ति का रूप जान कर प्रणाम कर रहे थे फिर नशे की दशा म आप ही उसके शिवजी बन जाते अर्थात् व्यभिचार करते हैं।

कश्मीरी—निस्सदेह यह तो सब सच है और ज्ञात हुआ कि तुम इस मत के सब भेदो से ज्ञाता हो परन्तु वह लोग पूजा के समय किसी को नीच या ऊँच इस कारण से नही जानते कि उनके शास्त्र म इस प्रकार के वचन लिखे हैं—

> प्रवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णा द्विजातयः।
> निवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णा पृथक् पृथक्॥

अर्थ इसके यह हैं कि जब भैरवी चक्र अर्थात् पूजा का समय हो तो चारो वर्ण ब्राह्मण हो जाते हैं और जब पूजा समाप्त हो जाए तो सब वर्ण अलग अलग समझने चाहिए और वमन के चाट लेने की कोई आज्ञा नही परन्तु यदि कोई श्रद्धालु ऐसा कर उसको अच्छा अवश्य समझा जाता है और वेद के मन्त्रो के साथ मनुष्य स्वय शिव हो गया तो अपनी शक्ति के साथ भोग करने का क्या दोष? जाना गया कि इस मत मे तुमने दोष तो कोई नही देखा परन्तु सासारिक निन्दा के कारण विमुख हो गए। सोचना उचित था कि निन्द्य वह होता है कि जो लोगो मे बखान करे कि मैं स्वयभू हूँ जिस दशा म ससार की निन्दा

से बचने के लिए हमारे यहाँ यह श्लोक लिखा है तो डर किसका ?

अंतः शाक्तया वहिः शैवाः सभामध्ये तु वैष्णवाः ।
नानारूपधराः कौला विचरन्ति महीतले ॥

अर्थ इसके यह हैं कि कौल अर्थात् शाक्तक लोग संसार में इस रीति से छिपे रहते हैं कि अन्तर में तो शाक्तक रहना और प्रकट में अपने को शैव अर्थात् शिवजी के भक्त बताना । और जब किसी सभा में जाना तो अपने को वैष्णव प्रकट करना ।

फुलौरी—वाह बलिहार जाएँ ऐसे धर्म को कि जहाँ नकलियों की भाँति दिन में सौ-सौ रूप भरना पड़े और मिथ्या बोल कर अपने को छिपाना पड़े । योग्य था कि एक पैसे का विष खा लेते ताकि संसार के अपयश से सर्वथा छूट जाते । अब न्याय का स्थान है कि मनुष्य छिपके उस वात को करता है कि जो पाप से भरी हो । फिर क्या आवश्यक कि इस पाप भरे मत को धारण करे कि जिससे हर समय आँख दबानी पड़ती है । क्या अच्छा हो कि वामी लोग आरम्भ से ही वैष्णव मत को अंगीकार करें कि जिसकी आड़ में आपके कथानुसार वह सभा में जा सकते हैं । फिर मत वही श्रेष्ठ और सत्य होता है, जिसको कुन्दन सोने के भाँति जहाँ चाहो लिये फिरो कोई खोटा नहीं कहता । वह मत कदापि काम का नहीं हो सकता कि जिसमें मदिरा का पीना, मांस का खाना, और मिथ्या बोलना, और व्यभिचार का करना स्वीकार हो । कि जिसके कारण सब स्थान में मनुष्य को छिपना पड़ता है ।

कश्मीरी—यदि दुर्गा शक्ति प्रसन्न हो जावे तो मांस और मदिरा व व्यभिचार आदि का दोष सब दूर हो जाता है ।

फुलौरी—भला यदि दुर्गा प्रसन्न न हो तब तो उन अयोग्य कर्म का पाप होगा या नहीं ? क्या अच्छा हो कि वे लोग वैष्णव

लोगों के एकादशी व्रत और परमेश्वर का भजन और दया आदिक कर्मों को धारण करें कि जिनके पूरे उतरने से तो मुक्ति प्राप्त होती और अधूरे रहने से भी कोई पाप नहीं लगता। जैसा कि क्या आवश्यक है कि मनुष्य किसी रोग नाश के लिए संखिये का खाना आरम्भ करे जिसका सुखदायी और अनुकूल पड़ना तो संदेह है और दुःखदाई और प्रतिकूल होना प्रकट है। औषध वही चंगी और भली होती है, कि जिसके अनुकूल होने से लाभ अधिक और प्रतिकूल पड़ने से ही अधिक हानि न होवे।

कश्मीरी—यह तो सच है परन्तु शाक्त धर्म की स्तुति वेद में बहुत लिखी है और यह धर्म सनातन है और वैष्णव आदि सब धर्म नवीन।

फुलौरी—भला बताओ तो किस वेद या उपनिषद् या धर्मशास्त्र में कौनसा श्लोक इस धर्म की स्तुति करता है? और यदि यह मत सनातन है तो किसी वेद की संहिता में इसका प्रमाण क्यों नहीं आता है? क्या आप इन्हीं श्लोकों को वेद समझते हो जो ऊपर पढ़े और किसी इसी मत के ब्राह्मण ने अपने मद्य, मांस आदि को सिद्ध और प्रमाण करने के अर्थ लिख रखे हैं। मैं सत्य कहता हूँ कि हमने वेद की कई संहिता और उपनिषदें और धर्म शास्त्र और पुराण देखे परन्तु वाममार्ग का नाम या स्तुति किसी स्थान लिखी हुई नहीं देखी बल्कि बहुत स्थान ऐसे वचन देखने में आए कि जो हिंसा को निर्दया समझ कर त्याज्य ठहराते और मिथ्या भाषण व व्यभिचार आदिक में अत्यन्त पाप प्रकट करते है। न मालूम कि आपने यह बात कहाँ से सुनी कि इस धर्म की स्तुति वेद में लिखी हुई है।

कश्मीरी—दुर्गा पूजन के तो बहुत मंत्र वेद में आते हैं।

फुलौरी—निस्सन्देह, परन्तु मैं तो यह पूछता हूँ कि वाम-

मार्ग और इसके मदिरा मांस आदि उपयोगी पदार्थों का योग्य ठहराना किस वेद में लिखा है ?

कश्मीरी—यहाँ तो सब इसी मत को मानते हैं और विना शक्ति उपासना के और किसी देवता को उपास्य नहीं समझते ।

फुलौरी—यहाँ क्या हमारे देश में भी ऐसे बहुत लोग हैं, कि जो शक्ति की पूजा करते हैं और हम. इस उपासना को यदि मदिरा मांस से न हो तो अधिक बुरा भी नहीं कहते परन्तु इतनी सुध अवश्य देनी चाहते हैं कि शक्ति की उपासना वह पुरुप पसन्द करता है कि जिसको उस शक्तिमान् का ज्ञान नहीं है कि जिसकी वह शक्ति है ।

कश्मीरी—शक्ति तो सबसे आदि है फिर तुम और किसको शक्ति कहते हो कि जिससे उसका न होना बताया ।

फुलौरी—श्रीमान् ! शक्ति के अर्थ बल या क्रिया के हैं कि जो किसी बलवान और कर्त्ता के बिना अलग स्थिर नहीं हो सकती । सो योग्य है कि तुम उस कर्त्ता को अपना पूज्य समझो कि जिसकी प्रभुता में शास्त्र ने यह वचन कहा है कि

यद् भयाद् वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति यद् भयात् ।
वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निर्मृत्युर्धावति पंचमः ॥

अर्थ इसके यह हैं कि जिसके भय से वायु चलता और सूर्य तपता और इन्द्र वृष्टि को करता और अग्नि जलाता है और मृत्यु मारती है, परमेश्वर वह है ।

कश्मीरी—धन्य महाराज, हम आपके दर्शन से बहुत आनन्द हुए । आप रहते कहाँ हैं ? और यदि हम फिर आपको मिलना चाहें तो कहाँ ? और कैसे मिलाप होगा ?

फुलौरी—दश बारह दिन से जो देश पंजाब से एक राजा साहब आहलूवालिया शहर कपूरथला से कश्मीर की सैर के लिए

यहाँ श्रीनगर में आए हुए हैं हम उनके साथ हैं। और मीरा-कदल पर हमारा डेरा है, यदि आप वहाँ आवें निर्णय करोगे तो मैं बड़ा प्रसन्नता से आपको मिलूंगा और अब नमस्कार करता हूं।

—०—

"श्रीधारण और वैष्णव मत विषयक प्रश्नोत्तर"

एक मनुष्य ने पंडित जी से पूछा कि आप जो अपने मस्तक पर श्रीधारण करते हो तो क्या आप श्रीवैष्णव हो ?

उत्तर—हां विष्णु के भक्तों का दास हूं।

प्रश्न—वैष्णव की चार सम्प्रदाय सुनी जाती हैं। आप किस सम्प्रदाय में से हैं ?

उत्तर—जिसमें बिना परब्रह्म परमेश्वर के और किसी की उपासना न होती हो।

प्रश्न—परब्रह्म परमेश्वर की उपासना के दावेदार तो प्रत्येक चारों सम्प्रदायी हैं। फिर आप चारों में से किसको पसन्द करते हो ?

उत्तर—यदि यह बात सत्य है तो मैं चारों को उत्तम समझ कर अपने ही रंग जानता हूं।

प्रश्न—क्या आपने इन चारों में से किसी एक सम्प्रदाय को धारण नहीं किया था ?

उत्तर—हां, प्रारम्भ में धारण तो एक ही को किया था परन्तु अब मैं चारों को अपने ही समझता हूं जो लोग उन सम्प्रदाय में से नहीं परन्तु परमेश्वर की उपासना करते हैं वह ही मेरे प्यारे हैं क्योंकि विष्णु के अर्थ सर्वव्यापी हैं और जो मनुष्य अपने को विष्णु का भक्त समझे उसका नाम वैष्णव है। सो जो कोई ऐसा वैष्णव हो वह मेरा और मैं उसका हूं।

प्रश्न—क्या आप रामानुज स्वामी जी के भक्त हैं ? यदि हो तो आपने शंख चक्र भी कर्म करके लगवाए होंगे। क्योंकि वैष्णव लोग चक्रांकित होते हैं।

उत्तर—श्री रामानुज जी महाराज अपने समय में बड़े महात्मा पुरुष हुए हैं। और जो परमेश्वर को उपासना का मार्ग उन्होंने प्रकट किया है, मैं उसकी अति स्तुति करता हूँ परन्तु इसकी क्या आवश्यकता है कि मैं उनकी भक्ति करूँ। भक्ति तो सब दशा में उस परमेश्वर की ही करनी चाहिए कि जिसकी भक्ति आप रामानुज स्वामी करते रहे। हां, यह सत्य है कि जो लोग वैष्णव मत का स्वांग धारणा चाहते हैं, वह चक्रांकित भी अवश्य हो जाते हैं। परन्तु वैष्णव शब्द के अर्थ जो मैंने ऊपर कथन किये वह वैसा वैष्णव चक्रांकित होना कुछ आवश्यक नहीं समझता केवल विष्णु की भक्ति करना आवश्यक समझता है।

प्रश्न—वह लोग जो यह कहते हैं कि जब तक चक्रांकित न होवे वैष्णव नहीं हो सकता। क्या यह बात सत्य नहीं ?

उत्तर—इस बात का अभिमान तो हिन्दू मुसलमान आदिक सब मतों के पुरुषों को है कि जब तक हमारे वहाँ के चिह्न और रीतियों को ग्रहण न करे मुक्ति नहीं मिलेगी, और हां ! इतनी बात तो सत्य है कि बिना किसी बाह्य चिह्न के हर कोई अपनी जमात के लोगों में संगी नहीं हो सकता, परन्तु परमेश्वर के भक्तों को किसी प्रकार का चिह्न और जाति जमाती में गिनती देना अधिक आवश्यक नहीं होता, वह परमेश्वर के प्रेम और भक्ति को आवश्यक समझते हैं।

प्रश्न—क्या चक्रांकित होना केवल जमात की पहचान का ही चिह्न है। मुक्ति का सहायक नहीं ?

उत्तर—चक्रांकित होना [तो श्री रामानुज महाराज ने प्रचलित किया था और मुक्ति उन लोगों में से भी प्राप्त हुई कि जो इन महाराज के उत्पत्ति से प्रथम हो चुके और फिर यह बात भी सब की समझ में आ जाती है कि यदि परमेश्वर की भक्ति मन में हो तो बिना चक्रांकित होने के मुक्ति हो जावेगी। और यदि मन में भक्ति का चिह्न नहीं तो इन प्रकट चिह्नों के होने से भी कुछ लाभ नहीं। हां इतना अवश्य है कि कई लोग जब से चक्रांकित हो जाते हैं तब से थोड़ा-बहुत भजन-पाठ करने लग जाते हैं, और दयाधर्म में मन लगा के मदिरा मांसादि त्याज्य वस्तुओं का खानपान सर्वथा त्याग कर देते और परमेश्वर का भय उनके मन में भर जाता है, परन्तु इस शुभाचार का मुख्य कारण चक्रांकित होना नहीं बल्कि मानसिक निश्चय है। क्योंकि बहुत पुरुष ऐसे भी तुमने देखे होंगे, कि जिन्होंने शंख चक्र धारण नहीं किए परन्तु किसी महात्मा गुरु के उपदेश से ही बुरे कर्म को त्याग कर दिया और परमेश्वर की भक्ति और उपासना में लीन हो गये।

प्रश्न—चक्रांकित लोग कहते हैं कि वैष्णव धर्म श्री रामानुज जी से प्रथम का सनातन चला आता है, और विष्णु महाराज की स्तुति में सैकड़ों श्रुतियें वेद में विद्यमान हैं, और बहुत स्थान वेद में विष्णु और वैष्णव पुरुषों का नाम लिखा हुआ देखा जाता है। फिर आप इस धर्म को श्री रामानुज जी महाराज का प्रकट किया हुआ क्यों कहते हो?

उत्तर—हां! मैंने कब कहा कि वैष्णव धर्म सनातन नहीं। और वेद में विष्णु और वैष्णव लोगों का नाम नहीं आता? मेरा कथन तो केवल इतना था कि चक्रांकित होना अर्थात् शंख चक्रों का धारण करना श्रीरामानुज जी ने प्रचलित किया है। सो बस जिस विष्णु और वैष्णव का नाम वेद में है, हम उसको

मानने वाले हैं न कि किसी आचार्य के कि जो थोड़े दिनों से संसार में प्रकट हुए ।

प्रश्न—वैष्णव लोग तो श्री रामानुज जी को भी परमेश्वर का अवतार समझते और सनातन मानते हैं। आपकी इसमें क्या अनुमति है ?

उत्तर—निस्सन्देह जो मनुष्य परमेश्वर का मार्ग बतावे और जगत को कल्याण के लिए परिश्रम करे श्रद्धालुओं का यही धर्म है कि उसको परमेश्वर का अवतार जान के उसकी आज्ञा पर धारणा करे, परन्तु मैं श्री रामानुज महाराज को परमेश्वर के केवल भक्त और महात्मा सन्त जानता हूँ जैसे कि उसी समय में शंकराचार्य और वर्तमान काल में बाबा नानक और गोबिन्द सिंह हुए हैं और यह भी सत्य है कि उन महात्मा लोगों के प्रताप से बहुत पुरुषों का उद्धार हुआ और यदि अब भी कोई पुरुष सत्य मन से उनकी आज्ञाओं को धारण करे तो मुक्ति को प्राप्त कर सकता है ।

प्रश्न—उनकी आज्ञाओं पर क्या आवश्यक है, चाहे अपने ही मन से कोई परमेश्वर की भक्ति और उत्तम कर्मों को धारण करे मुक्ति का भागी तो वह भी हो सकता है ।

उत्तर—इसमें क्या संशय है, यह तो हम प्रथम ही कह चुके कि मनुष्य को परमेश्वर की भक्ति करना आवश्यक है । न कि किसी के स्वांग का धारण ।

प्रश्न—वैष्णव लोग तो यह भी कहते हैं कि शंख चक्रों के साथ शरीर का तपाना वेद में लिखा है और यह बात भी लिखी है कि स्वयं देवता बन के देवता का पूजन करना चाहिए । जैसा कि इस पर वह वेद के कई एक प्रमाण देते हैं। जैसा कि "नातप्त तनु प्रवजेत् देवोभूत्वा देवं यजेत ।" अर्थ इसके यह हैं

कि जिस का तन तपा हुआ नहीं वह मुक्ति को नहीं पहुँचता और स्वयं देवता होकर देवता की पूजा करे। आशय इन दोनों वचनों का यह है कि जब तक तपे हुए शंख-चक्र लगा के शरीर को न जलावे मुक्ति नहीं मिलती, और देवता बन के देवता की पूजन का यह प्रयोजन है यदि विष्णु की पूजा करते हो तो प्रथम स्वयं देवता बनना चाहिए। अर्थात् जैसे उसने शंख-चक्र को धारण किया हुआ है वैसे ही आप भी धारण कर लेना चाहिए।

उत्तर—मेरा यह अभिप्राय नहीं कि कोई पुरुष शंख-चक्रों को धारण न करे, या जो कोई धारण करता है, वह पापी है, कथन का सिद्धान्त यह था कि यद्यपि शंख-चक्रों का धारण नहीं किया परन्तु मनुष्य परमेश्वर की भक्ति में पूर्ण है तो हानि नहीं। और जो तुमने वेद के प्रमाण सुनाए, सोच कर तो चाहे कोई अर्थ लगाओ परन्तु असली उनका वह अर्थ नहीं जो तुमने समझे हैं। देह तपाने से यह तात्पर्य है कि शम, दम, तप, जप, व्रत, तीर्थ, योग, यज्ञ आदिक से जब तक शरीर को न तपावे अर्थात् कष्ट न उठावे मुक्ति का भागी नहीं हो सकता। और जो देवता बन के देवपूजा की आज्ञा है, उस का यह अर्थ है कि देवता के समान शुद्ध पवित्र और दयालु दाता बन के पूजा करे। और यदि तुम्हारे कथनानुसार शंख-चक्र आदि को धारण करके विष्णु का पूजन आवश्यक हो तो विष्णु के पूजकों को चतुर्भुज और शिव के पूजकों को पंचमुख और शक्ति के पूजने वालों को अष्टभुज बनना भी बहुत आवश्यक होगा। मैं सत्य कहता हूँ कि बाह्य चिह्न, न विष्णु का मुक्ति दाता और न शिवजी का "हर को भजे हर का होय।"

प्रश्न—यदि बाह्य चिह्न मुक्ति का सहायक नहीं तो तिलक या कण्ठी रखने से क्या लाभ है?

उत्तर—निस्सन्देह यदि कण्ठी और तिलक के नियम न पालन किये जायें तो अधिक लाभ नहीं।

प्रश्न—वह नियम कौन से हैं ?

उत्तर—प्रथम यह कि जिसके मस्तक पर तिलक होता है उसको हिन्दू समझना चाहिए, जो हिन्दू होता है, उसको श्रुति और स्मृति की आज्ञा पर निश्चय रखना योग्य है। जब श्रुति और स्मृति पर निश्चय रखा तो दया, धर्म, सन्तोष, क्षमा, जप, तप, तीर्थ, दान, स्नान, ज्ञान-ध्यान, आदिक साधन सब प्राप्त हो जाते हैं। कण्ठी रखने के नियम यह होते हैं, कि कण्ठी उसको मिलती है कि जो गुरु दीक्षा लेवे, जो गुरु दीक्षा लेता है वह अपने गुरु की आज्ञा से परमेश्वर के भजन पाठ को आरम्भ करता और मन्द कर्मों से दूर भागने लग जाता है। और कण्ठी को गले में बांध के त्याज्य वस्तुओं के खान-पान से नितान्त बंधन और नीचे के संग से संकोच करने लग जाता है।

—:o:—

## "विधवा विवाह विषय में अनुमति"

एक पंडित ने पंडित जी से प्रश्न किया कि विधवा का दूसरा विवाह हो जाने के विषय में आपकी क्या अनुमति है ?

उत्तर—वर्तमान काल की विधवाओं के हाल सुन के और देख के मैं तन-मन से दूसरे विवाह का हो जाना योग्य समझता हूँ क्योंकि प्रत्येक वर्ष समाचार-पत्रों में पढ़ता हूँ कि अमुक शहर में एक विधवा को गर्भ गिराने में बहुत कठिन दण्ड हुआ, और अमुक नगर में एक अमीर की विधवा लड़की कहार के साथ निकल गई और अमुक मोहल्ला में एक लाला जी की छोटी आयु की पुत्री विधवा हो गई थी अब युवा होकर अपने माता-

पिता के सन्मुख अपना और उनका मुंह काला करती है, और अमुक सेठ जी की विधवा भतीजी जो अपने गाड़ीवान से सनी हुई उसकी माता ने दगा ली थी आज विष खा मरी या अमुक कूप में गिर पड़ी, और अमुक अपने माता-पिता के साम्हने बाजार में हो बैठी, सिद्धान्त यह है कि इन बुराइयों की अपेक्षा दूसरे विवाह का हो जाना मैं हजार दर्जे अच्छा समझता हूं।

प्रश्न—हां, यह तो सच है परन्तु आप यह बतायें कि शास्त्र में इस बात का निषेध है या नहीं ?

उत्तर—शास्त्र में दोनो बातें पाई जाती है अर्थात् इस प्रकार के वचन भी बहुत मिलते हैं कि जिनसे दूसरे विवाह का निषेध पाया जाता है। और ऐसे भी कुछ कम नहीं कि जिनसे आज्ञा पाई जाती है। जैसा कि देखो मैं आपको कई एक प्रमाण धर्मशास्त्रो के वह सुनाता हूं जिनसे आज्ञा पाई जाती है —

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ।
पचस्वापत्सु नारीणा पतिरन्यो विधीयते ॥

यह पराशरी के चार अध्याय का श्लोक और अर्थ इसके यह हैं कि यदि किसी स्त्री का पति मर जावे या कहीं दूर देश को चला जावे या नपुंसक हो जावे या अपनी जाति से गिर जावे तो इन पांच प्रकार की विपद् में स्त्री को दूसरा पति बना लेना चाहिए। फिर वशिष्ठ जी कहते हैं —

कुलशील विहीनस्य पढादि पतितस्य च
अपस्मारि विधर्मस्य रोगिणा वेषधारिणा
दत्तामपि हरेत् कन्या सगोत्रोढा तथैव च ॥

अर्थ—कि जो पुरुष कुल और शील से रहित हो, नपुंसक और जाति से पतित हुआ हुआ और जिसको कुष्ट आदि का रोग हो और जो मत रहित हो और असाध्य रोगी हो और जिसने

किसी दूसरे मत का स्वांग धार लिया है, इतने पुरुषों को दी हुई कन्या लौटा के और को दे देनी चाहिए।

प्रश्न—हां इस प्रकार के वचन तो मैंने पहले भी बहुत सुने और पढ़े हैं, परन्तु क्या विधि हो जिससे यह रीति प्रचलित हो जावे।

उत्तर—प्रचलित तो तभी हो सके कि जब आप जैसे कई और पंडित भी इस बात को आवश्यक समझें, अब बल्कि विरुद्ध इसके यह बात देखी जाती है कि प्रचार करने के स्थान, जो मनुष्य ऐसी बात का नाम लेता है, उसको महापापी कहने लग जाते हैं।

प्रश्न—जब शास्त्र में लिखी और संसार को भी अत्यन्त सुखदायक बात है तो लोग चाहे कुछ भी क्यों न कहें, मैं तो अवश्य इस बात के अर्थ यत्न करूँगा, परन्तु आप बताइए कि दूसरा विवाह करने में कोई उपद्रव तो न उठेगा?

उत्तर—हाँ उपद्रव भी एक दो अति कठिन हैं। परन्तु उनका खण्डन बहुत सुखेन हो सकता है। जैसा कि सुनो—मैं प्रथम उपद्रव का वर्णन करता हूँ—

एक यह उपद्रव है अब तो कुरूप कुचाल क्रूर और असाध्य रोगी और निर्धन व विद्याहीन व बुद्धिहीन चाहे किसी भाँति का पति स्त्री के सिर पर हो, इस कारण से उसकी सेवा और टहल और प्रसन्नता और आज्ञा पालन करने में त्रुटि नहीं करती कि इससे बिना मेरा कोई स्वामी नहीं और यदि यह न हो, तो मैं दो कौड़ी की हो जाऊँ। परन्तु जब इसके मरने के पीछे उसको दूसरा पति मिल जाने की आशा हो तो उस दुर्भाग्य और कर्महीन के घात कर देने को आप ही उद्यत हो जाया करेंगी। और दूसरा उपद्रव यह है कि कई एक स्त्रियां जिनको आगे का भय नहीं, परन्तु इस कारण से किसी दूसरे पुरुष की ओर नहीं ताकतीं कि मेरे पति को शुध हो जाएगी तो

वह मुझे त्याग देगा कि जिसके कारण मैं सारी आयु दुर्दशा में अकिंचन रहूँगी जब दूसरे विवाह की आशा हो, तो वह सर्वथा निर्भय हो जायेगी। परन्तु इन उपद्रवों के दूर करने के लिये मेरे विचार में दो बात ही काफी हैं। एक यह कि पुत्र-पुत्री का विवाह बड़े आयु में करना चाहिए और उनके अन्तर बाहर के गुण-दोष सब पर प्रकाश होने के कारण किसी को पीछे से पछताना न पड़े कि इसके साथ हमारा विवाह क्यों हुआ। दूसरा यह कि लड़की के समीपी सम्बन्धियों में से कोई पुरुष आप जाकर लड़का पसन्द किया करे न कि कोई नाई या ब्राह्मण अपने लोभ के अर्थ लड़कियों को अन्धे और लगड़ों के पल्ले डाल दिया करे।

प्रश्न—वाह! यह तो आपने और सुनाई पुत्र-पुत्री का विवाह बड़े होने पर करना चाहिए। शास्त्र में तो मैंने यह पढ़ा है कि १० वर्ष के पश्चात् लड़की रजस्वला हो जाती है कि जिसका संकल्प करना पुण्य नहीं।

उत्तर—हाँ परन्तु इतनी बड़ी क्यों करे? मेरा तो केवल यह कथन है कि ७ या ८ वर्ष की आयु में विवाह न करना चाहिए कि जब तक लड़की और लड़के के दोष व गुण सब गुप्त होते हैं। आपको यह विदित रहे कि ७ वर्ष की कन्या का विवाह करना केवल एक ही ऋषि का वचन है बहुत ऋषि लोगों की इस पर सम्मति नहीं।

प्रश्न—न मालूम कि लोग शास्त्र को छोड़ के अपनी इच्छा के काम क्यों करने लग जाते हैं कि जिस में कष्ट भी अत्यन्त हो—जब शास्त्र में छोटे आयु में विवाह करने की तीव्र आज्ञा नहीं तो क्यों नहीं बड़ी उमर में करते कि जब लड़की और लड़का आप भी एक दूसरे के गुण व दोष को समझ सकें।

उत्तर—श्रीमान्! आप किस किस बात का शोक करोगे,

भला इन बातों के विषय में तो थोड़ा-बहुत कुछ शास्त्र में भी लेख है कि छोटे आयु में विवाह करो परन्तु यह किस शास्त्र में लिखा है कि सारा आयु परदेशी हो कर और भाँति-भाँति के शारीरिक और मानसिक कष्ट उठा के धन के लिए सहस्रों भाँति के छल कपट को कमाओ और लड़की-लड़के के विवाह में अन्धे होकर गलियों में लुटाओ।

प्रश्न—क्या इस प्रकार का व्यय करना पुण्य में दाखल नहीं ?

उत्तर—वाह ! पुण्य तो एक ओर रहा बल्कि कई भाँति के पाप प्रकट हो जाते हैं, आप सत्य जानो कि यह सब बातें नाक की हैं न कि धर्म और धर्मशास्त्र की। धर्मशास्त्रों में ऐसी मर्यादाएँ और रीतियें कोई नहीं लिखीं कि जिनसे मनुष्य नित्य कष्ट उठावे। क्या आप नहीं देखते कि सहस्रों अमीरों ने लड़के-लड़कियों के विवाह में इतना धन को नष्ट किया कि जिसको ७ पीढ़ी तक खाते को कम न होता और कई एक मूर्ख विवाह के समय तो अन्धे होकर धन को नाश करते हैं परन्तु अन्त को बड़ों की जायदाद वेच के दो पैसे की मजदूरी को तरसते हैं। और कोई एक दुर्भाग्य पुरुष विवाहों के समय तो चार दिन की आहा करा लेते हैं परन्तु फिर खानपान पहरान आदि से तंग होकर चोरी और पथमारी और डाका आदि को अपना निर्वाह नियत कर लेते हैं। क्या यह सब बातें धर्म और धर्मशास्त्रों में लिखी हैं ? मैंने आप अपने नेत्रों से देखा है कि हमारे मोहल्ले में एक अमीर के यहाँ बरात आई कि जिसमें सहस्रों रुपए की बखेर होने के कारण एक कंगला भीड़ में कुचला गया और तुरन्त पुलिस ने आन कर बेटी और बेटे वाले के नाक में दम कर दिया। क्या आप इसको शास्त्र का प्रमाण समझोगे ? शास्त्र में तो यह लिखा है कि अच्छे घर और वर को देख कर कन्या

दान देवे और एक कटोरी दूध या एक मूठ चावल की देकर नमस्कार करे। हां यह भी अवश्य लिखा है कि जिसको सामर्थ्य हो वह बेटी और बेटे को बहुत सा धन व भूषण और भोजन वस्त्र से सुशोभित कर और उस आनन्द के समय कुछ दीनों व निर्धनों को दान देवे, या धर्मार्थ कोई पाठशाला बनवाए। परन्तु यह कहीं नहीं लिखा कि सैकड़ों रुपये व मद्य मांस उड़ने चाहिए। और दो चार नाच मुजरे और भाण्डों और नकलियों के झुण्ड जनेत के साथ अवश्य होने चाहिए। कि जिसस भांति-भांति के पापों का आविर्भाव और मन के बिगड़ जाने का सन्देह है। आप सच जानो कि यह सब रीतियें अज्ञानी पुरुष और स्त्रियों ने प्रचलित की है। किसी धर्मशास्त्र में नहीं लिखी और न इनके करने से कोई भलाई और पुण्य प्रकट होता है।

प्रश्न—न महाराज! आप यह क्या वर्णन करते हैं? शास्त्र में तो प्रकट लिखा है कि कन्या के विवाह पर जितना धन लगाया जाए पुण्य में दाखल होता है क्योंकि जैसा कन्या का दान है वैसे वह भी सब कुछ दान ही है कि जो कन्या के विवाह पर लगाया जावे।

उत्तर—हां कन्या का दान तो अवश्य दान ही है, पर उसका फल भी अवश्य लिखा है। परन्तु मेरा तात्पर्य यह है कि जो धन नाच मुजरे और अग्नि क्रीड़ा और डूम-भाण्ड आदि को दिया जाता है और कल्लर में बखेरा जाता है वह किस दान में लिखा है? क्या अच्छा हो कि वह लड़की-लड़के को मिल जाया करे कि जिसको शास्त्र में दान दहेज लिखा है?

प्रश्न—हां यह तो सब कुछ व्यर्थ है परन्तु कन्या को जो अपनी प्रतिष्ठा के अर्थ सहस्रों रुपयों का भूषण या बहुमूल्य वस्त्र बना दिया जावे वह पुण्य में गिना है या नहीं?

उत्तर—निःसन्देह, यह तो पुण्य में गिना है परन्तु जो

लोग पुत्री-पुत्र के लिए गोटे किनारी और कलावत्तू से लदे हुए कपड़े बना के हजारों रुपया हानि करते हैं, वह बुद्धिमान नहीं गिने जाते। मेरे विचार में गहना कपड़ा ऐसा बनाना चाहिए कि जो नित्य पहरने और वर्तने के योग्य हो और जो नित्य सन्दूक में धरा मैला हो जाए, और आवश्यक समय चार रुपये की वस्तु चार आने को बिके, उसका बनाना भी धन को कल्लर में बिखेर देना है। प्रयोजन यह है कि विवाह उन मर्यादाओं से करना चाहिए कि जो वेद और शास्त्रों के विरुद्ध न हों। जो बातें किसी एक कुल और एक शहर या नगर में शकुन या टेहुले के नाईं विवाह के समय नियत हो रही हैं उनको भी वेद और शास्त्र के विरुद्ध समझ के अवश्य त्यागना चाहिए जैसा कि पुरानी जूती को सिर झुकाने या मांस को हाथ पै रखके चील्ह मनाने की रीति है और कई एक कुलों में आटे की एक कुतिया शर्बत से भरते और फिर उसे काट के वह शर्बत और आटा खाने-पीने में लाते हैं और प्रायः स्थानों में स्त्रियें बाजारों में चलती हुई अति अश्लील शब्दों को सिठनी समझ कर गाती हैं। परमेश्वर करे यह समूह रीतिएं जो केवल स्त्रियों और विद्याहीन पुरुषों ने प्रचलित कर रखी हैं, शीघ्र दूर हो जावें।

—:o:—

### "पंडित जी और एक दुकानदार ब्राह्मण के प्रश्न और उत्तर"

**प्रश्न**—एक पंडित जी ने एक ब्राह्मण से पूछा कि देवता ! परसों जब तुम सन्ध्या के समय ढोल बजाने वाले एक मुसलमान के साम्हने अपने गले में कपड़ा डाल कर हाथ जोड़े खड़े थे क्या कारण था ?

**उत्तर**—मैंने उस ढोल बजाने वाले मुसलमान के आगे तो हाथ नहीं जोड़े थे सखी सुलतान के आगे जोड़े थे।

प्रश्न—क्या वह सखी सुलतान कोई वेदव्यास जी के कुल में से ब्राह्मण था या खास तुम्हारे कुल का पूज्य वृद्ध था ?

उत्तर—नहीं महाराज ! था तो वह भी मुसलमान।

प्रश्न—वह उस समय कहां था ? मैंने तो केवल तुमको और भराई को ही देखा था और तीसरा जन बिना तुम्हारे लड़के के और वहां कोई प्रस्तुत न था।

उत्तर—वह तो चिरकाल हुआ मृत हो गया, मुलतान की ओर डेराजात के इलाके में उसकी खानकाह है और लाखों आदमी उसके दर्शन को जाते हैं, और यदि कोई श्रद्धा से उसको स्मरण करे तो सब स्थान हाजर नाजर है। महाराज ! हम पर तो उसकी बड़ी कृपा है, वह लड़का जिसका आप कथन करते हो, उसी के प्रताप से जीता और निरोग है वरन् पहले तो मेरे दो, तीन लड़के मर चुके हैं।

प्रश्न—पहले तो मुझे यही शोक था कि तुम ब्राह्मण हो कर मुसलमान के आगे हाथ जोड़े क्यों खड़े थे परन्तु अब ज्ञात हुआ कि वह मुसलमान भी जीता नहीं था जो कभी तुम्हारे काम आता। बड़े शोक की बात है कि लोग उसके दर्शन को जाते हैं और यह बात भी कुछ कम आश्चर्य की नहीं कि तुम उसको प्रत्येक स्थान में सर्वव्यापी समझते हो जैसा कि परमेश्वर को समझना चाहिए। जो तुमने कहा कि मेरे बहुत लड़के मर गए और यह लड़का उसी की कृपा से जीता और अरोग है, इसमें मेरा यह प्रश्न है कि जिसने तुम्हारे पुत्र को प्राण दिए, वह आप क्यों जीता न रह सका ? क्योंकि तुमने आप ही कहा कि वह चिरकाल हुआ मर गया और अमुक स्थान उसकी खानकाह है।

उत्तर—हम उसको मुर्दा नहीं समझते, वह सदा अमर है, और जो आपने कहा कि परमेश्वर के बिना हाजर-नाजर कोई

नहीं यह भी सच है परन्तु जैसे राजा के पास वही जन पहुँचता है कि जो उसके मंत्रियों की सेवा उठावे, ऐसे ही यह पीर फकीर भी परमेश्वर के मंत्री हैं; इनकी टहल-सेवा करने से मनुष्य वहाँ पहुँच सकता है।

प्रश्न—तुमने आप ही तो कहा था कि वह चिरकाल से मर चुका और अब कहते हो वह सदा अमर है। अच्छा तुमारी इच्छा, परन्तु तुमने जो यह कहा कि जैसे राजा के मन्त्री होते हैं, पीर फकीर परमेश्वर के मन्त्री होते हैं, इसमें मैं यह पूछता हूँ कि राजा तो हमारी तुम्हारी न्याईं मनुष्य होता है कि जिसको दूर व पास के काम कराने के लिए मंत्रियों की आवश्यकता होती है। क्या तुम परमेश्वर को भी वैसा ही आधीन समझते हो कि जिसको अपने काम-काज में सहायता लेने के लिए किसी पीर फकीर को अपनी मुसाहिबी में रखना पड़ता है।

न मिसर जी आप उस परमेश्वर को सर्वशक्तिमान् और सर्वगुण निधान समझ के अपने दूध पूत धन के लिए उसी के निकट प्रार्थना किया करो और सब उसी के द्वार के भिक्षु हैं, जैसे पिता के पास जाने के लिए हमको किसी सहायक की आवश्यकता नहीं वैसे ही उस परम पिता के पास जाने के लिए हमको किसी दूसरे की सहायता को न ढूँढना चाहिए। क्योंकि उसका द्वार नित्य खुला रहता है।

प्रश्न—उस ब्राह्मण ने कहा कि यह तो आप सत्य कहते हो परन्तु मैं आप से एक बात पूछता हूँ जरा उसका उत्तर तो मुझे दीजिए क्योंकि देर से मेरे मन में इस बात का खटका रहता है। भला बताइए तो मैं बचपन में एक मुल्ला के पास फारसी पढ़ने को जाया करता था, वह प्रायः हम लड़कों को शिक्षा दिया करता था कि जो मनुष्य खुदा के पास पहुँचना चाहे वह पहले

मोहम्मद साहिब के नबी होने पर निश्चय लावे कि जिसके बिना कोई मनुष्य खुदा को नही पा सकता है। और आप कहते हैं कि खुदा के पास जाने के लिए किसी वसीले की लोड नहीं, इसमें सच्ची बात कौन सी है ?

पंडित—नि सन्देह मुसलमान लोगो का तो यही दावा है कि बिना मोहम्मद साहिब के कोई मुक्ति नही पा सकता और इनके अतिरिक्त और भी एक का मत ऐसा ही मानते हैं कि बिना नबियो पर श्रद्धा लाने के खुदा के पास पहुँचना असम्भव है। परन्तु हमारे शास्त्रो मे परमेश्वर की प्राप्ति के लिए किसी वसीले की आवश्यकता नहीं जो कोई सत्य मन से उसकी भक्ति करे और वह श्रुति स्मृति की आज्ञानुसार शुभ कर्म करता रहे और पवित्र आत्मा हो जावे वही परमेश्वर का प्यारा है। इसमें न किसी स्वांग और बनावट की आवश्यकता है और न किसी-नबी और किसी अवतार की आवश्यकता। "हर को भजे सो हर का होवे।"

ब्राह्मण—तब तो मुसलमानों का दावा झूठा ठहरा।

पंडित—मैं तो यह नही कहता परन्तु इतनी बात का तुम स्वयं न्याय करो कि मुसलमान कहते हैं कि जब तक मोहम्मद साहिब का नबी होना स्वीकार न करा चाहे कैसे ही उत्तम हो मुक्ति नही, मूसाई कहते हैं कि हजरत मूसा के बिना कोई मुक्ति-दाता नही, और ईसाई कहते हैं कि हजरत ईसा ही सब का मुक्तिदाता है जो उस पर श्रद्धा न लावेगा वह पछतावेगा। अब सोचना चाहिए कि जब मुसलमानो की दृष्टि मे ईसाई झूठे और ईसाइयों की दृष्टि मे मोहम्मदी भूल पर हैं और मूसाई लोगो की दृष्टि मे यह दोनो मत सच्चे नही और न इन दोनों की दृष्टि मे मूसाई सत्य मार्ग चलते हैं तो मुक्ति के जिज्ञासु को किस नबी पर निश्चय लाना चाहिए ? कि जिनसे परमेश्वर का

नाम विश्वनाथ सुना है, न कि परमेश्वर मुसलमान नाथ और ईसाई नाथ और यहूदी नाथ ?

**ब्राह्मण**—तब तो किसी देवी देवता के मानने की भी क्या आवश्यकता है।

**पंडित**—सखी सुलतान के मानने से तो हिन्दू लोगों को देवी-देवताओं के मानने का बहुत लाभ है क्योंकि वह पराए धर्म की पूजा और यह निज हिन्दू धर्म की पूजा परन्तु जिन लोगों ने अखण्ड सच्चिदानन्द परमब्रह्म परमेश्वर को अपना हर्त्ता-कर्त्ता समझ लिया वह प्रायः देवी देवते की पूजा से भी प्रयोजन नहीं रखते क्योंकि विना उसके जगत पूज्य कोई नहीं।

**ब्राह्मण**—भला तो यह कथन कीजिए कि गूंगा और शीतला आदिक का मानना कैसा है ?

**उत्तर**—कुल रीति समझ के तो चाहे किसी को मानो परन्तु भक्ति और मुक्ति का दाता बिना नारायण के और किसी को नहीं मानना चाहिए।

**ब्राह्मण**—यह भी तो भक्ति और मुक्ति जिसको देते हैं, परमेश्वर से ही लेकर देते हैं। फिर इनसे माँगने से क्या हानि है ?

**पंडित**—तुम्हारे कथनानुसार जब यह ही परमेश्वर से माँग के ही भक्ति और मुक्ति मनुष्य को देते हैं तो फिर मनुष्य उसी परमेश्वर से क्यों न माँगें कि जिससे यह माँगते हैं ?

**ब्राह्मण**—अच्छा महाराज ! हम आज से परमेश्वर के बिना और किसी को पूज्य न समझेंगे परन्तु यह तो बताइए कि यदि कोई जन सखी सुलतान के नाम की शरीनी बाँटता आवे, तो लिया करूँ या न ?

पंडित—यदि किसी सूतकी या पातकी के घर का या हाथ का अन्न या जल खा लेना तुम्हारे शास्त्रानुसार विधि है, तो सखी सुलतान के नाम की शरीनी खा लेने का भी कुछ डर नहीं। क्या तुम यह नहीं जानते कि सखी सरवर यदि कोई था तो मुसलमान था, कि जिसके मरने के पीछे उसका क्रिया-कर्म कुछ नहीं हुआ होगा, बस जिसका क्रिया-कर्म न हुआ हो, वह धर्मशास्त्र की आज्ञानुसार प्रेत है और उसका पातक कभी दूर नहीं होता कि जिसके नाम की चीज हिन्दू लोगों को अपने सेवन में लानी योग्य गिनी जावे।

ब्राह्मण—हम तो रुक भी जावेंगे परन्तु स्त्रियों का रुकना बहुत कठिन है। ऐसी विधि बताइए कि जिससे स्त्रियों की रुचि उधर से हट जावे।

पंडित—प्रथम कोई विद्या पढ़ाओ और यदि यह नहीं कर सकते, तो अपने धर्मशास्त्रों की बातें सुनाया करो और यदि यह भी कठिन है, तो विष्णु सहस्रनाम का पाठ कण्ठ करा के कह दो कि नित्य इसके दो पाठ कर लिया करो और पवित्र रहा करो। भला यदि यह बात भी कठिन समझते हो, तो राम नाम का उपदेश करो कि हर समय जिह्वा से कहती रहा करे, और यदि हर समय कठिन हो तो प्रातः और सन्ध्या का नियम अवश्य ही करा दो और यह भी कह दो कि जो मनुष्य परमेश्वर की भक्ति से शून्य है, उसके हाथ से खाना-पीना त्याग करो। जब इस नियम पर स्थिर हो जाएगी, तो अपने आप अन्य मत की पूजा और या भिन्नों से मिलना-जुलना और उनके हाथ या उनके नाम का खाना पीना छूट जाएगा। जैसा कि एक जन को मैंने देखा है कि वह नित्य हलवाइयों का देनदार रहता है। और बाजारों में हर वक्त चलता फिरता कुछ खाता दृष्टि आता था और उसके मन में किसी के साथ छूए का अधिक परहेज

नहीं था परन्तु जब से वह त्रिकाल सन्ध्या करने लगा और चौके से बाहर किसी वस्तु का खाना अच्छा नहीं समझता और गले में तुलसी की माला रखता है तब से वह उसकी सारी आदतें अपने आप ही रफा-दफा हो गईं। इसीलिए हमारे आचार्यों ने चौके में रोटी खाने का बन्धन लिखा है कि जिससे अनायास अभक्ष खानपान का बन्धेज हो जाता है।

—:o:—

## दो कल्पित साधुओं का वार्तालाप

प्रश्न—तुम को मैं नित्य बहुत से लोगों का घेरा हुआ और या हर वक्त किसी काम में प्रवृत्त देखता हूँ, चकित हूँ कि चैन कैसे पड़ती होगी। श्रीमान् हम को तो एकाग्रता पसन्द है यदि कोई जन पास आता है तो विष प्रतीत होता है।

उत्तर—मैंने भी एकांत में बैठ के देखा है परन्तु मन उदास और चंचल हो जाया करता था। और प्रवृत्ति में कभी यह प्रतीत भी नहीं हुआ कि दिन कब चढ़ा और कब छिप गया।

प्रश्न—निःसन्देह बिना किसी बहलाव के तो एकान्त बैठने में चित अवश्य घबरा जाता है परन्तु परमेश्वर का भजन करना या किसी पुस्तक का आगे ले बैठना भी तो कुछ कम बहलाव नहीं।

उत्तर—मैं तो परमेश्वर का होना भी सत्य नहीं मानता, और न मेरे निश्चय में कोई नरक स्वर्ग भी सत्य है, फिर मै नाम किसका लूं ? और क्यों लूं ? और जो तुम ने पोथी-पुस्तकों का पठन पाठन कहा हाँ, यह तो कभी-कभी किया करता हूँ परन्तु क्या करूँ मेरे स्वभाव को तो अनर्थ आ गया कि गम्भीर और कठिन विषय के कूप में गरक होने की कुछ आवश्यकता ही नहीं

रहो और न किसी नवीन विद्या के सीखने और समझने का प्रयोजन और जो पुस्तकें विद्या वेदान्त और नीति की पहले दिन से मन को भाती थी चाहे उन का लेख और कथन कुछ अलग और नया नया ज्ञात होकर जरा आनन्द देता है परन्तु जिस दशा म उन सब का सक्षेप और परिणाम प्रथम ही से एक है और मेरे मन म स्थान पा चुका है अब पृष्ठ खोलने की कुछ आवश्यकता नही समझता।

प्रश्न—जब कभी तुम्हारे पास कोई मनुष्य नही आता होगा तो बडे उदास होते होंगे। हमारे पास चाहे कोई सारी उमर न आवे तो उदासीन नही होता।

उत्तर—हाँ यह सत्य है परन्तु जब लोगो से प्रेम करो और किसी को अपने शारीरिक मानसिक वाचनिक कृत्या से कष्ट न दो और हर वक्त सब से प्रसन्न रहो तो ऐसा समय कभी नहीं आता कि जब कोई मनुष्य अपने पास न आवे।

प्रश्न—तुम लोगो को कैसे प्रसन्न रखते हो ?

उत्तर—उनको शुभ शिक्षा करना और अच्छी अच्छी विद्या और बुद्धि और शास्त्र की बातो को सुनाते रहना यही लोगो के प्रसन्न रखने की रीति है।

प्रश्न—जाना गया कि तब तुम्हारे मन मे किसी प्रकार की भूख है कि जिसके कारण लोगों को हर समय प्रसन्न रखना चाहते हो वरन् क्या लोड कि किसी से सिरखपाई करें।

उत्तर—भूख तीन प्रकार की होती है, एक यह कि हमारा परलोक म भला होगा, दूसरी यह कि लोग हमको कुछ दिया करे, तीसरी यह कि लोगो के मिलने जुलने के कारण मन को हर समय बहलाव रहता है कि जो कभी उदास नही होने देता सो परलोक की भलाई की तो यहाँ कुछ परवाह नहीं और न

उनसे कुछ लेने की इच्छा है। हां इस बात की मेरे मन को बहुत आकांक्षा है कि कोई क्षरण एकाकी न बीते।

**प्रश्न**—तुम को यदि वह लोग कुछ दे तो क्या छोड़ दो ?

**उत्तर**—निःसन्देह जब कोई आता जाता है तो भेंट पूजा भी अवश्य देता है, और हम आवश्यकता में ले भी लेते हैं, परन्तु इससे अतिरिक्त यह कैसी अच्छी बात है कि वह लोग नित्य तन मन से सेवा में प्रस्तुत रहते और दास गुलामों के तुल्य किसी प्रकार की आज्ञा पालन में संकोच नहीं करते और जब किसी ओर को चलने लगें तो संग चलते और प्रत्येक शोक व आनन्द में संगी रहते हैं, फिर क्या लाभ कि मनुष्य नित्य कुष्टि पुरुष की भाँति सब से अलग रहे और लोग उसकी समीपता से घृणित रहा करें।

**प्रश्न**—तब तो तुम को राग हो जाने के कारण उन लोगों के शोक में शोक ही अवश्य उठाना पड़ता होगा।

**उत्तर**—जब हम यह जानते हैं कि लोगों का मिलना-जुलना हमने केवल अपने मन बहलाव के लिए रखा हुआ है, तो राग का क्या प्रयोजन कि जिस के कारण लोगों के शोक में शोकित होना पड़े और राग भी उस पुरुष के मन में हुआ करता है जो सदा एक ही स्थान में रहे। जब हम वर्ष में कई स्थान देखते और सहस्रों भाँति के नवीन-नवीन मनुष्य सब स्थान में मिल जाते हैं तो राग और द्वेष क्या वस्तु है।

**प्रश्न**—तब तो तुम को हर समय कुछ न कुछ प्रपंच रचना पड़ता होगा कि जिसके कारण लोग आया जाया करें।

**उत्तर**—न तो हम किसी की चिकित्सा करते, और न किसी को गंडा तावीज और झाड़ा टोना आदि व्यर्थ के भ्रम में डालते हैं, केवल सबके साथ प्रेम भाव से मिलना, और जिसमें

दूसरे का भला हो वैसी शिक्षाओं का सुनाना हमारा काम है, तुम चाहे इसका नाम प्रपंच रखो चाहे कुछ और।

प्रश्न—अच्छे-अच्छे साधु और सन्त जन तो इन बातों को देखके कभी प्रसन्न नहीं होते होंगे जो सदा एकान्त को पसन्द करते हैं।

उत्तर—वह प्रसन्न न हों तो मेरी क्या हानि? परन्तु मुझे तो हर समय प्रसन्नता रहती है। एक बात और भी है कि इन साधु और सन्त जनों का एकान्त रहना तीन कारण से जाना जाता है। एक यह कि वह परलोक के लिए कुछ भजन पाठ करते रहते होंगे कि जिसकी मुझे बिलकुल लोड़ नहीं, दूसरे यह कि उनको एकान्त रहने की प्रकृति बालपन से ही रही होगी कि मुझ को नहीं हुई, तीसरा यह कि वह एकान्त रहने को अपनी बड़ाई समझते होंगे कि जिसकी मुझे अधिक आवश्यकता नहीं। हमारा तो यह स्वभाव है कि जब एकान्त को मन चाहे तो एकान्त हो जाना और जब बहलाव की इच्छा हो तो प्यारे प्रेमियों से मिल बैठना।

प्रश्न—किसी सर्व बन्धन रहित और एकान्तवासी साधु को देखके कभी तो तुम्हारे मन में भी एकान्त का उत्साह उत्पन्न होता ही होगा कि हम व्यर्थ लोगों की खुशामद दरामद करते हैं।

उत्तर—निःसन्देह, परन्तु उस समय यह बात स्मरण कर लेते हैं कि हमने जान बूझ कर अपना मन बहलाने के लिए लोगों से मिलना जुलना रखा हुआ है वरन् हमारे समान निर्बन्ध कौन है कि जिसको परमेश्वर की भी इच्छा नहीं और फिर यह विचार भी मन में समा जाता है कि मर जाने के पीछे एकान्त वासी और संसार में प्रवृत्त दोनों तुल्य ही राख हो जाते हैं, यह

विचार केवल जोते जी तक का है, जिसका जी एकाग्रता में लगे वह एकान्त हो जाये, और जिसका परचने को चाहे वह सब से मिलता-जुलता रहे, परन्तु मेरे विचार में संसार में रह कर सब से मिलत-जुलते रहना बहुत लाभकारी है, वह एकाग्रता उसी के योग्य है कि जिसको जगत से कुछ प्रयोजन न हो।

प्रश्न—तुम लोगों को प्रेम रस भरी बातों और शुभ शिक्षाओं से प्रसन्न रखते हो, परन्तु हमने देखा है कि बहुत लोग किसी की परवाह नहीं रखते, बल्कि गालियें देते हैं, तो भी जिन लोगों ने उनके पास आना और सेवा करना है, वह अवश्य हो आते और सेवा कर जाते हैं फिर क्या आवश्यक कि किसी को प्रसन्न रखो।

उत्तर—हां यह भी सत्य है, कभी-कभी स्वतः नियम है कि कोई एक पुरुष गालियां खाकर भी आना नहीं छोड़ता, परन्तु मनुष्य को उस नियम पर चलना चाहिये कि जो साधारण और सनातन हो, वह यही है कि आप सब से प्रसन्न रहो और दूसरों को प्रसन्न रखो, इससे पशुओं के चित्त पर भी प्रेम का प्रभाव हो जाया करता है, हमने इस नियम की परीक्षा यों की है कि जब किसी के समीप होना चाहा, तो वह समीप हो गया, और जिससे आप दूर हुए वह दूर भाग गया।

प्रश्न—जब तुम संसार में प्रवृत्त रहना चाहते हो तो हमारे चित्त मे मान-प्रतिष्ठा की भी बहुत आकांक्षा रहती होगी और बहुत लोगों को शत्रु और बहुतों को मित्र समझते होंगे। बस हमारी दृष्टि में यह एक बड़ा भारी दोष है।

उत्तर—यद्यपि अपने हाथ से तो अपनी प्रतिष्ठा को बिगाड़ना हम कभी नहीं चाहते कि व्यर्थ लोगों को दृष्टि में प्रतिष्ठाहीन हो जावें, परन्तु ऐसी मान-प्रतिष्ठा को हम अच्छा

नहीं समझते कि जिसके लिए अपने मानसिक सुख हम को त्यागने पड़ें और न हम अपनी इच्छा से किसी को शत्रु और अत्यन्त मित्र बनाना चाहते हैं।

प्रश्न—झूठ बोलना, चोरी करना, और छल, कपट, व्यभिचार, आदिक को पाप समझते हो या नहीं ?

उत्तर—परलोक में कष्टदायक या नरक में डालने वाला पाप तो मैं नहीं समझता, परन्तु इन कर्मों का करना मैं मनुष्य-धर्म के सर्वथा विरुद्ध समझता हूँ और अतिरिक्त सरकारी दण्ड के जिन पुरुषों से मिलने जुलने को मैं अपने मन का बहलाव समझता हूँ वह मुझे ऐसी चेष्टाओं का करने वाला समझ कर कदापि मेरे पास न आएँगे।

प्रश्न—मनुष्य का मन तो सदा एक बात पर स्थिर नहीं रहता, तुमको यह सब बातें स्मरण कैसे रहती हैं कि मैंने जान-बूझ अपने मन बहलाव के अर्थ लोगों से मिलना-जुलना रखा हुआ है, इस हद से न्यून या अधिक न होने पावेगा।

उत्तर—एक तो मेरे मन को इन बातों का स्वभाव ही होता जाता है। और दूसरा जो-जो प्रण मैंने अपने चित्त से अपने सुख के निमित्त बाँध छोड़े हैं उनको एक 'स्मरणप्रतीक' पुस्तक पर लिख छोड़ा है कि जिस को कभी-कभी खोल बैठा करता हूँ और स्वभाव से मात्रामात्र न्यूनाधिकता नहीं होने देता।

प्रश्न—धन्य-धन्य महाराज! यदि आप परमेश्वर और परलोक की ओर से नकारी न होते तो मैं आपके चरणों को चूम लेता क्योंकि जो सचाई और पाप और प्रेम भाव की बड़ाई मैंने तुममें देखी और किसी विद्वान व महापुरुष और साधु में नहीं। बताइए तो सही आप परमेश्वर का होना क्यों नहीं मानते ?

**उत्तर**—यह तो आपको भली-भांति ज्ञात हो चुका कि मैं पढ़ा-लिखा मनुष्य हूँ और बहुत सी पोथी पुस्तकें वैदिक विद्या व वेदान्त आदि की मेरी दृष्टि से निकल चुकी हैं और सैंकड़ों युक्ति उक्ति को सुन चुका हूँ। बस क्या करूँ कि आपके परमेश्वर ने मेरे मन में घर न किया कदाचित् वह आप ही मुझे इस बोझ उठाने से बचाना चाहता हो वरन् क्या शक्ति थी कि मैं नकार कर सकता।

**प्रश्न**—अस्तु ! जैसे हो अच्छे हो, परन्तु यह तो बताओ कि जिस पहरान और स्वाँग हिन्दू रूपी में मैं तुम्हें इस समय देखता हूँ कभी इससे विरुद्ध भी हुआ करते हो या नहीं।

**उत्तर**—पहरान तो चाहे कई बार बदल जाता है परन्तु उन बातों और चिन्हों और मर्यादाओं से विरुद्ध कोई चेष्टा करना कि जिसके कारण मेरे संगियों और समीपियों और मित्रों और पड़ौसियों और स्वदेशियों और स्वमतावलम्बियों में विरोध या संदेह या दोष या किसी प्रकार की ग्लानि उत्पन्न हो जब तक मुझे उनमें रहना स्वीकार है, मुझे कदापि-कदापि पसन्द नहीं क्योंकि इनसे अलग होकर भी किसी न किसी स्वाँग या पहरान को अवश्य धारण करना पड़ेगा।

**प्रश्न**—इस बात का उपदेश तुम अपने संगियों को भी किया करते हो या नहीं कि परमेश्वर कोई वस्तु नहीं है।

**उत्तर**—हमारा धर्म यह है कि जिन बातों और कामों के कहने और करने से संसार का प्रबन्ध बिगड़ता हो उनको प्रकट करना योग्य नहीं समझते बल्कि हम सब लोगों को सदा यही शिक्षा करते हैं कि अपने-अपने धर्म और कर्म में निश्चय रखें और परमेश्वर से प्रेम।

**प्रश्न**—तुमने ऊपर कहा था कि हम झूठ बोलना कभी

अच्छा नहीं समझते इससे बढ़के और झूठ क्या होता है कि जो बात अपने मन में न हो दूसरे को उसकी शिक्षा करना।

उत्तर—यह तो सदा की बात है कि नीरोग पुरुष किसी औषध का खाना यद्यपि अपने लिए आवश्यक नहीं समझते तथापि अन्य रोगियों को सदा औषधियों के सेवन की शिक्षा करते हैं और कोई उन पर मिथ्या भाषण का दोष नहीं लगाता बल्कि लोगों के हितकारी गिने जाते हैं।

प्रश्न—भला यह भी गनीमत है कि तुम परमेश्वर को संसार रोग की औषध तो समझते हो, आशा है कि कभी आप भी अवश्य खाने लग जाओगे।

उत्तर—मैं चिरकाल तक खा चुका और इस समय की आरोग्यता प्राप्त होना इसी का प्रताप समझता हूँ और लोगों के भले के अर्थ मैं अब भी इस औषध का सेवन कुछ बुरा नहीं समझता अर्थात् परमेश्वर के नाम को जपना अच्छा समझता हूँ।

प्रश्न—यह तो बड़े दम्भ की बात है कि लोगों को दिखाने के लिए नाम जपते रहते हो।

उत्तर—यदि केवल दिखाने के अर्थ हो तो अवश्य दम्भ है। पर यदि उनके भले के लिए हो, अवश्य सांसारिक है परन्तु इस बात का साक्षी विना मेरे अन्तःकरण के और कोई नहीं।

प्रश्न—तुम्हारे कथनानुसार परलोक तो कोई वस्तु ही नहीं कि जहाँ बदला मिलने के कारण लोगों का भला गिना जावे। फिर परमेश्वर के मानने और उसको जपने में आप उन लोगों का क्या भला समझते हो?

उत्तर—जो लोग परमेश्वर का होना मानते, और उसकी भक्ति और प्रेम में मन को ऋजु रखते हैं, वह चोरी यारी व

मिथ्या भाषण और छल कपट आदि से त्याग और दया, दान, क्षमा, सत्य, प्रेम, कृपा, सन्तोष, पुण्य, मान आदिक शुभ कर्मों की प्राप्ति में परिश्रम करते रहते हैं। और इस उत्तम स्वभाव के कारण सांसारिक प्रबन्ध कदापि अस्तव्यस्त होने नहीं पाता, कि जिसका सुधारे रखना मनुष्य का धर्म है।

प्रश्न—यदि आपका विचार सत्य है कि परमेश्वर कोई नहीं और इससे आप अपने को सुख भी समझते हो, तो उचित नहीं कि अपने प्यारे और मित्रों को इस भाव और भेद से ज्ञात न करो क्योंकि न्याय का नियम नहीं कि उनको इस पदार्थ से अभागी रखो। फिर क्या कारण है कि उनसे संकोच रखते हो।

उत्तर—जैसा कि ज्वर के रोगी पुरुष को दूध और घृत का खिलाना दया नहीं बल्कि परम शत्रुता है, वैसे ही संसार के प्रमोहितों को इस भाव से जानकार करना मैं उनके लिए हानिकारक समझता हूँ। हाँ इसमें सन्देह नहीं कि जो इस भेद के योग्य और प्रेमी हैं, उनको मेरी शिक्षा की भी आवश्यकता नहीं। अपने आप से सिद्धान्त पर पहुँच जाते हैं, यदि यह पदार्थ प्रत्येक के योग्य होता तो भूतकाल के महत्‌जन अपने पुस्तकों और ग्रंथों से यह नियम क्यों लिखते कि जब तक जप, तप और भक्ति के साथ मन भली भाँति शुद्ध पवित्र न हो जावे तब तक कोई पुरुष ब्रह्म विद्या का अधिकारी नहीं। वह यही बात है कि जिसने पाया उसी ने छिपाया, फिर श्रीकृष्ण जी ने सुनाया है कि "न बुद्धिभेदं जनयेद् ज्ञाना कर्मसगनाम्" अर्थ इसके यह हैं कि जो अज्ञानी पुरुष कर्मों के संगी हैं, उनको मन का भेद न बतावे।

प्रश्न—मुसलमान हिन्दुओं को, और हिन्दू मुसलमानों को,

वैरागी सन्यासियों को, और सन्यासी वैरागियों को, बुरा कहते हैं। आपके मत में अच्छा मत कौन सा है?

उत्तर—यदि चार लड़के भिन्न-भिन्न खेल में मस्त हों, तो बुद्धिमान मनुष्य किसी को अच्छा या बुरा नहीं कहता। उसका यह विचार होता है कि इस समय तो यह चारों अपने अपने खेल में उन्मत्त हैं। यहाँ तक कि एक दूसरे को अच्छा या बुरा कह के लड़ता है, परन्तु जब सयाने हो जाएँगे तो स्वय जान लेंगे कि हम सब भूल में थे। और यह सब मेले खेल हो थीं जैसा कि मेरी दृष्टि में अब न हिन्दू अच्छे या बुरे हैं और न मुसलमान, दोनों ही लकीर के फकीर हैं। हाँ, मैं उस मनुष्य को भला नहीं समझता कि जो प्रेम, प्रीति व शील स्वभाव से शून्य हो, इसमें सन्देह नहीं कि वह महापुरुष से अधिक है। उसने मनुष्य धर्म को पूरा न करने के हेतु अपने को गोबर का कीट बना डाला। मत का चाहे हिन्दू हो चाहे मुसलमान सत्य पूछो तो सर्व मत-मतान्तर का निचोड़ मैं इतनी बात को समझता हूँ कि न आप किसी को सतावें और न कोई उसको रंज दिखावे जैसा कि :—

"यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः॥"

अर्थ इसके यह हैं कि जो मनुष्य न किसी को कष्ट देता और न आप किसी से कष्ट उठाता है, और जो शोक व आनन्द व भय व प्रसन्नता से रहित हो वह मेरा प्यारा है। मत और स्वांग चाहे कोई हो, उस पर निर्भर नहीं।

प्रश्न—यह श्लोक तो कृष्ण महाराज का वचन है। क्या आप इन पर निश्चय रखते हो?

उत्तर—जो स्वयं श्रेष्ठ और जगतोपकार के लिए पुरुषार्थ करे, मैं इन सब पर विश्वास रखता हूँ और वृद्ध जानता हूँ।

प्रश्न—मेरी विचार में आप से मिल कर कभी कोई मनुष्य अप्रसन्न नहीं होता होगा। क्योंकि आपका स्वभाव अति सत्य-प्रिय व न्यायकारी और मिलापी है।

उत्तर—न महाराज ! कोई-कोई पुरुष अप्रसन्न और दुखी तो हो जाता है, परन्तु अपना स्वभाव किसी से अप्रसन्न या दुखी होने का नहीं।

प्रश्न—संसार के लोग उसी के साथ प्रसन्न रहते हैं कि जो उनके पीछे चले या बन्धुवा होवे। व उनकी रीति रसम को माने, आप इनको सहार नहीं सकते, क्या कारण है कि मैं फिर भी आपको जगत में बैठे देखता हूँ।

उत्तर—निर्बन्ध और निरिच्छा और त्यागी पुरुष को तो यही उचित है कि सांसारिक आधीनता और बन्धन से किनारे रहे। परंच में जो अभी त्यागी नहीं और संसार से कुछक सम्बन्ध रखना चाहता हूँ और कई एक बातों में आधीन और बधुआ भी रहना चाहता हूँ। इसलिए जगत से उठना पसन्द नहीं करता। और फिर जब यथार्थ अभिप्राय उस आधीनता और बन्धन का मेरी समझ में आ चुका है, तो मुझे आधीन और बन्धुवा रहने से भी कुछ अधिक कष्ट नहीं होता। क्योंकि सांसारिक लोग वास्तव में बन्ध और मैं वास्तव में निर्बन्ध हूँ। वह लोग सब कुछ परमेश्वर के भय से करते और कुछ अपराध हो जाने से पछताते और रोते हैं और मैं जो कुछ करता हूँ जगतोपकार समझ कर करता हूँ, और अपराध हो जाने पर भी कुछ परवाह नहीं रखता। इसके अतिरिक्त बहुत बातों में हम उनके सम्मुख ही निर्बन्ध हैं तथापि वह लोग बाँध नहीं सकते। पर मुझे प्रकट में बंधुआ और अधीन होने से क्या कष्ट ?

प्रश्न—यह यथार्थ परन्तु पूर्ण आनन्द उस दिन उठाओगे

कि जब हम लोगों के हानि, लाभ, मिलाप, विरोध की कुछ आकांक्षा न रखोगे। और न सांसारिक आधीनता और न बन्धनें से कुछ सम्बन्ध।

उत्तर—हाँ यह आप सत्य कहते हैं परन्तु जो आनन्द हमको जगत से भिन्न है, निराकांक्ष होने में उनसे खाली रहना पड़ेगा। बस दोनों स्वांग बराबर हैं, क्या लोड़ कि एक को छोड़ूँ और दूसरे को पकड़ूँ। अच्छा यदि कभी उस निराकांक्ष को भी मन चाहेगा, तो वह हमारे हाथ में है, इस स्वांग को जब चाहा पटक दिया, कठिन तो उसको है, जो एक काम के त्यागने में पाप और दूसरे के अंगीकार करने में पुण्य समझता हो, यहाँ तो 'पूरे हैं वही मरद जो हर हाल में खुश हैं।"

---

## एक मुसलमान फकीर से पंडित जी के प्रश्नोत्तर शहर जालन्धर के एक बाग में

पण्डितजी ने पूछा, भाई साहिब, आपके नेत्र सदा लाल देखता हूँ, क्या आप कुछ नशा खाते हो?

फकीर—हाँ! नशा भी खाते हैं परन्तु खुदा के नाम का नशा भी नेत्रों में चू आता है।

पंडित—क्या अच्छा! वह नाम कृपा करके हम को भी दया कीजिये।

फकीर—वह नाम क्या ऐसा सहज में बताया जाता है, कुछ दिन फकीरों की संगत करो और टहल सेवा कमाओ, जैसा कि हमने कई वर्ष साईं लोगों की सेवा उठाई थी, खुदा चाहे तो तुम पर भी फजल हो जाएगा। हाँ, इसमें सन्देह नहीं कि यदि

सच्ची श्रद्धा से पूछते हो तो फकीर नज़रोनजर निहाल भी कर सकता है।

पंडित—मैं नज़रोनज़र निहाल के अर्थ नहीं समझा ?

फकीर—नज़रोनज़र निहाल इस बात का नाम है कि यदि फकीर अपनी कृपा करे तो एक नज़र से निहाल कर सकता है परन्तु तुमारे दिल में श्रद्धा होनी चाहिए सो अच्छा, कल को एक बोतल शराव को लाना देखा जावेगा।

पंडित—मैं ब्राह्मण हूँ शराब को हाथ नहीं लगा सकता, यदि कोई आदमी साथ कर दो तो ले दूंगा।

फकीर—अच्छा पास है तो एक रुपया निकालो, हम आप ही सब कुछ मंगा लेंगे।

पंडित—यदि एक रुपये में निहाल कर दोगे तो लीजिए हाज़र है परन्तु शराब नहीं, इसकी मिठाई मंगा लेना।

फकीर—हम एक रुपये के बदले में तुमको बहुत कुछ देंगे, जाओ एक तोला पारा और एक तोला संखिया ले आना।

पंडित—मैंने तो परमेश्वर के नाम पर एक रुपया नकद दिया है, परन्तु ज्ञात होता है कि आप मुझे रसायन के जाल में फंसाओगे जिसका मैं कदापि कायल नहीं।

फकीर—तुम पर कृपा तो बहुत हुई थी परन्तु कुछ हुज्जती आदमी मालूम होते हो, बताओ तो क्या रसायन झूठ है ?

पंडित—मैंने जहाँ तक देखा और सुना सब छल ही ज्ञात हुआ, भला यदि सत्य भी हो, तो मुझ को लोड़ नहीं, कृपा करके वह रसायन बताइए कि जिसके सबब आपके नेत्रों में आनन्द वर्षता है।

फकीर—यदि हम तुमारे ही हाथ से बनवाएँ, तो झूठ क्या हुआ।

पंडित—मनुष्य की बुद्धि महा तुच्छ है कदाचित आपके छल को मैं तुरन्त न समझूं मन में अवश्य ही समझूंगा कि कुछ चरित्र (चलाकी) हुआ। मैंने सैकड़ों मदारी और भानमतों को तुरन्त कबूतर बनाते और आम का वृक्ष लगाते देखा है, यद्यपि मैं उनकी विधि को नहीं जानता तथापि मन में भली भान्ति जानता हूँ कि सब कुछ हथनाटक है। अच्छा! यदि आप मेरे हाथ से रसायन बनवा दोगे और अपना हाथ सर्वथा न लगाओगे, तो यह पारा संखिया लाने की क्या लाड है? आप विधि समझा दें, मैं घर में जाकर आप परीक्षा कर लूंगा। एक बात मैं और भी निर्णय करना चाहता हूँ कि आप जो मुझे ऐसी अलभ्य वस्तु बता देनी चाहते हैं आपको इसमें क्या लाभ होगा? यदि कोई सांसारिक लाभ समझते हो, तो जिसके पास रसायन प्रस्तुत है, उसको संसारी लाभ सब प्राप्त है, और यदि कोई आपने धर्म लाभ समझा हो, तो मैंने आपके कुरान में से कभी कोई ऐसी 'आयत' नहीं सुनी जो रसायन सिखलाने वालों को पुण्य प्रकट करती हो, बल्कि मैंने इस भान्ति के वचन बहुत सुने हैं कि जो उन लोगों के विषय में पाप बतलाते हैं कि जो व्यर्थ किसी के मन को लोभी बनावे, ऐसा कि मैं सीखना नहीं चाहता और आप बल से मुझे रसायन के लालच में फंसाते हो। भला आप तो मुझे कली या पारे की चान्दी बना देने का प्रण करते हो, जरा आप मुझे चान्दी की कली या पारा तो बना के दिखलाओ कि जिसको कोई इच्छा नहीं करता और कम कीमत है। मैं सत्य कहता हूँ कि यह अष्ट धातु जो परमेश्वर ने अपने अपने स्वभाव पर पृथक् उत्पन्न की हुई है, कभी एक दूसरे का स्वभाव नहीं बिगड़ता अर्थात् न कभी कली की चान्दी हो और न चान्दी की कली, यदि चान्दी कली में से उत्पन्न हो जाया करती तो, वह परमेश्वर जो कभी कोई व्यर्थ चेष्टा नहीं

करता चान्दो का रूप भिन्न कभी उत्पन्न न करता। जैसा कि मिश्री को ऊख से उत्पन्न होती देख कर उसने मिश्री के भिन्न पहाड़ या वृक्ष कहीं नहीं बनाए, तो उचित है कि आप भी इस व्यर्थ विचार से बच जावो कि कली से चान्दी बन सकती है। नियम प्रण से यह है कि यदि शक्ति रखते हो तो मुझे सच्ची रसायन का झोला दया कीजिए। वरन् सलाम करता हूँ।

फकीर—बहुत बातें तो हम जानते नहीं परन्तु इस बात का उत्तर दो कि यदि रसायन जगत में प्रकट न होता, तो इसका नाम कैसे रखा जाता ? क्योंकि जिसका शरीर नहीं, उसका नाम कभी नहीं होता।

पंडित—शब्द रसायन का अर्थ यह नहीं कि जिसको साधारण लोग रसायन समझते है, अर्थ इसके यह हैं कि प्रत्येक वस्तु का स्वभाव व गुण का जानना, परन्तु शोक है उन पर जिन्होंने कली आदिक से चान्दी का बना लेना रसायन समझ लिया। हां ! एक असली रसायन और मेरे याद है कि जो पारे को मारने से बनता है, यदि आपको सीखना स्वीकार हो, तो मैं विना संकोच सिखा दूंगा। न तो उसके बनाने में कभी एक आँच की ही कसर रहती है, और न कभी पारा और संखिया को जला कर खाक छाननी पड़ती है।

फकीर—तुम तो कहते थे रसायन कभी बनता ही नहीं फिर मुझ को क्या सिखला दोगे ?

पंडित—निःसन्देह उस रसायन को तो मैं अब भी सच्च नहीं कहता, जिसका मैंने कथन किया है, वह रसायन और है। जैसा कि सुनो, मन एक प्रकार का पारा है कि पारद के समान सदा चंचल रहता है। उसको शरीर के खरल में डाल कर सत्संग के पत्थर के साथ प्रेम की बूटी के रस से रगड़ना चाहिए। थोड़े

काल में इस पारद की गोली बन्ध जाती अर्थात् मन स्थिर हो जाता है फिर उस गोली को जन्म और मरण के सम्पुट में रख कर निश्चय ही कपरोटी करे और इस गोली को योगाभ्यास (इन्द्रिय निरोध) के ईंधन में रखकर परमेश्वर की भक्ति की अग्नि लगा देवे। बस यह पारद अपने आप मर जावेगा। कि जिसके मर जाने से ससार का धन तुच्छ दिखाई देने लग जाता है।

फकीर—वाह साहिब, यह तो खूब रसायन बताया! नि सन्देह सच्चा रसायन तो इसी का नाम है। वह लोग बड़े मूर्ख हैं, जो किसी और रसायन की लालसा करते हैं। हमने दो चीजों की ढूंढ बहुत की परन्तु अन्त को आपके कथनानुसार सब कुछ झूठ ही देखा।

पडित—एक तो रसायन, भला दूसरी क्या वस्तु है कि जिसको आप ढूंढते रहे?

फकीर—बाबा क्या बताऊं तुम अपने दिल में कहोगे, कि फकीर किन वाहियात बातों का जिज्ञासु है।

पडित—नहीं साईं आप यह ख्याल न करें मैं कदापि बुरा नही समझता। जो कुछ आपके मन मे हो, तो प्रकट कीजिए। मनुष्य के शौक का क्या ठिकाना है। एक स्वास मे सहस्रों भान्ति की इच्छाए मन मे उठती हैं, आप प्रकट करें यह क्या बात है?

फकीर—जैसे रसायन का शौक हमारे दिल को है, वैसा ही देर तक हम अपने प्रिय आयु को अन्य कई भान्ति के व्यर्थ ही व्यर्थ करते रहे हैं। जैसा कि चिरकाल तो यह शौक रहा कि कोई मन्त्र यन्त्र कहीं से प्राप्त हो, जिसके द्वारा घर बैठे ही एक रुपया नित्य की प्राप्ति हो जाय करे। मैंने एक फकीर को देखा है

कि प्रातःकाल एक कागज पर एक यंत्र लिख कर अपने आसन के नीचे रख लेता था। सन्ध्या के समय निरन्तर दो रुपैया उसके आसन पर आ जाते थे।

पंडित—कदाचित वह साधु चिकित्सक होगा, या रमली, वरन् वह रुपए कहाँ से आ जाते।

फकीर—न साहब! गैब (अदृष्ट) से आ जाते थे और वह कहता था कि मैंने देर तक एक देवता के नाम को पढ़ा और यह यंत्र देर तक पृथ्वी पर लिखा है। और इसी के प्रभाव दो रुपैया नित्य की प्राप्ति गैब (अदृष्ट) के खजाने से हो जाती है। और फिर हम वहुत दिन तक अच्छे-अच्छे वली महात्मा की सेवा और टहल उठा कर हुब्ब की ढूंढ में कष्टातुर रहे हैं।

पंडित—साईं जी गैब से दो रुपैया नित्य का आ जाना तो कोई बुद्धिमान निश्चय नहीं करेगा। परन्तु इस बात को मैं नहीं समझा कि आप 'हुब्ब' किस को कहते हैं?

फकीर—'हुब्ब' वह है कि जिसको हिन्दी भाषा में मोहिनी मन्त्र या और वशीकरण बोलते हैं। मैंने बीसियों कलामें कुरान मजीद की देर तक पढ़ीं कि जिनमें दूसरे स्त्री पुरुषों का दिल अपनी ओर खींच लेने का असर सुना जाता था। और बहुत से कलमात बुजुर्गों के मेरे याद हैं और मैंने कबरों पर बैठ कर कई दिन तक पढ़े। कोई मरद या औरत बस में न हुआ।

पंडित—कुरान को तो मुसलमान लोग कलामुल्ला (ईश्वर-वाणी) समझते हैं। फिर वह कलामुल्ला क्यों कर हो सकता है कि जिसमें दूसरे स्त्री या पुरुष को अपनी ओर मोहित करने की शिक्षा या शक्ति हो, क्योंकि अल्लाह जो पवित्र है, ऐसी अपवित्र कलाम को कभी जिह्वा से नहीं कह सकता कि जिससे असीम पाप प्रकट हैं। और वह लोग कदापि बुजुर्ग न गिनने

चाहिए कि जिन के कलमात आपके याद हैं, और उनके प्रताप से आप दूसरे की स्त्रियों को अपने वश मे लाना चाहते हो, और यह बात सम्भव भी नहीं कि किसी मत्र या कलाम के पढने से किसी दूसरे का मन अपनी ओर आकर्षित हो जावे।

फकीर—क्या यह झूठ ही प्रकट हो रहा है कि मन्त्रों और कलामो के पढने से दूसरे के दिल पर जरूर असर हो जाया करता है।

पडित—गाली और कुवाक्य के बिना मैंने तो और किसी मत्र या कलाम म यह शक्ति नही देखी कि एक जिह्वा से निकल और दूसरे पर असर हो जावे। परन्तु हाँ एक वशीकरण मत्र मुझे याद है कि जो अत्यन्त प्रत्यक्ष फलप्रदाता और परीक्षित है कि जिसका सेवन करना कभी व्यर्थ नही जाता। वह यह है कि यदि मित्रो को वश करना चाहते हो तो सचाई से करो और शत्रुओ को वश करना हो, तो उपकार से, लोभी को धन से, साधु को मान से, बडो को सेवा से, छोटो को कृपा दया या क्षमा से, विद्वानो को विद्या म, मूर्ख अज्ञानियो को आनन्ददायक छोटे छोटे इतिहास सुनाने म, स्त्री को हित प्रेम से, अभिमानी को स्तुति से क्रोधी को धैर्य से, अपने को प्यार से, पराये को प्रसन्नता से, पडोसी को सहायता से सारे ससार को मनानन्द से अपने वश म करो। मैं निश्चय करता हूँ कि इस मत्र के तुल्य और कोई मत्र या कलाम वशीकरण के अर्थ उत्तम नही।

फकीर—वाह साहब! आप तो बडे ज्ञाता और महात्मा हो रूप है। आपके सग मे मुझ को बहुत लाभ हुआ। पहले जो ही व्यर्थ की मूर्खता वालें आपके साथ की, हम बेइलम गँवार लोग कोई मत्र ...ा करना। रुपया नि...

— o —

## 'मंत्र-यंत्र आदि भ्रम निवारक परमोत्तम युक्ति'

एक पुरुष ने पंडित जी से कहा कि मुझे चतुर्थक ज्वर आता है। दया करके कोई तावीज़ 'यंत्र' ऐसा लिख दो जो मुझ को इस वला से मुक्ति प्रदान करे।

उत्तर—आप मुझे लिखे और पढ़े प्रतीत होते हो। क्या यह बात नहीं सुनी कि प्रत्येक रोग वायु, पित्त, कफ, रक्त, इनके न्यूनाधिक से हुआ करता है, कि जो शरीर के अन्दर वर्तमान है। फिर ऊपर के वांधे हुए तावीज़ आदिक से क्या लाभ होगा ?

प्रश्न—यह तो सत्य है परन्तु लोग जो यह प्रकट करते है कि तीसरे दिन और चौथे दिन आने वाला ज्वर कोई भूत होता है क्या यह मिथ्या है ?

उत्तर—यदि भूत हो तो औषधों से क्यों चला जाता है ? बड़े शोक की बात है कि हिन्दोस्तान में एक भाग दुनिया तो रोग से मरती है और तीन भाग भ्रम से, जैसा कि प्रायः देखने में आया कि जब किसी को कोई रोग हुआ तो बहुत लोग यह समझ के इलाज ही नहीं करते कि यह रोग नहीं किसी शत्रु ने कुछ टोना जादू किया हुआ है, और प्रायः भूत-प्रेत और जिन-परी का आवेश या किसी देवता और गूगा आदिक का खोट मान के औषध प्रयत्न से हटे रहते हैं और व्यर्थ प्रिय प्राण को खोते हैं।

प्रश्न—क्या आप के विचार में भूत-प्रेत और जिन-परी आदिक कुछ वस्तु ही नहीं ?

उत्तर—ईश्वर की रचना में यदि भूत चुड़ैल आदिक संसार भी प्रस्तुत हो, तो कुछ आश्चर्य तो नहीं परन्तु जो लोग किसी मनुष्य के अन्दर किसी भूत आदि का आ जाना मानते हैं, उनको

मैं बुद्धिमान् नही कह सकता, क्योंकि बारम्बार परीक्षा की, या तो कोई छल दृष्टि आया और या कोई रोग। और न यह सम्भव है कि कोई दूसरा शरीर किसी शरीर में प्रवेश कर सकता हो।

प्रश्न—महाराज! वह कोई ऐसा शरीर तो नही रखते कि जैसा मनुष्य। वह तो केवल वायु होती है, जो मनुष्य के अन्दर प्रवेश करके कष्ट देती है। आप इस बात को सत्य क्यों नही मानते?

उत्तर—मैं इस कारण से सत्य नही मानता कि मैंने वैदिक विद्या मे पढा है कि शरीर का लक्षण यह है कि जो लम्बाई व चौडाई मोटाई रखता हो, सो वह शरीर दो प्रकार का होता है। एक कठिन दूसरा कोमल, कठिन वह है जैसे ईन्ट, पत्थर आदिक और कोमल वह जैसा कि वायु और जल आदिक, इन दोनों का नियम है कि जहा पहले एक शरीर प्रस्तुत हो, वहाँ दूसरा शरीर कदापि प्रवेश नही करता जैसा कि यदि पत्थर को पत्थर मे प्रवेश करना चाहो या तो उसके ऊपर रखा जावेगा और नीचे वाले को तोड कर दूसरे को प्रवेश करोगे या छेद कर के जब नीचे वाले पत्थर मे से कुछ पत्थर निकल जावे, इसी तरह यदि जल से पूर्ण एक गिलास मे कोई पत्थर का टुकडा डालो तो वह टुकडा तब तक उसमे प्रवश नहीं होगा कि जब तक उसके अनुमान का जल गिलास में से न निकल जावे। फिर यही स्वभाव वायु का है कि जहाँ कोई और शरीर वर्तमान न हो, वायु वहाँ प्रवश पाता है अथात् खाली स्थान मे। बस न्याय करना चाहिए कि मनुष्य के शरीर मे जहाँ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु चार तत्व के शरीर प्रथम ही विद्यमान है, वहाँ बाहर का वायु जिसको आप भूत आदि कथन करते हैं कैसे प्रवेश पा सकता होगा। आपने कभी नही देखा होगा कि जो खाल पहले ही वायु सेभरी हुई हो, उसमें और वायु प्रवेश कर सके। हाँ उस दशा

में हो सकता है, कि जब वायु पहले किसी कारण से कुछ स्थान छोड़ दे ।

**प्रश्न**—यह तो सत्य है, परन्तु यह तो बताइये कि क्या कोई देवी-देवता भी मनुष्य के अन्दर प्रवेश नहीं कर सकता ?

**उत्तर**—भला इस बात को तुम स्वयं ही सोचो कि देवी-देवता जो अत्यन्त पवित्र और सूक्ष्म हैं, वह इस अपवित्र और स्थूल और मल भरे मनुष्य-शरीर में आना क्यों स्वीकार करते होंगे ?

**प्रश्न**—मैंने आप देखा है कि एक लड़का दोपहर के समय एक वृक्ष के नीचे मूत्र करने बैठ गया था और उसी दिन से ज्वर आने लग गया और ज्ञात हुआ कि उस वृक्ष के समीप जो सय्यद की कबर थी, वह सय्यद उस लड़के में आ गया है, कारण इसका यह हुआ कि झाड़ा करने से उस सय्यद ने उस लड़के की जबानी आप यह बात कही कि मैं उस वृक्ष की छाया में विश्राम करता था, इस लड़के ने मेरे मुख पर मूत्र कर दिया, अब मैं इसको जीता न छोड़ूंगा । क्या आप इस नेत्रों देखे व्यवहार को भी झूठा ठहरा दोगे ?

**उत्तर**—यदि वह सय्यद मेरे सन्मुख यह बात कहता तो मैं इसको इस भान्ति लज्जित करता कि इस लड़के को तू दिखाई नहीं देता था और तुझे यह प्रत्यक्ष दृष्टि आता था, बस या तो तूने इसको बोल के हटा दिया होता और या तू कुछ आगे सरक गया होता । बस तूने जान-बूझ के अपने मुख में मूत्र कराया ।

**प्रश्न**—इस से तो यह बात पाई गई कि वह सय्यद कोई नहीं था, भला यह तो बताइए कि उस लड़के को ज्वर क्यों आने लग गया ?

**उत्तर**—मेरे विचार में लड़का प्रथम ही उस कबर से डरा

करता होगा, जब प्रत्यक्ष मूत्र कर बैठा तो इस अयोग्य कर्म के कारण अधिकतर भय मन मे भर गया कि मुझ से सय्यद साहब का अपराध हुआ फिर ज्वर तो एक ओर रहा मैंने इसी भय मे बहुत सी मूर्ख स्त्रियाँ और बालक लडके मर गये सुने हैं'।

---

१ देश पजाब रियासत महाराज पटियाला के 'भदौड' नगर मे मुहम्मद नामक ६० वर्ष के वैश्य ने, मन की मनौत सीतला माता के भय से मृत्यु पाई थी। यह बात सुनी-सुनाई नही किन्तु मुहम्मद वैश्य और उसके पुत्रो को मैंने आप देखा और भली भाँति जानता हूँ क्योंकि वह मेरे पिता के सहस्रो रुपयो के ऋणी थे। उसकी मृत्यु की कथा यों है कि—पजाब मे हिन्दू लोग मसूरिका (चेचक) रोग को एक प्रकार की देवी मान के पूजा किया करते हैं। सीतला माता मसानी रानी, ठण्डी देवी, इत्यादि कई एक नामो से पुकारते है। प्रत्येक नगर से बाहर छोटे बड मठ बना रखे हैं। उनको सीतला माता व मसानी रानी की मढी बोलते हैं। जिस बालक के चेचक निकल फफोले अच्छे होने के पीछे मगलवार के दिन उत्सवपूर्वक बाजे गाजे से सीतला माता की मढी मे आगे जाकर पूजा करते हैं, बालक का नाक रगड रगड कर प्रणाम कराते और गधे पर चढाते हैं कि जिसको सीतला का वाहन माना हुआ है। प्रत्येक चैत्र मास मे तो अतिसमारोह से महा धूमधाम के सहित प्राय स्त्री बालक बालिकाओ का एक विशाल मेला होता है और उस दिन सब हिन्दू लोग बासी अन्न इस अर्थ खाते हैं कि ठण्डी देवी का ठण्डा भोजन खाने से तन, मन सुख से ठण्डा रहे। सीतला देवी के पुजारी कुम्हार भगी लोग हैं कि जो पखाने का मल नित्य उठाते हैं उस दिन इनके सग छूतछात का विशेष विचार नही होता, मालवा (जगल) प्रान्त मे डूम (मिरासी) पुजारी है। इसी सीतला देवी के भय से मुहम्मद ने जिस भाँति मृत्यु पाई, उसका विवरण सुनो —

भदौड नगर निवासी एक जिमीदार की सुक्खा नाम स्त्री अपने

प्रश्न—क्या मन के भय से भी मनुष्य रोगी हो जाता है ?

उत्तर—हां, मानसिक भय और भरोसा बड़ा भारी प्रभाव रखता है।

प्रश्न—अच्छा महाराज यों ही होगा परन्तु यदि आप मुझे कोई यन्त्र लिख देते तो आपकी क्या हानि थी ?

उत्तर—मैं इस बात में अपनी बड़ी हानि समझता हूँ कि तुमको झूठे भय और लालच में डालूं।

प्रश्न—चाहे आपका निश्चय न हो परन्तु मेरे भले के लिए लिख दो तो मैं आपका बड़ा कृतज्ञ रहूँगा।

उत्तर—अच्छा लो, यह यन्त्र गुग्गल की धूप देकर गले से बाँध लो, परमेश्वर चाहे तो अवश्य सुख हो जायगा। और हम को शुध देना।

प्रश्न—उस दिन तो वह पुरुष चला गया परन्तु एक महीना पीछे मिला तो बड़ी प्रतिष्ठा से बोला—देखिए महाराज ! आप

---

कपास के खेत में रक्षा के अर्थ बैठी थी, इतने में मन्द-मन्द वृष्टि होने लग पड़ी तो भीगने के भय से वह स्त्री सीतला की मढ़ी में आन बैठी जो खेत के समीप ही बनी हुई थी। इधर से मुहक्मल वैश्य दौड़ा-दौड़ा आया और उस मढ़ी के मुख की ओर पीठ देकर द्वार के आगे हो, दिशा फिरने बैठ गया। मुक्खा पंजाबी में बोली "मर वे तेरे दादे दी दाढ़ी विच हग्गाँ तैं ऐथे ही हगना था, तू नहीं जानदा कि ऐह मसानी रानी दी मढ़ी है" यह शब्द सुनता ही हाथ में धोती पकड़े मुहक्मल भागा-भागा घर में आ गिरा, तुरन्त मार्ग में ही ज्वर हो गया और यही पुकारता हुआ तीसरे दिन मर गया कि मसानी रानी आई मसानी रानी आप बोली। मुक्खा जिमींदारनी आकर बहुतेरा समझा चुकी कि लाला जी मढ़ी में तो मैं बैठी थी और मैंने ही तुम्हें कहा था, परन्तु मुहक्मल ने एक न मानी तीसरे दिन चिता में जा पड़ा।

कथन करते थे कि झाड़-फूँक, टोना-जादू, ताबीज आदि व्यर्थ हैं। मैं शपथ से निवेदन करता हूँ कि जब से यह आपका ताबीज बाँधा है केवल एक दिन ज्वर आया फिर आज तक नहीं आया। मुझे परिपक्व निश्चय हो गया कि जिन लोगों के नाम ताबीजों में लिखे हैं, उनमें बड़ी ईश्वरीय शक्ति है वरन् मेरा चौथइया ताप क्यों दूर होता, कि जो अनुमान ६ महीने से निरन्तर मेरी जान मार रहा था।

उत्तर—यह किसी नाम का प्रताप नहीं केवल तुम्हारे निश्चय या श्रद्धा का फल है। और फिर इस बात का भी फल है कि जिस दोष के न्यूनाधिक से ज्वर उत्पन्न हुआ था, अब अचानक वह दोष अपनी साम्यावस्था पर हो गया। और तुमने यह निश्चय कर लिया कि इस ताबीज के प्रताप से मेरा ज्वर दूर हुआ है। यदि सत्य नहीं मानते, तो इस ताबीज को खोल कर देखो मैंने तुम्हारे निश्चय के लिए किस वृद्ध का शुभ नाम इस यन्त्र में लिखा था। जब खोल के देखा तो यह वाक्य लिखा हुआ पाया कि यह पुरुष अपनी अल्पज्ञता से यन्त्र माँगता है मेरे विचार में यह सब व्यर्थ है। इसको सुन के वह श्रद्धालु बहुत लज्जित हो कर बोला, वाह! यह तो परीक्षा हो गई कि यन्त्र व ताबीज आदि अवश्य ही व्यर्थ हैं। आपने बड़ी उत्तम विधि से भ्रम दूर किया। मैं बिना परमेश्वर के और किसी को सत्य और यथार्थ नहीं समझूँगा।

## पंडित जी का मत

एक साधु ने स्वामी जी से पूछा—आपका मत क्या है?

उत्तर—परमेश्वर को सत्य मानना, श्रेष्ठ कर्मों को करना, बुरे कर्मों से डरना, यह मेरा मत है।

प्रश्न—क्या तुम वेद-शास्त्र के मत पर निश्चय नहीं रखते ?

उत्तर—वाह ! आपने यह कैसे समझा ? बल्कि मैं तो यह कहता हूँ कि वेद-शास्त्र सब यही शिक्षा करते हैं जो मैंने ऊपर कही।

प्रश्न—क्या सन्ध्या, वंदन, यज्ञ, होम, पाठ, जप, तीर्थ को आपके मत में श्रेष्ठ मानते हैं वा नहीं ?

उत्तर—हाँ ! मैं तो प्रथम ही कह चुका हूँ कि श्रेष्ठ कर्मों का करना मेरा मत है सो यह सब श्रेष्ठ कर्म हैं कि जिन का आपने नाम लिया।

प्रश्न—मैंने श्रेष्ठ कर्मों से यही समझा था कि सत्य बोलना और ईश्वर स्मरण रखना और छल-कपट का त्यागना, संयम, शील, संतोष, यत, सत का पालना इन बातों को श्रेष्ठ काम समझते होंगे। और संध्या-वन्दन आदि कर्मों का करना कुछ आवश्यक नहीं जानते होंगे।

उत्तर—सन्ध्या वन्दनादि कर्मों को मै आवश्यक तो बहुत समझता हूँ परन्तु इतना अवश्य मेरे मन में भरा हुआ है कि यदि शील, संतोष और दया आदि कर्मों को कोई धारण न करे तो संध्या-वन्दन से कुछ लाभ नहीं, बल्कि संध्या आदि कर्मों से तो प्रकट यही पाया जाता है कि मनुष्य पाप से बचे और पुण्य में लगे। जैसा कि देखो संध्या के मन्त्र से यह बात पाई जाती है—ओ३म् सूर्यश्चमा मन्युश्चश्। ओ३म् जपः पुनन्तु। ओ३म् अग्निश्चमामन्युश्च।

संक्षेप से अर्थ इन तीनों मंत्रों का यह है कि मन और जिह्वा और कर, पाद, उदर, और लिंग आदिक इन्द्रिय से जो पाप दिन रात में हुए या अभक्ष्य खान-पान पदार्थ के सेवन से

हुए, और जो भिन्न दोष मेरे में विद्यमान हैं, वह सब दूर हों। इस प्रार्थना मे प्रत्यक्ष प्रकट है कि बुराइयो का त्याग और भलाइयो की ओर प्रवृत्त करना ही सध्या आदि कर्मों मे प्रयोजन है। शोक है उन पर कि जो दया, धर्म, शील, सतोष आदि की ओर कभी प्रवृत्त नही होते और लोने को भाँति सध्या के मन्त्रो का पढ छोडना ही आवश्यक समझने हैं। धन्य है कि जिन का वेद के इस वचन पर अपवक्व निश्चय है कि "तस्मिन् प्रीतिस्तत् प्रिय कार्य साधन च तदुपासनमेव" अर्थ इसके यह है कि परमेश्वर मे प्रीति और परमेश्वर के प्रिय कर्मों का करना यही उसकी भक्ति है। परमेश्वर से प्रिय कर्मों से प्रयोजन उन्हीं कर्मों से है, जो दया सतोष क्षमा और सध्या वन्दन, जप तप आदि ऊपर कथन किए।

प्रश्न—यह वचन तो प्राय मैंने ब्रह्म समाज मत के पुरुषो के मुख से सुना है, क्या आप भी इस मत मे से हैं ?

उत्तर—हाँ सत्य है कि उस मत के लोग वेद के बहुत से मत्रों को जिह्वा पर रखते हैं परन्तु वह पुरुष वेद के सब वचनो को सत्य और यथार्थ नही मानते। मैं उस मत मे से नहीं बल्कि मैंने उनके विरुद्ध 'धर्म रक्षा' नाम एक पुस्तक रच कर छपाई है, कि जिसमे वेदशास्त्रो के प्रमाणो से उनके विचारो को मिथ्या सिद्ध किया है। उनका नियम है कि वह वेद में से उन वचनों को चुन कर स्मरण कर लिया करते हैं कि जिनको अपनी समझ के अनुकूल जानते हैं। सो अच्छा यदि इस वचन को वह भी पढते हैं तो कुछ उनका अपना नही बन गया, यह वेद का मत्र है कि जिसमें से सबके लिए परमेश्वर के प्यारे काम करने की शिक्षा मिलती है। परमेश्वर के प्यारे कार्य करने वाला परमेश्वर का प्यारा होने के कारण, सारे ससार के साथ प्यार रखता है।

इस कारण से उसका नाम सर्वमिलापी (सुलहकुल) है और यह सर्वमिलाप हमारा ऐन वास्तव मत है।

प्रश्न—सर्वमिलाप का असली अर्थ क्या है ?

उत्तर—सर्वमिलाप के अर्थ हैं मिलाप, सर्व से, इन दोनों को मिला के यह प्राप्त हुआ कि सब से मिलाप रखना चाहिए सो बस जो हिन्दू व मुसलमान व यहूद व नसारा व सिक्ख और ब्रह्म समाजी वैष्णव और शैव आदि सब मतों से मिलाप रखे और किसी को बुरा न कहे उसका नाम सर्वमिलापी (सुलहकुल) है और यह पद उसी को प्राप्त हो सकता है, जो परमेश्वर के प्यारे कर्मों को धारण करे। बड़े आश्चर्य की बात है कि आजकल के लोग कीकर की छाया से बचना और मसूर का अन्न त्याज्य समझना और कांसे के पात्र में न खाना या गाजर और बैंगन को छोड़ देना आदि कर्मों को तो आवश्यक समझते हैं परन्तु यह कोई ध्यान नहीं करता कि हमको चोरी, छल, कपट, व्यभिचार, मिथ्या, शत्रुता, ईर्ष्या, ज्वलन, अभिमान, लोभ, हिंसा आदि बुरे कर्मों को भी कभी त्यागना चाहिए कि परमेश्वर को कभी प्यारे नहीं लगते। अतिरिक्त संसारी लोगों के मैंने प्राय: साधु लोगों को भी इन्हीं व्यर्थ बातों में समय नष्ट करते देखा है कि हमको धोती और जटा और कमंडलु और चिमटे का मंत्र सीखना चाहिए। और कपड़े अमुक मंत्र से रंगे जाते हैं। अमुक को विष्ठा त्याग का मंत्र स्मरण नहीं। और अमुक मूत्र विसर्ग का मंत्र नहीं जानता। क्या श्रेष्ठ होता कि वह सत्य भाषण सरलता दया संतोष, क्षमा, धैर्य, भक्ति, जप तप, सन्मान् शौर्य चिकित्सा न्याय, की प्राप्ति में प्रयत्न करते कि जो परमेश्वर के प्यारे कर्मों में प्रविष्ट हैं।

प्रश्न—क्या आपकी दृष्टि में कीकर की छाया से बचना और

मसूर आदि को अभक्ष्य समझना व्यर्थ है ? जो धर्मशास्त्रों में लिखा हुआ है।

उत्तर—मैंने व्यर्थ कब कहा परन्तु जिन धर्मशास्त्रों में यह लिखा है उनमें यह भी तो लिखा है कि कर्म दो प्रकार के होते हैं। एक बहिरंग दूसरे अन्तरंग। सो बहिरंग कर्मों की दृष्टि में अन्तरंग कर्म बहुत आवश्यक हैं। क्योंकि यदि अन्तरंग कर्म को कर और बहिरंग न करे तो कुछ अधिहानि नहीं। परन्तु बहिरंग करते रहने के पीछे भी अंतरंग कर्मों का करना बहुत आवश्यक है। बल्कि इनके बिना बहिरंग कर्म चाहे कैसे ही स्वच्छता से किए हों लाभ नहीं देते। जैसा कि आप ही विचार कीजिए कि यदि कोई आयु पर्यन्त कायर की छाया से बचता रहे और मिथ्या भाषण और व्यभिचार में प्रवृत्त रहे तो क्या आप उसको धर्मात्मा कह सकते हो ? और या आयु भर चोरी छल, निर्दयता न करे परन्तु कायर की छाया में चल जाने को अत्यन्त निषिद्ध न समझे तो क्या आप उसको पापी गिन सकते हो ? मैं सत्य कहता हूँ कि मनुष्य को अधिकतर उन कर्मों का धारण करना आवश्यक है कि जो अंतर की पवित्रता से सम्बन्ध रखते हैं मेरे विचार में मनुष्य की उत्कृष्टता इसी में है कि वह अपने अंतर को शुद्ध करे न कि किसी प्रकट स्वांग या पहराव या भेष को। मैं देखता हूँ कि यदि कोई मनुष्य किसी साधु या ब्राह्मण को प्रणाम न करे तो उसको शाप देने लग जाते हैं। परन्तु नेत्र मूंद कर इस बात का कभी नहीं सोचते कि हमारे में यह उत्कृष्टता अर्थात् परमेश्वर के प्यारे कामों का करना है या नहीं ? कि जिसके कारण लोग हमको प्रतिष्ठा के योग्य समझते हैं।

प्रश्न—क्या आप ब्राह्मण में जाति की उत्कृष्टता कुछ नहीं समझते ?

उत्तर—जाति उत्कृष्टता भी आपको इसी कारण से हुई थी कि इस जाति में कभी कोई ऐसा नहीं होता था कि जिसमें परमेश्वर के प्यारे कामों का प्रेम न देखा जावे और विद्या व धारणा में श्लाघा के योग्य न होवे। अब उसके स्थान में खेती का करना और शस्त्र बांधना और सेवा से निर्वाह करना आदि काम अधिकतर इसी जाति में देखे जाते हैं। कि जो वेद में ब्राह्मणों से नीचे वर्णों के लिए नियत हुए थे। और साधु लोगों में ज्ञान वैराग्य आदि मुक्ति साधनों के स्थान में कोक और इन्द्र-जाल का पढ़ना और नाटक चेटक और कई वार के मंत्र-यंत्र और जादू टोनों का सेवन और रसायन और चिकित्सा की लगन देखी जाती है, बस संसारी अपयश के भय और लिहाज से तो चाहे मैं हजार वार झुक-झुक प्रणाम करूँ परन्तु अंतर दृष्टि से आप ही न्याय कीजिए कि वह साधु हमको कोई धर्म लाभ पहुँचा सकते हैं या नहीं ? कि जिसके कारण प्रतिष्ठा के और मान के योग्य थे। बाबा जी महाराज ! यों तो हम सब साधु और ब्राह्मणों के दास हैं परन्तु मानसिक निश्चय से उसी की सेवा करने को मन चाहता है कि जो ब्राह्मण ब्रह्म कर्म में प्रवृत्त और जो साधु अपने साधनों में तत्पर हो।

प्रश्न—आपने ऊपर कहा था कि मनुष्य को सर्वमिलापी होना चाहिए। जिस दशा में आप उस ब्राह्मण और साधु को कि जो अपने साधन से हीन हो श्रेष्ठ नहीं समझते, तो सर्व-मिलाप का सिद्धांत कहाँ रहा ?

उत्तर—सर्वमिलाप का सिद्धांत इसमें दूर नहीं होता कि हम अच्छे को अच्छा और बुरे को बुरा समझ जावें; यह सिद्धांत दूर उस समय होता है कि जब अपने बुरे के शोक व आनन्द में संगी न हों। या व्यर्थ उससे शत्रुता करें या उसके दोष प्रकट किया करें, बल्कि हमारा तो यह नियम है कि यहाँ तक हो सके,

बुरे और टेढ़े लोगों से अधिकतर प्यार रखते हैं, कि जिसके कारण कभी न कभी उनके मन में कुछ शिक्षा प्रवेश करे। और वह अपने मनुष्यत्व को अनुभव कर प्रतिष्ठा, प्रेम में पुरुषार्थ करने लगें।

प्रश्न—इस कथन से विदित हुआ कि आप मानो अपने को प्रेम का पुतला समझते हैं। बस! यह समझना बड़े अभिमान में प्रवेश है। और अभिमान पाप में।

उत्तर—पाप में वह अभिमान गिना जाता है कि जो स्व-श्लाघा से हो। इस दशा में मैं आपके प्रश्न का उत्तर दे रहा हूँ, और प्रसंग में यह कथन आ गया कि अपना स्वभाव किसी से वैर भाव या घृणा करने का नहीं तो आपने अभिमान कैसे समझ लिया? और इसमें भी सन्देह नहीं कि मेरे मन में यह ध्यान सदा काल रहता है कि जो जो लाभ मैंने महात्माओं गुरुओं की संगति और शास्त्रों के पढ़ने से पाए हैं, प्रत्येक असाधारण साधारण को पहुँचाने के लिए सबसे प्यार रखूँ। आप चाहे इसका नाम अभिमान रखो या अधीनता।

प्रश्न—क्या आप सबसे प्यार रखते और सबका भला चाहते हो?

उत्तर—यत्न तो करता हूँ परन्तु कठिन है, कभी-कभी चूक भी हो जाती है।

प्रश्न—ऐसे मनुष्य से तो सब कोई प्रसन्न रहा करता है। क्या कारण कि मैंने बहुधा लोगों को आपकी निन्दा करते पाया और किसी-किसी के मन में शत्रुता भरी हुई देखी।

उत्तर—सारा संसार तो किसी से कभी प्रसन्न नहीं रहा। मैं कौन विचारा कि जिसके सैकड़ों काम सैकड़ों लोगों की समझ के विरुद्ध होंगे। जैसा कि मैं परमेश्वर को सत्य समझता हूँ।

जो लोग उसकी अस्ति के भी कदापि मानने वाले नहीं। वह मुझको क्यों पसन्द करेंगे? नियम है कि प्रत्येक जन स्वजाति और स्वरंग को देखकर प्रसन्न होता है। जो अपने से विरुद्ध हो, चाहे वह कैसा ही शुभाचारी और सुकर्मी हो, कभी अच्छा नहीं लगता। अस्तु। उनकी वह जाने, परमेश्वर कृपा करे, तो हमको अवश्य वैसे बनना चाहिए कि अपने विरोधियों से शत्रुता न करें। बल्कि सदा उनका भला चाहें।

**प्रश्न**—क्या आपका मन उस समय अप्रसन्न नहीं होता, कि जब कोई विरोधी निन्दा या शत्रुता करे।

**उत्तर**—हाँ होने तो लगता है परन्तु फिर यह विचार चित्त में भर जाता है कि यदि वह सत्य निन्दा करता है तो उसकी कृपा है कि हमको हमारे दोष से भिज्ञता कराता है कि जिसको सुनकर हमको लज्जित होना और उस दोष के त्याग में प्रयत्न करना चाहिए और यदि मिथ्या करता है तो वहाँ दो कारणों में से कोई कारण अवश्य होगा। या यह कि हमारे वचन व कर्म से उसके अन्तःकरण को किसी कारण से कोई कष्ट पहुँचा या पहुँच रहा होगा कि जिससे हमको त्राहि-त्राहि करना चाहिए और या उसके मन में ज्वलन व ईर्ष्या का रोग है कि जिसका उपाय बिना संतोष और क्षमा के और कुछ नहीं। और या यह उपाय है कि उसको प्रेम प्रीति नीति विद्या की शिक्षा की जावे।

**प्रश्न**—भला अब यह कथन कीजिए कि ससार में कोई ऐसा जन भी होगा कि जिसका मन सदा प्रसन्न रहे?

**उत्तर**—हाँ! वह कि जिसको तृष्णा कम है। क्या आप नहीं जानते कि छोटे बालकों को कि जो बिना खाने-पीने के अन्य किसी वस्तु अर्थात् धन, भूषण, भोजन, वस्त्र, मान, प्रतिष्ठा, प्रताप, यश की कुछ परवाह नहीं होती उन लोगों

की अपेक्षा कि जो सदा व्यवहारों के घिरे हुए रहते हैं, वैसा सुख और निश्चिन्तता और प्रसन्नता रहती है। जब तृष्णा ने बल पकड़ा तो आनन्द विदा हुआ, क्योंकि ऐसा कोई पुरुष नहीं कि जिसकी सब इच्छाएं पूर्ण हो जाएं।

प्रश्न—यदि आप यह न समझें कि साधु कैसे-कैसे व्यर्थ प्रश्न करके हमको दुखी करता और हमारा समय नाश करता है तो एक बात मैं और पूछना चाहता हूँ कि आपको यह भी विदित रहे कि मैंने जो जो प्रश्न किए, व्यर्थ नहीं। मेरे चित्त का बड़ा निश्चय और भरोसा होता जाता है।

उत्तर—आप उत्साह से जो चाहें सो प्रश्न करें। अब तक मेरी कुछ हानि नहीं हुई। और जब कुछ होने लगेगी तो आपसे विदा माँग लूंगा। मेरा काल यदि किसी के मन के निश्चय और भरोसा में व्यय हो तो शुभ समझता हूँ। क्योंकि मैं अपने बहुत से समय का प्रभाव सकल्प कर चुका हूँ।

प्रश्न—अच्छा! अपराध क्षमा कीजिए। मेरे दो चेले हैं, सदा यही चिन्ता रहती है कि कोई अनाज्ञाकारी और अश्रद्धक न हो जावे, आपके जो सैकड़ों चेले सुने जाते हैं, आपका चित्त निश्चिन्त कैसे रहता होगा?

उत्तर—यद्यपि चेले मेरे बहुत हैं परन्तु उन सबमें असली चेला कोई एक ही होगा। सो जो असली चेला है, उसके अनाज्ञाकारी होने की कदापि आशा नहीं और यदि किसी कारण से हो भी जाए, तो केवल इस बात का शोक और चिन्ता करनी चाहिए कि जो लाभ उसको हम पहुँचाना चाहते थे, वह उनसे अभागी रहा, न कि इस बात का कि वह हमसे मनमुख क्यों हो गया? क्योंकि वह हमारा कुछ मूल्य लिया नहीं था। और एक बात आपको स्मरण रखनी चाहिए कि संसार में ऐसे लोग

बहुत कम हैं, जिनका मन सदा एक ओर रहता है। वरन् एकदम में सहस्रों मनोराज चित्त में उत्पन्न होते। बस यह महान् भूल की बात है कि आप किसी मित्र या चेले को अरुचि देख कर चिन्तातुर होने लगते हैं। मैंने अनेक पुरुष ऐसे देखे है कि आज तनमन से श्रद्धालु और कल को हमारे परम शत्रु बन गए। बस योग्य है कि यदि कोई तुम्हारी सेवा करता है तो प्रसन्न न हो, और श्रद्धाहीन होकर निन्दा करता है तो अप्रसन्न न हो। प्रत्येक समय इस विचार पर सन्तुष्ट और आनन्द रहो कि संसार चार दिन है "गाहे चुनाँ गाहे चुनीं" अर्थात् कभी ऐसा कभी वैसा। वह केवल जाति परमेश्वर की ही है जो सदा काल एक रस और निश्चल है। बस उसके बिना किसी को अपना अभेद मित्र या गुरु और चेला न समझो। यहाँ सब अपने स्वार्थ तक के मित्र हैं। जहाँ अर्थसिद्धि और लाभ का द्वार देखेंगे, तुरन्त उसी ओर झुक जावेंगे।

**प्रश्न**—किसी-किसी स्थान में चेलों की कुछ अर्थ सिद्धि भी नहीं होती परन्तु गुरु की ओर से कभी मनमुख या श्रद्धाहीन नहीं होते इसका क्या कारण है ?

**उत्तर**—अर्थ तो कोई न कोई सबके मन में होता है चाहे वह पूरा हो या न हो जैसा कि किसी के चित्त में यह अर्थ होता है कि यह गुरु मुझे नरक से या जन्म-मरण से बचा लेगा और किसी के मन में यह होता है कि अमुक साधु या ब्राह्मण जो लोगों की दृष्टि में बहुत प्रतिष्ठित और विश्वासी है, उसका चेला कहलाने में लोग मेरी ही शीघ्र प्रतिष्ठा करने लग जाएँगे। और कोई लोग केवल गुरु की विद्या बुद्धि के तात्पर्य को अपना अर्थ समझते हैं। और कोई-कोई चेले गुरु के पदार्थ धन, पृथ्वी, स्थान आदि के लोभ से सेवा करते है। और कोई-कोई उत्तम पुरुष अपनी मुक्ति के लिए भी गुरु की सेवा करते हैं। ऐसा कोई

नही कि जो बिना अर्थ सेवा मे प्रस्तुत रहे। हाँ! उस गुरु के चेले भी कभी श्रद्धाहीन नही होते जो उनके धन पदार्थ का अति लोभी हो। क्योंकि वह सदा उनकी मन प्रसन्नता और चित्त बहलाव के लिए यत्न करता रहता है। और कभी कोई ऐसी चेष्टा नही करता कि जिसको देख के चेले श्रद्धाहीन हो जावें। प्रयोजन यह कि वह सदा जगत दिखावा और छल और चतुराई (हिकमत अमली) के साथ अपने वचन व कर्म को ऐसा शुद्ध व स्वच्छ बना रखता है, कि चेला प्रति क्षण अपने चित्त मे ऐसा भयभीत व कम्पायमान रहे कि यदि इनकी शिक्षा से फिर फेरूँगा तुरन्त कुष्ठी हो जाऊँगा जो गुरु इन बातो की इच्छा नहीं रखता और चाहे आवे या न आवे, सबको बिना अर्थ शुभाचार और सुखदाई कर्म की शिक्षा करता रहता और विडम्बना और छल से अपने वचन व कर्म को विश्वासी नही बनाता वैसे गुरु की ओर लोग कम भुका करते हैं। और जो एक बार भुक जाते और उसके शुभ लक्षणों से जानकार हो जाते हैं, फिर सारी उमर श्रद्धाहीन नही होते। बाबा जी! आपको स्मरण रखना चाहिए कि गुरु तो चाहे सहस्रो अच्छे से अच्छे संग्रह कर लो, परन्तु अच्छे और सच्चे चेले का मिलना बहुत दुर्घट है। जैसा कि देखो श्रीरामचन्द्र जी महाराज को कि जिन को शास्त्रों मे पूर्ण परमेश्वर वर्णन किया है चाहे मिले तो बहुत ही पुरुष थे परन्तु आयु भर मे उत्तम चेला केवल एक हनुमान ही मिला। एव श्रीकृष्णचन्द्र जी महाराज को अर्जुन और उद्धव केवल दो चेले मिले। यदि अधिक मिले होते तो शास्त्र मे उनका वर्णन होता। बस आपको भी उचित है कि बाडा तो चाहे कितनो का भर लो, परन्तु चेला किसी एक ही को समझो।

प्रश्न—पंडितजी क्या करें हम महन्त लोग हैं। बिना बहुत से चेलो के हमारा निर्वाह नही होता।

उत्तर—भला आप यह तो बताइये कि चेलों से केवल अपने चरण ही धुलाते हो या उनकी भलाई के अर्थ प्रयत्न करते हो? क्या उनकी भलाई यही थी, कि चोटी मुँडा के जटा रखाएँ और जनेऊ उतार के उनके कण्ठ में रुद्राक्ष या तुलसी जी का दाना लटका दिया जावे? और ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य शूद्रपन दूर करके संन्यासी या योगी या वैरागी या कवीर और नानक पंथी बना दिया जाए। या छजमल माधोप्रसाद पूर्णानन्द आदिक नामों को मिटा के रामगिरि या गोपालपुरी और प्रताप भारती और भैरोंनाथ या बाबा जानकीदास जी नामों से पुकारने लग जाएँ? और एक दो कच्चे या पक्के कोठे छुड़ाकर बड़े-बड़े पक्के मन्दिरों और धर्मशालाओं के मुकद्दमों में डाल दिया जावे और जैसे घर में पिता और पितामह और भाई और भतीजे और लड़के वालों की पालना और रक्षा की चिन्ता थी, उससे बढ़कर गुरु और दादा गुरु चेला और गुरुभाई आदि की जूतियाँ खानी पड़ें। घर में तो जाति में हुक्का बन्द होने का भय था, यहाँ मंडली यमात और पंगत से निकाले जाने का भय प्राणनाशक हुआ। मैं सत्य कहता हूँ कि सन का रस्सा तो टूट भी सकता है परन्तु लोहे के संगल का टूटना अति कठिन है। बस योग्य है कि आप कुछ यत्न करके अपने चेलों के कल्याण के लिए किया करो। जिससे उनके दोनों लोक सँवरें न कि गृहस्थ से निकाल कर जो सन के रस्से के समान है, लोहे के संगल में किसी को फँसाओ, कि जो साधु के प्रयोजन है, सो यह कल्याण परमेश्वर की भक्ति और उसके प्यारे कर्मों के करने और कराने से तात्पर्य है। यही चारों वेद का संक्षिप्त और यही जप तप तीर्थ का फल है। और बस अब मुझे कुछ और काम है। कभी फिर दर्शन दोगे तो बड़ी प्रसन्नता से आपके पास बैठूंगा। जय हरि।

—०—

## एक पुरुष ने मत निर्णय किया

एक दिन एक मनुष्य ने स्वामी जी से निर्णय किया कि मैंने सुना है कि आरम्भ में आप चार्वाक मत रखते थे कि जिसको फारसी भाषा मे दहरियामत बोलते हैं। और वह लोग बिना देह के और वस्तु को आत्मा नहीं मानते। और न नरक और स्वर्ग को सत्य मानते हैं। क्या यह बात यथार्थ है?

उत्तर—हां एक चार्वाक मत किसका बल्कि कुछ दिन मैं वेदान्तियों की मगत मे रहा और फिर शाक्तक अर्थात् वाम मार्ग के भेद को देखा और उसी मत के समीप जो एक वाला सुन्दरी का मत प्रसिद्ध है कि जिसको लोग कूण्डा मार्ग कहते हैं, उसके आशय को समझा और फिर कुछ दिन नानक और कबीर और दादू पन्थी लोगो की सगत की, और चरणदासी और राम स्नेही लोगो की बात बहुत दिन तक सुनी और उसके पश्चात् एक ऐसे मत के भेद को समझा कि जिसका नाम लोग जयकृष्ण मत कहते हैं और दक्षिण से आरम्भ हो कर पजाब के जालन्धर और अमृतसर व लाहौर आदि बड़े शहरो के अतिरिक्त और किसी स्थान प्रचलित नही हुआ और फिर मुसलमानो के जलाली व मदारी आदि कई एक मतो के सिद्धान्त भी भलीभांति अनुभव किए और इनके सूफिया और मुवाहद और मुतजिों की सगत भी चिरकाल तक की और यद्यपि उनके किसी अच्छे आलिम व फाजिल से बातचीत नही हुई तथापि पारसी लोगो के सिद्धान्त भी बहुत से प्राप्त किए। और अग्रेजो के ईसाइयो और रोमन कैथलिक यहूदी तौरत मत की बातें भी बहुत सुनने मे आईं। और कई एक मतो के सिद्धान्त किताबों से अनुभव किए और अपने जहा के श्रावगी व बुद्ध और योगी और वैरागी और सन्यासियो और कई एक वर्तमान मतान्तरो का सैर भी बहुत

अच्छी तरह किया है। परन्तु अन्त तक का यही ज्ञात हुआ कि शुभ कामों को करो और अशुभ से डरो।

प्रश्न—जिन मतों का आपने नाम लिया कई एक उनमें ऐसे हैं, कि परमेश्वर की अस्ती को नहीं मानते और जिन कामों को एक मत के लोग त्याज्य और बुरे समझते हैं, वह अपने जहाँ उन्हीं कामों को स्वीकृत और शुभ जान रहे हैं। जैसा कि चार्वाक और श्रावगी व बुद्ध संसार को अनादि जानते है, और परमेश्वर को कर्ता नहीं जानते। और वाम मार्गी और कुण्डा मार्गी मद्य मांस मिथ्य मैथुन को शुभ काम समझते हैं कि जो सारे संसार की दृष्टि में बुरा है। फिर सब का अन्त आपने भलाई करना और बुराई से डरना क्यों कर जान लिया। और जिस दशा में एक की भलाई दूसरे की दृष्टि में बुराई और एक को बुराई दूसरे की दृष्टि में भलाई है तो पहले यह क्योंकर पहचान हो सकती है कि भलाई और बुराई वास्तव में वस्तु क्या है?

उत्तर—यह आपने यथार्थ कथन किया बल्कि बहुत लोग इस ख्याल से भलाई और बुराई को एक ख्याल समझ कर स्वेच्छाचार और आत्माभिमान स्वीकार कर लेते और सर्वथा निर्बन्ध हो जाते हैं। परन्तु मेरे विचार में यह निर्बन्धता सांसारिक प्रबन्ध और मनुष्य धर्म से बहुत दूर बल्कि इनमें उपद्रव उत्पादक है। और आपको यह भी स्मरण रखना चाहिए कि जिन मतों का ऊपर नाम लिया यद्यपि मानसिक निश्चय उनके कैसे हों, परन्तु प्रकट में वह भी इस बात का बखान करते हैं कि मनुष्य को शुभ काम करना और अशुभ से डरना उचित है। सो यद्यपि शास्त्रीय भलाई और बुराई तो प्रायः मतों की भिन्न-भिन्न और स्वतंत्र है। परन्तु साधारण रीति से जिसको सब लोग भलाई या बुराई समझते हैं, वहाँ वास्तव भलाई या बुराई

मिलनी चाहिए, जैसा कि चोरी और व्यभिचार व मिथ्या भाषण आदि क्रियाओं का नाम बुराई और संतोष और सम्मान सत्य आदिक कर्मों का नाम भलाई है। चाहे मत के हठ के कारण कोई कुछ ही कहे परन्तु न्याय से भलाई और बुराई के इस भेद से कोई नकार नहीं कर सकता। जो लोग परमेश्वर की अस्ती के भी कायल नहीं, यद्यपि मानसी विचार उनका कुछ ही हो, परन्तु प्रकट में अवश्य यही कहते हैं, कि मनुष्य को भला बनना चाहिए, और बुरा बनना बहुत बुरा होता है। बस योग्य है कि मनुष्य साधारण रीति से भलाई करे और बुराई से डरे।

प्रश्न—क्या जो भलाई और बुराई श्रुति और स्मृति में लिखी है वह वास्तव में भलाई और बुराई नहीं? और आप श्रुति और स्मृति को सत्य मानते हो या नहीं?

उत्तर—जिस दशा में मैं हिन्दू हूँ मेरी क्या शक्ति कि श्रुति और स्मृति को यथार्थ न मानूँ या यह कहूँ कि उनकी कथन की हुई भलाई या बुराई वास्तव भलाई या बुराई नहीं बल्कि हम तो अन्य मत के पुस्तकों की अपेक्षा श्रुति और स्मृति में यह उत्कृष्टता देखते हैं कि जिस काम को उन्होंने भला या बुरा ठहराया है, उससे किसी को नकार नहीं और साधारण भाँति की भलाई और बुराई की आज्ञा जैसी कि उनमें पाई जाती हैं औरों में कम, जैसा कि कुरान की आज्ञा है कि मोहम्मद साहिब पर निश्चय लाने के बिना चाहे कोई कैसा ही भला काम करे, वह भला या स्वीकार नहीं और अजील अगुली निर्देश हजरत ईसा की ओर करती है परन्तु वेद व शास्त्र सदा यही पुकारते हैं कि यहाँ किसी की मुख्यता नहीं "हरि को भजे सो हरि का होय।" और यहाँ जैसे और जिस स्थान और जिस भेष में कोई भलाई करे वह वहाँ ही भला और मुक्त है।

प्रश्न—प्रथम वार्तालाप तो आप अति सरलता से स्फुट (साफ) और सत्य-सत्य करते रहे परन्तु अब श्रुति और स्मृति के विषय में जो कुछ वर्णन किया वह जरा स्फुट (साफ) नहीं प्रतीत होता । या तो यह वर्णन सांसारिक भय या निन्दा के कारण किया होगा और या किसी और अर्थ से; भला बताइये तो मेरा यह अनुमान मिथ्या है या सत्य ?

उत्तर—अनुमान ही तो है जो चाहा सो कर लिया। अब सत्य और मिथ्या कहना भी आपका काम है। जैसा चाहें इस पर भी आप ही अनुमान कर लें।

प्रश्न—भला यह बताइये कि जिन-जिन मत और मतान्तरों की आपने सैर और परीक्षा की, यदि साधारण विचार किया जाए, तो इन सब में कौन सा मत और धर्म अच्छा है। परन्तु यह प्रश्न मेरा निज करके हिन्दुओं के मतों पर है।

उत्तर—किसी बात में अच्छाई और किसी बात में बुराई तो संसार के सब मतों में पाई जाती है। परन्तु आपने जो हिन्दुओं के मतों को निजता लगाई इनमें मुझे वैष्णव लोगों का आचार अति श्रेष्ठ लगता है। किसलिए कि इसमें धर्म और लोक कर्म दोनों में सुख है। जैसा कि देखिये यदि कोई शाक्तक धर्म को धारण करे तो परलोक की तो परमेश्वर जाने परन्तु संसार में उसको सदा चिन्ता व भय रहता है। क्योंकि उस मत में जो मांस, मदिरा, मैथुन, मिथ्या की शिक्षा है, इसलिए सदा काल छिपना और झूठ बोलना पड़ता है, इससे अतिरिक्त एक तो उपरोक्त वस्तुओं के संग्रह करने में व्यय अधिक का आतुर होना पड़ता और दूसरा संसार में अयश और खानपान की अधिकता के कारण भाँति-भाँति के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। एवं शिवजी के मत वाले भी बहुधा लोग अपनी तुच्छ विचार से

भंग और धतूरा और चडस आदि उन्मादक वस्तुओं के सेवन को योग्य समझने लग जाया करते हैं कि जिन से मनुष्य की बुद्धि व आकृति मे भेद आ जाता है। और फिर योगी और अघोरी और इसी प्रकार और कई एक मत भी इसी भांति के होने के कारण से परलोक मे यद्यपि कुछ अच्छा फल प्रदान करते हो परन्तु ससार को अवश्य हानि पहुँचाने वाले ज्ञात हुए और वैष्णव मत मे औरो की अपेक्षा मैं यह गुण देखता हूँ कि प्रथम उसका मन शुद्ध और पवित्र रहने की इच्छा से भिन्न-भिन्न मतो की समीपता से दूर रहेगा और जो समीपता स्वभाव के अस्थिर रहने का कारण होती है। और दूसरी मदिरा, मास, मैथुन, मिथ्या आदि को अवश्य त्याज्य समझेगा कि जो अयोग्य व्यय से धन हानि और अपयश और रोगों का कारण होते है। बिना परमेश्वर के और किसी को अपना कारण न समझेगा फिर जब उनके मत मे एक पिपीलिका पर भी दया करने की आज्ञा दी हुई है, तो वह अन्य किसी प्राणधारी जीव को कष्ट देना कब योग्य समझेंगे ? और न उनसे कभी चोरी या जीव हत्या आदि कोई क्रिया धर्मशास्त्र की आज्ञा और राजा के न्याय विरुद्ध हो सकती है, कि जिसके कारण मनुष्य की दीन दुनिया दोनो भ्रष्ट और नष्ट हो जाते हैं।

प्रश्न—ऐसा मत तो वेदान्ती और श्रावगी लोगो का भी है कि जो सब विषयो को बुरा समझते, और कभी किसी जीव को दु ख नही देना चाहते।

उत्तर—यह सत्य है परन्तु उन दोनो मे यह दो दोष कैसे बुरे पाये जाते हैं, कि एक लोग आप ही परम ब्रह्म परमेश्वर बन बैठने और दूसरे असल परमेश्वर का होना खो बैठते हैं। वैष्णव मत के निश्चय से मैं दोनो लाभ देखता हूँ। अर्थात् यदि उनके कथनानुसार हम स्वय परमेश्वर हैं, या वास्तव मे

परमेश्वर कुछ वस्तु ही नहीं, तो परलोक में वैष्णव लोग भी उनके बराबर और यदि परमेश्वर कोई वस्तु है और जीव से अलग है, तो वैष्णव लोग उसकी भक्ति के कारण विदेह मुक्ति का परमानन्द और बुराइयों से बचे रहने के कारण संसार में जीवन मुक्ति का सुख लाभ करेंगे।

प्रश्न—क्या आप रामानन्दी वैरागी लोगों को वैष्णव कहते हो कि जो सर्वथा विद्या शून्य देखने में आते हैं? और बिना ठाकुर पूजा के किसी बात का ज्ञान उनको नहीं होता?

उत्तर—कुछेक वैष्णव पन तो उन लोगों में भी अवश्य पाया जाता है किन्तु मेरा तात्पर्य इस समय किसी रामानन्दी या नीमानन्दी या रामानुज के मत से या किसी ऊपर के माला कण्ठी और तिलक छाप और शीतल या तपत मुद्रा आदि प्रकट चिन्हों और स्वांगों से नहीं। मैं उसको वैष्णव कहता हूँ कि जो वेदशास्त्र की आज्ञानुसार एक परमेश्वर को अपना कर्ता समझे और शुभ कर्म को स्वीकार करने और अशुभ कर्म को त्यागने में पुरुषार्थ करे। वैष्णव शब्द के अर्थ हैं विष्णु का; सो विष्णु का अर्थ सर्वव्यापी और जो उसका दास हो, वह वैष्णव कहलाता है।

प्रश्न—शास्त्र में तो सब से अधिक वेदान्त मत की प्रशंसा लिखी है और आप वैष्णव मत के स्वीकार करने की शिक्षा करते हो? इसमें मनुष्य किसको धारण करे?

उत्तर—मैं तो सर्वमतों को अपने अंग समझता हूँ; अच्छे हैं सो सभी अच्छे और बुरे हैं तो सभी बुरे। जिसका जिसको मन चाहे, ग्राह्य या त्याज्य समझे परन्तु वैष्णव मत की स्तुति मैंने इस इच्छा से की, कि आपने यह प्रश्न ऊपर किया था कि हिन्दुओं के मतों में साधारण दृष्टि से कौन सा मत लाभदायक

है ? प्रयोजन कथन का यह है कि यथार्थ ज्ञाता और हावभाव दर्शियो की दृष्टि में यद्यपि सर्वमत औ मतान्तर जो कुछ हैं सो हैं, परन्तु जिसको मत बन्धन अंगीकार हो, उसके वास्ते हिन्दुओं के सब मत-मतांतरों मे मत वैष्णव अत्यन्त श्रेष्ठ।

प्रश्न—जो कि आपके तिलक आदि से आप भी वैष्णव प्रतीत होते हैं फिर आप बिना अपने मत के और किसको अच्छा कहने लगे हो ?

उत्तर —हां, जो मत अच्छा हो, उसको मैं क्यो न धारण करता ? परन्तु इस समय जो मैंने कथन किया, वह अपना और बेगाना विचार के नही किया केवल साधारण रीति से कथन किया है कि प्रकट मे अधिक लाभ संसारी जनों को किस मत से है ? आगे आपकी इच्छा जो कुछ चाहो, सो समझ छोडो परन्तु मैं कोई ऐसा वैष्णव नही कि जिसको आप रामानन्द या नीमानन्दी समझते हो। केवल उस विष्णु का हूँ, कि जिसके रामानन्द और नीमानन्द भी थे बल्कि जिसका सर्वजगत है।

इति

# भाग्यवती

(स्त्रीशिक्षा की अपूर्व पुस्तक)

श्रीमत् पं० श्रद्धाराम जी फुल्लौर निवासी रचित

स्वदेशीय बालिकाओं के उपकारार्थ

श्री० पं० जी की विधवा पं० महताब कौर

द्वारा प्रकाशित

श्रीमन्महाराजाधिराज पंजाब देशाधिकारी श्रीयुत् नव्वाब
लेफ्टिनेण्ट गवर्नर बहादुर की

प्रेरणा से

श्रीमान् डाइरैक्टर साहिब शिक्षा विभाग पंजाब

की आज्ञानुसार

पुत्री पाठशालाओं में स्वीकृत और भारतखण्ड के अन्य
शिक्षा विभागों में भी प्रचलित



सम्वत् १९६९ सन् १९१२ ई०

पंचम आवृत्ति २००० प्रति] [मूल्य ।।।)

बाम्बे मशीन प्रैस, लाहौर

# भूमिका

बहुत दिनों से इच्छा थी कि कोई ऐसी पोथी हिन्दी भापा में लिखूं कि जिसके पढ़ने से भारतखण्ड की स्त्रियों को गृहस्थ धर्म की शिक्षा प्राप्त हो क्योंकि यद्यपि कई स्त्रियां कुछ पढ़ी-लिखी तो होती है परन्तु सदा अपने ही घर में बैठे रहने के कारण उनको देश-विदेश की बोल-चाल और अन्य लोगों से बरत व्यवहार की पूरी बुद्धि नहीं होती। और कई बार ऐसा भी देखने में आया कि जब कभी उनको विदेश में जाना पड़ा तो अपना गहना-कपड़ा बरतन आदि पदार्थ खो बैठीं और घर में बैठी भी किसी छली स्त्री-पुरुप के बहकाने से अपने हाथ से अपने घर का नाश कर लिया। फिर यह भी देखा जाता है कि बहुत स्त्रियां अपनी देवरानी जेठानियों से आठों पहर लड़ाई रखती और सासु सुसरे और अपने भर्ता का निरादर करने लग जाती हैं। कई स्त्रियों को अपने घर के हानि-लाभ की ओर कुछ ध्यान न होने के कारण घर का सारा ठाठ बिगाड़ लेती और कइयों के घरों की नौकर-चाकर लूट-लूट खाते और उनको संयम और यत्न से कुछ काम नहीं होता। कई स्त्रियाँ विपत काल मे उदास हो के अपनी लाज काज को बिगाड़ लेतीं और अयोग्य और अनुचित कामों से अपना पेट पालने लग जाती है। और कई विद्या से हीन होने के कारण सारी आयु चक्की और चरखा घुमाने में समाप्त कर लेती हैं। इस कारण मैंने यह ग्रंथ सुगम हिन्दी भापा में लिख के नाम इसका भाग्यवती रखा। इस ग्रंथ में मैंने एक कल्पित कहानी ऐसी सरस रीति से लिखी है कि जिसके पढ़ने से पढ़नेहारे का मन समाप्ति पर पहुँचाए बिना तृप्त न होवे। और जो-जो व्यवहार ऊपर गिने उन सब में शिक्षा प्राप्त होती रहे। इस सारे ग्रंथ में नाम तो चाहे कई स्त्री पुरुपों के आते हैं परन्तु मुख्य प्रसंग एक भाग्यवती नाम स्त्री का है जो

काशी नगर मे पडित उमादत्त के घर मे उत्पन्न हुई लिखी है। चाहे प्रसग तो इसमे काशी वासी लोगो का है परन्तु वहाँ की बोली पूरबी और कुछ रूखी सी होने के कारण इस ग्रथ मे वह हिन्दी भाषा लिखी है कि जो दिल्ली और आगरा, सहारनपुर, अम्बाला के इर्दगिर्द के हिन्दू लोगो मे बोली जाती और पजाब के स्त्री पुरुषो को भी समझनी कठिन नहीं है। इस ग्रथ मे जिस ढग और जिस भाँति के स्त्री पुरुषों की बात-चीत हुई है वह उनकी बोली और ढब से लिखी है अर्थात् पूर्बी पजाबी पढा अनपढा स्त्री और पुरुष गौण और मुख्य जहाँ पर जो कोई जैसे बोला उसी की बोली भरी हुई है। मैं निश्चय करता हूँ कि इस ग्रथ के पढने से लोक परलोक विहित अविहित योग्य अयोग्य सब प्रकार के व्यवहारो का ज्ञान हो जाएगा। और चाहे यह अनहुई और कल्पित कहानी और अनुत्पन्न पुरुषो के उपदेश हैं परन्तु पढनेहार को सब ऐसे प्रतीत होगे कि जैसे प्रत्यक्ष खडे होते और सामने बैठे शिक्षा करते हैं।

पडित श्रद्धाराम
फिल्लौर
(जिला जालधर)

स० १९३४ वि० ॥

# भाग्यवती

काशी नगर में पंडित उमादत्त जी के घर में एक पुत्र उत्पन्न हुआ कि जिसका नाम "लालमणि" और एक पुत्री हुई कि जिसका नाम "भाग्यवती" रखा। यह लालमणि चाहे छोटी सी अवस्था में ही कुछ व्याकरण शास्त्र पढ़ चुका और संस्कृत बोलने की परीक्षा देकर एक पाठशाला में पंद्रह रुपए मासिक पाता था परन्तु सोलह वर्ष की आयु पर्यन्त इसका विवाह नहीं हुआ था। चाहे काशी के भीतर और बाहर से कई एक पंडितों ने लालमणि का गुण यौवन और प्रतिष्ठा सुन के अपनी कन्याओं का सम्बन्ध करना चाहा परन्तु उसके पिता की यही इच्छा थी कि मैं लालमणि का विवाह अठारह वर्ष के पीछे करूंगा।

एक दिन लालमणि की माता ने अपने स्वामी से कहा महाराज लड़का अब सोलह वर्ष का हुआ और अपने हाथों से खाने कमाने लग गया आप इसके विवाह का यत्न क्यों नहीं करते ? देखो हमारे वंश के और सब बालक कोई नौ वर्ष का और कोई दस वर्ष का व्याहा गया इनको देख के हमारे लालमणि के मन में अपने क्यारापन को क्या लज्जा नहीं होगी ?

कल मैं गंगा स्नान को गई, एक स्त्री मुझे आपकी दासी समझ के पूछने लगी, पंडितानी जी ! तुम्हारे पंडित जी तो बड़े प्रतिष्ठित और सब राजा बाबू उनकी मानता करते और काशी राज की पाठशाला में सौ रुपए महीना पाते सुने जाते हैं इसका क्या कारण कि उनका बेटा सोलह वर्ष का हुआ आज लो अभी मंगनी भी नहीं उठी। भाग्यवती से पूछिए, मैंने उस समय कैसी लज्जा उठाई। पहले तो मैंने कुछ उत्तर न दिया, पर फिर जब

सुना कि यह सेठ लेपराज जी की लुगाई है कुछ उत्तर न दूंगी तो अपने मन में कुछ और सशय खडा कर लगी तो कहा सेठानी जी ! तुम सदा से जानती हो कि काशी में हमारा कुल बडा ऊंचा है तुम यजमानो के नाम से जन्म पीछे लेते और सगाइया पहन ही आई धरा रहती हैं पर क्या करूं हमारे पडित जी को यह हठ हो रहा है कि हम अठारह वर्ष से पहले बेटा नही व्याहेगे । थोडे ही दिन हुए कि प्रयाग से पडित गोपाल जी की कन्या का सम्बध आया था और परसो तुम्हारी गली मे से गया-कान मिश्र के यहा का सदेश पहुंचा था । फिर एक दिन लोक-नाथ शास्त्री ने भी सम्बन्ध की बात चलाई थी कि (जो सरकारी पाठशाला म प्रधान पडित हैं) पर मैं इस बात का क्या यत्न करूं कि हमारे पडितजी अभी लडके का ब्याह करना चाहते नही । वह सेठानी तो चुप हो गई पर मुझ से नित्य लुगाइयां इस बात की पूछ ताछ रखती हैं, इस कारण अब आप लालमणि क विवाह का उद्यम शीघ्र कीजिये ।

पडित उमादत्त बोल तुम स्त्रियो को इस बात की बुद्धि नहीं कि छोटी अवस्था मे पुत्र का विवाह करना श्रेष्ठ नहीं होता । सुनो, विवाह उस समय करना चाहिए कि जब बालक आप ही स्त्री का भूखा हो । जिसका छोटी अवस्था मे विवाह हो जाये उस का स्त्री मे अत्यन्त प्रम कभी नही हो सकता । तुम देखती हो कि मिश्र मोतीराम ने नौ वर्ष का पुत्र ब्याहा और लाला बलवन्तसिह का बेटा तुम्हारे सामने ग्यारह वर्ष का ब्याहा गया था सो कहो तो अब वे दोनो कैसे सुखी हैं ? उनकी स्त्रिया तो अलग रोती और उनके माता पिता अलग झींकते रहते हैं क्यो कि व दोनो लडके अब महीना २ भर अपने घर नही घुसते । इसका यही कारण है कि छोटी अवस्था मे विवाह हो जाने के कारण अपनी स्त्रियो म उनका पहले ही से प्रेम नहीं हुआ ।

पंडितानी बोली, अच्छा महाराज तुम जानो, पर भाग्यवती की मंगनी तो कहीं शीघ्र भेज दीजिये। क्योंकि यह अब नौ वर्ष की हुई और इसकी सहेलियाँ सब व्याही बरी हुई दिखाई देती हैं। स्वामी! इसकी साथ वाली लड़कियाँ, कोई सात वर्ष की और कोई नौ वर्ष की व्याही गई थीं, इसका आपने कहीं आज तक नाम भी नहीं रखा। क्या आप यह नहीं जानते कि अच्छे घरों के बालक पाँच-छः वर्ष के ही रोके जाया करते हैं सो बतलाइए कि आप इस भाग्यवती को और बड़ी करोगे तो किस कुएँ में गिराओगे?

पंडित जी ने कहा हम तो इसको भी ग्यारह वर्ष से नीचे कभी नहीं व्याहेंगे।

पंडितानी बोली, राम-राम!!! आप यह क्या आश्चर्य करते हैं। सोचिये तो सही कभी कोई लड़कियों को भी ग्यारह वर्ष लों पहुँचने दिया करता है? गीता में लिखा है कि जैसे श्रेष्ठ लोग चलते हैं वैसे ही इतर लोग चला करते हैं और जिस बात को भले मनुष्य प्रमाण कर लेते हैं वह जगत को भी प्रमाण रूप होता है और सब लोग उनके पीछे चलते हैं। सो आप श्रेष्ठ होकर यदि इस प्रकार मुख से निकालेंगे तो सब लोग वैसे ही करने लग जाएँगे। आप को तो यह योग्य है कि कोई शुभ दिन और शुभ महूरत देख के कन्या का सम्बन्ध जहाँ आपका मन माने शीघ्र भेज दीजिये। आप एक दिन कहते थे कि प्रयाग में एक अच्छे वंश का बालक पंडित हो चला है और फिर आप यहाँ काशी में भी किसी पंडित का बेटा [illegible] बतलाते थे। एक बालक मैंने भी सुन रखा है पर एक ब[illegible] है कि वह देखने को तो बहुत सुन्दर और कुल भी बड़ा [illegible]त्र है परन्तु सुना जाता है कि उसकी विद्या पढ़ने में कुछ ऐसी [illegible]ड़ी लगन नहीं। बात क्या आप जहाँ से चाहें जन्मपत्र मँगा के [illegible] लें, यदि कोई कुण्डली

मिल जाए और मगलीक * भी न हो अब भाग्यवती का सम्बन्ध शीघ्र कर द विलम्ब का समय नहीं रहा।

पण्डित जी बोले हम लडकी का विवाह ग्यारह वर्ष से पहले होना कभी श्रेष्ठ नहीं कहेंगे। जब हमने बालक का विवाह अठारह वर्ष पर ठहराया तो लडकी ग्यारह वर्ष से छोटी कब ब्याही जा सकती है? क्या तुमने मनुष्य और स्त्री की रुचि और स्वभाव में कुछ भेद समझ रखा है? भला यह तो सोचो कि जब मनुष्य को अठारह वर्ष से पीछे स्त्री की पूरी रुचि होती है तो स्त्री को ग्यारह से पहले कैसे होनी चाहिए? देखो सेठ रामरत्न ने सात वर्ष की कन्या का विवाह करके जब दो वर्ष पीछे उसका पति मर गया तो कितना दुःख उठाया। हम सुनते हैं कि अब वह कन्या माता पिता और सुसराल वालों की प्रतिष्ठा धूल में मिला के किसी कहार के साथ चली गई। उदयराम शुक्ल ने हमारे रोकते रोकते अपनी नौ वर्ष की भतीजी का विवाह एक बत्तीस वर्ष के ब्राह्मण के साथ कर दिया था। अब वह ब्राह्मण तो नैपाल के राजा के यहां नौकर है और वह घर मे बैठी उस की बाट देख रही है। यह भी सुना जाता है कि उस गली में की दो चार खोटी स्त्रियां उसके पास बैठी रहती हैं। सो जब ऐसी स्त्री को कि जिसका यौवन अवस्था में पति घर न हो थोड़ा सा कुसंग मिल जाए तो वह कौनसा अनर्थ नहीं कर सकती? क्या तुमने नहीं सुना कि मोहनलाल की गली में एक वैश्य की विधवा लडकी गर्भ गिराने के दोष म तीन वर्ष को कैद में गई? सो हम सत्य कहते हैं कि ये सब उपद्रव इसी कारण हुए कि उनके मां-बाप ने छोटी अवस्था मे विवाह कर दिए थे,

* जन्म कुण्डली में चौथे सातवें घर में यदि मगल हो तो उसे "मगलीक" कहते है।

कि जब स्त्री को पुरुष और पुरुप को स्त्री की रुचि नहीं होती। यदि यह लोग अठारह वर्ष के होने पर विवाह करते तो दोनों में अत्यन्त प्रेम और रुचि होने के कारण शीघ्र ही कोई सन्तान हो जाती कि जो पति का वियोग हो जाने पर भी स्त्री के सन्तोप का हेतु गिनी जाती है। लालमणि की मां ! हमने अपने वृद्धों से यह बात भी सुन रक्खी है कि पहले तो हमारे देश में लड़के लड़की का विवाह बड़ी अवस्था में ही करने की रीति थी पर जब से यहाँ मुसलमानों का राज्य हुआ तब से छुटपन का विवाह अच्छा समझने लग गये। कारण इसका यह है कि ये लोग जब पहले ही इस देश में आये तो जिसकी बेटी को रूपवती देखते या सुनते उसके मां बाप को धमका के छीन लिया करते थे। इस कारण प्रजा के लोग यौवन अवस्था से पूर्व ही नौ दस वर्ष की अवस्था में लड़कियों का विवाह करने लग गये क्योंकि मुसलमानों के यहाँ उस स्त्री का छीनना वर्जित है कि जो किसी के हक में आ चुकी हो, अर्थात् जो किसी के साथ ब्याही जा चुकी हो। सो अब तो ईश्वर ने हमको उस महाराज अंग्रेज की प्रजा बनाया है कि जो कभी अन्याय नहीं करना चाहता फिर अब छोटी अवस्था में लड़की लड़कों के विवाह करने में क्या प्रयोजन है ?

यह भी तुमने ठीक कहा कि श्रेष्ठ लोग जो काम करते हैं, उनको देख के इतर लोग भी वैसा ही करते हैं, सो यदि मैं श्रेष्ठ हूँ तो मुझे वैसा काम अवश्य करना चाहिए जो सारे संसार को सुखदायक हो क्योंकि मुझे देख के और लोग भी वैसा करने में उद्यम करेंगे।

पंडितानी बोलीं, हाय-हाय ! तो क्या आप भाग्यवती को ठीक ग्यारह वर्ष की अवस्था में विवाहेंगे ?

पंडित जी ने कहा, हां हम तो वैसा ही करेंगे कि जो सब लोगों के सुख का हेतु हो।

पंडितानी ने उत्तर दिया महाराज यदि आपकी यही इच्छा है तो इस काम का आरम्भ किसी और के घर से करा देना क्योंकि यदि अपने घर से इस बात को चलाओगे तो लोगों में आपकी बहुत अपकीर्ति होवेगी। बुद्धिमान तो वही है कि जो ऐसे कामों को किसी दूसरे के घर से आरम्भ करे कि जिसमें आप अलग का अलग रहे और काम पूरा हो जाये।

पंडित जी बोले अच्छे काम में आगे होने से यदि थोड़े दिन अपकीर्ति भी हो तो डरना न चाहिए। और तुम यह भी सोचो कि जैसे हम अपने घर से पहले इस काम को आरम्भ करना नहीं चाहते वैसे और कौन है कि जो अपने को इस अपकीर्ति से बचाना न चाहेगा? सो योग्य यही है कि इस शुभ कार्य का आरम्भ मैं ही अपने घर से करूँगा फिर देखा देखी बहुत लोग मेरे पीछे हो लेंगे। लालमणि की माँ! हम तो यह भी सोचते हैं कि और भी जो व्यवहारजगत में शास्त्र और बुद्धि से विरुद्ध केवल मूर्खों ने चला छोड़े हैं वे सब दूर हो जाएँ परन्तु यह काम शीघ्रता का नहीं यत्न करते रहेंगे तो धीरे धीरे आप ही सब दूर हो जावेंगे।

भला कहो तो विवाहों में जो लोग सहस्रों रुपए वृथा लुटा देते हैं यह बात किस शास्त्र में लिखी है? क्या अच्छी बात हो कि जो द्रव्य डोम भाट और नाचने वाली वेश्याओं को दिया जाता और अग्नि क्रीडा अर्थात् आतशबाजी में लुटाया जाता है वह वेदों को दिया जाया करे। देखो हमारी गली में छजमल ने अपने सामर्थ्य से बढ़ के पाँच सहस्र रुपया कन्या विवाह पर दिया था सो अब देनदार होकर देश विदेश मारा मारा फिरता है और छोटेलाल ने उससे भी अधिक रुपये लगाये थे कि जिस के पीछे शीघ्र ही बाप-दादा के बनाये हुए सुन्दर मन्दिर बेचने पड़े। पंडित ईश्वरी प्रसाद ने सारी अवस्था की कमाई एक पुत्र के विवाह में

लगा दी थी कि जिसके यहाँ अब अन्न वस्त्र में भी संकोच हो रहा है। फिर क्या तुम ऐसे व्यर्थ उत्साह को अच्छा समझती हो? मुन्नालाल सेठ ने १५ सहस्त्र रुपया कन्या के विवाह में केवल खाने खिलाने औ गोटा किनारी और नाच में लगाया था। जब वह कन्या विधवा हो गई तो बड़े बाप की बेटी होने के कारण भीख तो माँग नहीं सकती थी परन्तु जिस विपत से उसने दिन काटे ईश्वर ही जानता है।

पंडितानी बोली, महाराज विधवा का होना और न होना तो न वे लोग ही रोक सकते है कि जो विवाह में थोड़ा धन लगायें और न वे हटा सकते हैं कि जो बहुत धन लुटाये परन्तु विवाह के समय अपना नाम बढ़ कर लेना तो उनके आधीन था कि जो उन्होंने कर लिया। मैं देखती हूँ कि जिस को धन कहते हैं वह न तो खाने की वस्तु है और न ओढ़ने की, इसके होने का यही फल है मनुष्य बेटा बेटी के विवाह पर मन खोल कर लगा ले।

पंडित जी ने कहा, आं हां! मैं यह तो नहीं कहता उसका विधवा होना कोई रोक सकता था, परन्तु मेरा तात्पर्य यह है कि यदि वह द्रव्य बेटी को दिया जाता तो उसको विधवा होने का दुःख न प्रतीत होता। और जो तुमने कहा कि धन ओढ़ने खाने की वस्तु नहीं, तो मैं यह भी नहीं देखता कि किसी को ओढ़ना खाना धन से बिना भी हाथ लग सकता हो। कैसे आश्चर्य की बात है कि देश विदेश फिर के और पराधीन होके सैंकड़ों क्लेशों के साथ एक-एक पैसा इकट्ठा करना और फिर विवाह के समय अंधे होकर कल्लर में बखेर देना। लालमणि की मां तो इस भांति की व्यर्थ बातें अपने घर से सब दूर कर देंगे।

पंडितानी बोली, हाय-हाय! यदि आप लालमणि और भाग्यवती का विवाह जो बड़ी धूम-धाम से होना चाहिये चुपके

से कर लोगे तो मैं कुनबे के लोगों में क्या मुंह लेकर बैठूंगी ? और गली कूचे की लुगाइयां मुझे क्या कहेंगी ?

पंडित जी ने कहा, अच्छा जब वह दिन आएगा तो देखा जाएगा, परन्तु हम कुनबे के उलाहने और गली कूचे की बातें सहार लेने को इससे अच्छा समझते हैं कि कुनबे के लोगों के सामने कंगाल बन जाएं और एक विवाह करके गली कूचे में भीख मांगते फिरें।

पंडितानी ने कहा, हे रामजी कैसा पतला समय आ गया है कि जो लोग बहुत विद्या पढ जाते हैं उनकी बुद्धि कुछ सारे जगत से निराले ढब की हो जाती है। और उनको यह विचार भी नहीं रहता कि लोग हम पर हँसी करेंगे। पंडित जी महाराज ! क्या न हो मैंने सुना है कि एक बार तुम्हारे गुरु पंडित विश्वेश्वरनाथ जी भी कि जो इस काशी भर के सब पंडितों में शिरोमणि थे एक ऐसी बुरी बात मुंह से निकाल बैठे थे कि जिसको सुनके धरती कांपती थी। चाहे उस समय उनके सामने कोई कुछ उत्तर न दे सका पर आप ही कहो तो उन्होंने यह क्या बात मुंह से निकाल दी थी कि जो लड़की विधवा हो जाये उसका दूसरा विवाह फिर हो जाना चाहिए। ईश्वर ने बड़ी दया की कि वह पंडित जी परलोक को पधार गए नहीं तो इस खोटी बात को काशी में अवश्य चला जाते। सो अब वैसा ही आप भी लोक विरुद्ध बातों का हठ बांध बैठते हो स्वामी ! आपको शिक्षा करने का तो मेरा मुंह नहीं पर बात आपको वही मुख से निकालनी चाहिए कि जिसको सुनके सब लोग आनन्द मानें।

पंडित जी ने कहा कि लालमणि की मां ! हम उस परम उपकारी के शीघ्र परलोक हो जाने का बहुत शोक करते हैं।

इस समय हम इस विषय पर विवाद उठाना नहीं चाहते कि उन्होंने जो बात चलानी चाही थी कैसी थी। हमारा अभिप्राय केवल यह कहने से है और तुम भी इस बात को भलीभाँति जानती हो कि बहुत कम पुरुष ऐसे देखे जाते हैं जो अकेले रहने में अपने मन को बिगड़ने न दें, फिर स्त्रियों की तो क्या गति है? यही बात सोच यदि उनको विधवाओं की दशा पर दया आई हो तो क्या बुरी बात है?[1]

पंडितानी ने कहा, सत्य है स्वामी! मन बड़ा चंचल है इसको थोड़ा सा भी अवसर मिलने से अनेक प्रकार के खोटे संकल्प रचने लग जाता है। इस कारण चाहिए कि प्राणी मन को कभी अवसर न पाने दे और यदि कोई और काम न हो तो विद्या पढ़ना आरम्भ करावे और मन को ग्रंथों के देखने में जोड़ रक्खे। मेरी समझ में वे लोग बड़े मूर्ख हैं कि जो अपने लड़के लड़की को विद्या से हीन रखते हैं। विद्या एक ऐसा अभ्यास है कि उससे मन को कभी अवसर नहीं मिलता कि और किसी विकार में प्रवृत्त हो सके। विद्यावान को यदि कोई आपदा भी आ जाती है तो शीघ्र व्याकुल नहीं होता और न कभी उसकी निवृत्ति के साधन में आलस्य करता है। इसी कारण अब मैं अपनी भाग्यवती को सारा दिन पढ़ने में जोड़ रखती हूँ और मैंने आप भी आपकी

---

१. इसके आगे ग्रन्थकार ने विधवा विवाह को प्रबल युक्ति प्रमाणों से सिद्ध किया था। और विधवा विवाह न होने के दुःख आर्त हृदय से वह वर्णन किए थे कि पढ़ने हार के आँसूधारा चलती थी। विधवा विवाह करने की उत्तम रीति भी बताई थी। परन्तु पाठशालाओं में विधवा विवाह की शिक्षा देना सरकार ने अनुचित मान के उस प्रसंग को निकाल दिया था। वह प्रसंग कलमी कापी के बीच रचयिता पंडित जी के मन्दिर फिल्लौर में रक्षापूर्वक धरा है।

दया मे 'आत्मचिकित्सा'[1] नाम पोथी सारी पूरी करली और सदा उसको दृष्टि के सामने रखती हूं।

पंडित जी बोले, भली सुध आई! हमको अब भाग्यवती का लिखा-पढ़ा देखे बहुत काल हुआ, बताओ तो सही तुमने दो वर्ष मे उसको क्या २ पढ़ाया सिखाया है?

पंडितानी ने कहा, सहस्रनाम गीता तो आप उससे सुन ही चुके है पर उसके पीछे मैंने उसको भाषा व्याकरण, ऋजुपाठ, हितोपदेश और शिक्षामंजरी पढ़ाई। और अब वह भूगोल खगोल नाम ग्रंथ पढ़ रही है और फिर मेरी इच्छा है कि थोड़ी सी गणित विद्या पढ़ा के पीछे से आत्मचिकित्सा का आरम्भ करा दूंगी क्योंकि उसके पढ़ने से प्राणी को लोक परलोक दोनो भांति के व्यवहार प्रतीत हो जाते हैं और गृहस्थ धर्म और मनुष्य धर्म को सर्व प्रकार से जान लेता है।

पंडित जी ने पूछा, भाग्यवती को तुमने कुछ सीना-पिरोना और भोजन बनाना आदिक व्यवहार भी सिखाये हैं वा नहीं?

पंडितानी बोली, हां! ये व्यवहार तो मैं उसे साथ ही साथ सिखाती रही हूं। सच पूछो तो हमारी भाग्यवती के समान सीने पिरोने मे इस गली में की कोई लड़की भी चतुर नहीं! क्या करूं क्वारी होने के कारण आप उसके हाथ मे बना भोजन[2]

---

१ यह अत्युत्तम पुस्तक श्री पंडित श्रद्धाराम जी ने बनाई थी जो फिर उन्हीं ने धर्मामृतप्रवाह नाम ग्रंथ के पूर्व भाग मे लगा दी थी। मूल्य ५ रुपए को लाहौर फिल्लौर पंडित जी के हरिज्ञान मन्दिर में मिलती है।

२ यद्यपि सब लोगों में तो नहीं परन्तु इस देश के साधारण लोगों मे प्राय: यही खयाल है कि वह अपनी क्वारी कन्या के हाथ का बना भोजन नहीं खाते।

खाओगे नहीं, नहीं तो मैं यह भी दिखा देती कि वह मीठे सलोने भोजन क्या २ अच्छे बना सकती है।

पंडित जी ने कहा क्या भाग्यवती को तुमने पाक साधनी पोथी भी पढ़ा दी है कि जिसमें सर्व प्रकार के व्यंजन बनाने की रीतियां लिखी हैं।

पंडितानी बोली, उसका पाठ तो उसने आप ही कर लिया था परन्तु उसमें के सब व्यंजन और पाक मैं भाग्यवती के हाथ से भी कढ़वाती रही हूँ। अब उसको भली भाँति विदित है कि इस पदार्थ में मीठा कितना और घृत कितना डालना चाहिए और इस शाक वा भाजी में लोन किस समय और कितना देना योग्य है और अमुक पाक कितनी आंच को सहारता और अमुक पदार्थ की भाप कब लों बन्द रखनी चाहिए।

पंडित जी ने कहा, अहा! तब तो भाग्यवती को तुमने बड़ी चतुर बना दिया। उसके सुसराल वाले तुम्हारी बड़ी उपमा करेंगे। भला यह तो बताओ कि उसमें बालकों की न्याई चंचलता चपलता और थोड़ी सी बात में रूठ जाने और शीघ्र ही संतुष्ट हो जाने का स्वभाव तो नहीं और बालकों की न्याई कभी किसी बात में हठ तो नहीं बाँध बैठा करती? हाँ एक बात तो हम जानते हैं कि गली में से कभी कोई लड़का लड़की भाग्यवती पर उलाहना लेकर नहीं आया और न कभी लालमणि और भाग्यवती में ही विरोध देखा। हमारे बड़े भाग्य हैं कि ऐसी उत्तम संतान प्राप्त हुई नहीं तो आजकल के लड़के लड़कियाँ तो देखे ही जाते हैं कि माता पिता को क्या-क्या दुःख देते हैं।

पंडितानी ने कहा, अब लों तो भगवान की दया से हमारी भाग्यवती में कोई अपलक्षण नहीं, सबको सीख देकर चलती है; आगे ईश्वर जाने क्या होगा पर मैं इतना जानती हूँ कि जब यह

आत्मचिकित्सा की पोथी सारी पढ़ लेगी तो आगे को भी कोई अवगुण इसमे आने नही पायेगा ।

पंडित जी यह बात घर मे कर ही रहे थे, इतने मे काशी-राज का भेजा हुआ एक दूत आके कहने लगा कि आपको राजा जी सभा मे बुलाते हैं । पंडित जी ने कहा चलो आता हूँ ।

जब पंडित जी स्नान ध्यान के पीछे वस्त्र पहिन के सभा मे गए तो यथायोग्य सत्कार नमस्कार करके राजा जी ने पूछा कि पंडित जी क्या सुना है कि कल इस नगर मे एक बडा भारी उपद्रव हुआ ?

पंडित जी ने कहा, नही पृथ्वीनाथ ! मैंने कुछ नही सुना, क्योकि मेरा स्वभाव है कि जबसे आपके पास से जाता हूँ फिर कभी घर से बाहर नही आया करता । यदि किसी आवश्यक काम के लिए कभी निकलू भी तो प्रयोजन से बिना और किसी से कुछ प्रयोजन नही रखता, सो आप बताइए कि क्या उपद्रव हुआ ?

राजा ने कहा, सुना जाता है कि कोई पजाबी अपने कुटुम्ब समेत तीर्थ यात्रा करता हुआ थोडे दिनो से यहाँ काशी मे आ रहा था, और यह भी सुना है कि वह बडा धनवान् और महाराजा रणजीतसिंह के दिवानो के वश मे से कोई प्रधान पुरुष है । लाहौर अथवा अमृतसर के निकटवर्ती किसी नगर मे उसका घर सुना जाता है, और उसका स्वभाव लोग बहुत सीधा और सरल बतलाते हैं । और बडे आश्चर्य की बात है कि कल उसको किसी ने अपने घर बुलाके कई सहस्र रुपए का पदार्थ लूट लिया । अब वह विदेश मे बैठा सिर पटक रहा है कोई सहायक नही होता । चाहे पुलिस के लोग ढूढ भी बहुत कर रहे हैं पर लूटने हारो का कुछ पता नही मिला कि वे कौन थे और किधर चले गये ।

पंडित जी ने कहा, महाराज ! मैं सुनता हूँ कि ये पुलिस वाले तो आप ठगों और उचक्कों और चोरों बटमारों के संग मिले रहते हैं। मुझे निश्चय है कि उन्होंने लूटने हारों को ढूंढना तो क्या था वरन् इस भाँति की बातें मिला के उस विदेशी को ही उलटा धमका रहे होंगे कि तूने आप ही यह नटखटी की है, अथवा किसी तेरे पुत्र वा मित्र ने वा भाईभृत्य ने यह चालाकी दिखाई होगी। अथवा यह भी आश्चर्य नहीं कि तूने यह झूठी बात ही फैला दी हो कि मैं काशी में आके लुट गया हूँ। बता तूने इतना पदार्थ कहाँ से लिया था, और तुझे यहाँ कौन जानता है ? और चल थाने में चलके असबाब की फेरिस्त लिखा और तुझे यह भी लिखना पड़ेगा कि फलाना कपड़ा तूने कितने गज का और किस बजाज से खरीदा था और फलाना जेवर किस सुनार का बनाया हुआ है और किस तारीख को किस वक्त और किसके सामने सुनार को दिया था और जब उससे लिया तो कौन गवाह है ? उस गवाह का मुख उस वक्त पूर्व की तरफ था या पश्चिम की ? सिर पर पगड़ी थी या टोपी ? और तुझे यह भी कहना पड़ेगा कि गवाह की पगड़ी सुरख थी या सफेद ? पृथ्वीनाथ ! इस भाँति की बातों से उसका मन व्याकुल और बुद्धि भ्रष्ट करके उल्लू बना देंगे। और यदि उत्तर के समय उसकी जीभ थोड़ी सी भी थरथराई अथवा उत्तर में कुछ विलम्ब होगा तो तुरन्त हाथों में हथकड़ी डाल के पाँच सात कानिष्टवल आगे पीछे होकर कोई कहेगा, अरे क्यों नाहक कैद में पड़ता है कह दे कि मेरा कुछ नहीं गया। कोई कहेगा, हमारा नशापानी करा दे अभी छुड़ा देते हैं। कोई कहेगा, लाला अब तो फँस गए कुछ पास है तो दे दिला कर छूट जाओ। थानेदार साहिब मिज़ाज के सखत हैं न मालूम तुम्हारा कहीं आगे चालान कर दें तो तुम्हारे बाल-बच्चे मुसाफरी में हैरान हों।

रुपया पैसा इसी काम आता है, कुछ खर्चो तो अभी छुड़ा देते हैं आगे तुम्हारी मरजी।

राजा जी ने कहा, पंडित जी! क्या अंग्रेजी राज्य मे भी ऐसा अनर्थ हो सकता है कि जैसा आपने पुलिस वालों का सुनाया?

पंडित जी बोले, अंग्रेजों तक ऐसी छोटी बातों को कौन पहुँचने देता। यह तो सारे हमारे देशी भाइयो का ही प्रताप है कि जो पुलिस म नौकर हो रहे हैं।

राजा जी ने कहा, उस पजाबी को तो किसी ने अपने घर म बुला कर लूटा है फिर उस पर यह भ्रम कब हो सकता है कि उसने आप ही नटखटी की होगी।

पंडित जी ने पूछा आप यह तो बताइए कि आपने उसका सारा वृत्तान्त कैसा सुना है।

राजा जी ने कहा, एक दिन वह पजाबी पालकी में बैठके गगा स्नान को जाता था कि आगे से एक और सेठ पालकी में बैठा हुआ इधर को आता मिला। जब पजाबी की पालकी थोड़ी आगे निकल गई तो उस सेठ ने अपना छड़ीदार भेज के पजाबी से यह पूछ भेजा कि आप कौन और किस देश से आए हैं? उस पजाबी ने कहा 'खतरी हा अते पजाब दे देसों आया होया हां, ते लाहौर दे इलाके कुजाह नामे नगर विच्च असाडा घर हई।"

जब छड़ीदार ने हट के अपने सेठ को यह सारी बात सुनाई तो उसने फिर छड़ीदार के हाथ पूछ भेजा कि क्या आप दिवान बद्रीदास जी के पोते और दिवान उत्तमचन्द जी के बेटे नही कि जो हमारे बडे याथ थे? अब तो आप बहुत बडे हो गए मुझे याद पडता है कि आपका नाम शायद लाला जवाहरमल हो। वह पजाबी यह सुनते ही पुकारा कि "हाँ जी मैं जवाहर मल

ही हाँ, जरा उरे आके तां दस्सौ तुसां साडे बावे जी अते लाला जी होरां नूं किवकुर जानदेहो ?"[१]

वह सेठ झट पालकी से निकल उसके पास गया और छाती से लगा के रोने लग गया। फिर मुंह पोंछ के कहने लगा कि आप बहुत छोटे थे कि जब मैं आपके लाला जी के पास लाहौर में रहा करता था। महाराजा रणजीतसिंह के लिए हमारे लाला जी यहाँ से कुछ जवाहरात लेकर जाया करते थे और मैं भी उनके साथ हुआ करता था दो दो वर्ष लाहौर में रहना, आपसे में ऐसा प्रेम था कि एक घड़ी भी अलग न होना खाना पीना सोना बैठना सब आप ही के मकान में हुआ करता था कि जो टकसाली दरवाजे नया बनाया था। यह तो मैंने सुन लिया था कि आपके लाला जी बहुत दिन हुए काल कर गए पर आप यह बताइए कि आपकी माँ जी राजी है कि जो मुझको सदा आपके साथ एक ही थाली में रसोई खिलाया करती थी ? बीबी नन्द कुअर आपकी बड़ी बहिन आनन्द से है कि जिसकी शादी हमारे सामने बड़ी धूम धाम से बटाले शहर में हुई थी ? तुम्हारा गंगाविष्णु रसोइया और बुद्धू कहार बड़े नटखट थे। उनसे हमारी कभी नहीं बनती थी, क्या आपकी गली में जो एक पुराना पीपल था कि जिसमें भूत जानके आप डरा करते थे वह अबलौ खड़ा ही है ? तुम्हारी ताई रामदेवी भी हमसे बहुत प्यार किया करती थी, भला यह तो बताइए कि उनका बेटा मूलचन्द राजी है ? अच्छा साहिब तुम तो उस समय बहुत छोटे थे शायद हमारा नाम भी याद न हो, पर हम

---

१. यह पंजाबी बोली है कि—हां जी, मैं जवाहरमल ही हूँ; जरा इधर आकर तो बताइए कि आपने हमारे दादे और पिता का नाम क्यों कर जाना।

को आपसे मुद्दत बाद भगवान् ने मिलाया है। तो फिर चलिए अब स्नान को पीछे जाना पहले अपनी हवेली में डेरा कीजिए। पहले तो आप अनजान थे अब किसी दूसरे के मकान पर टिकने का क्या काम ? अब मैं आपको अलग नहीं रहने दूंगा मेरे आदमी जाके आपका सब असबाब लिवाए लाते है।

पंजाबी साहिब अपने कुनबे के नाम और पुराने नौकर-चाकरों की बातें और गली कूचे के पते से जान गए कि यह ठीक कोई हमारा जानकार है। फिर पूछने लगा सेठ जी तुहाडा नाम की हई ? जब उसने अपना नाम गुवर्द्धनदास और बाप का नाम श्यामजीलाल बताया तो जवाहरमल पंजाबी ने कहा "अच्छा जी हुण ता असा असनान करन जाणा हई भलके फेर मिलांगे।"[1]

गुवर्द्धनदास ने डेरा तो पूछ ही लिया था, दूसरे दिन तड़के ही चार पांच थाल मिठाई के साथ ले जवाहरमल के पास पहुंचा और कहा कि मुझे तो आप से अलग रहने में रात काटनी भारी हो गई। जब लों दूर थे तब लों तो कुछ याद भी नहीं था परन्तु अब हम तुम्हारा अलग रहना नहीं सहार सकते। रात मैंने आपका आना तुम्हारी भावज के पास कहा तो वह बोली मैं अभी चलके उनको बालबच्चों समेत अपने पास लिवाय लाती हूं पर मैंने उसको यह कह के रोका कि पहले दिवान साहिब से पूछ लेने दो। सो अब कहिए क्या मरजी है ? इसकी प्यार भरी बातों ने उसका मन ऐसा मोम कर लिया कि अपने परिवार समेत इसके घर मे डेरा आ किया। सब गहना कपड़ा आदिक ठाठ एक चौबारे मे रखके आप सामने के एक दालान मे अलग रहने लगे। गुवर्द्धनदास और उसकी स्त्री एक क्षण भी उनसे

---

१ पंजाबी मे इसका अर्थ यह है कि—अच्छा जी ! अब तो हम स्नान करने जाते हैं, कल फिर मिलेंगे।

अलग नहीं होते थे तन मन धन से टहल करने लगे। और कभी-कभी यह भी कह दिया करते थे कि आप विदेश में है यदि दो चार हजार रुपयों की जरूरत हो तो आपका घर है फिर कभी मैं लाहौर से मंगा लूंगा। जवाहरमल कह देता नहीं भराऊ जी ! तुहाडी क़िरपा ते बहुत कुझ है।[1]

अब कल की सुनिये गुवर्द्धनदास ने कहा कि दिवान साहिब ! आज सलौनों का त्यौहार है और यहाँ गंगा जी पर बड़ा भारी मेला हुआ करता है। सो चलिये स्नान करा लाऊँ। जवाहर मल यह सुनते ही झट उसके साथ अपनी लुगाई और नौकर-चाकरों समेत चल पड़ा।

गंगा पर पहुँचते ही जवाहरमल तो स्नान ध्यान और संध्या तर्पण में लगा, गुवर्द्धनदास पालकी वीं छोड़ मेले में होकर झट अपनी स्त्री के पास पहुँचा और बोला काम बना लाया हूँ ताले तो उनके अपने ही थे तोड़ ताड़ के फेंक दिए और सब माल असबाब लेकर कहीं को चल दिए। जब जवाहरमल ने पूजा-पाठ से अवसर पाया तो उन पालकी वाले पूर्वी कहारों से पूछा कि "किऊँ जी, तुहाडे लाला किथ्थे गये हैं, अजे उन्हां अपणा असनान ध्यान कर लीता हई कि नहीं।"[2]

यह सुन के वे पूर्वी कहार बोले, "कौन लाला का जानी कहाँ गए, हमका ही अन लौं भाड़ा पर लिवाये लाए रहे। सो हम आपन भाड़ा लै लीन्ह अब का हम उनका जानन हैं की रहे और कहां की चला गये, जाओ मेला में ढूंढत फिरो।"

---

१. नहीं भाई साहब आपकी दया से बहुत कुछ है।

२. क्यों जी आपके लाला कहाँ गये हैं, अभी उन्होंने अपना स्नान-ध्यान कर लिया है कि नही ?

पंजाबी साहिब उन कहारों की रूखी-सूखी पूर्वी बोली कुछ समझे कुछ न समझे परन्तु मन में कहने लगे हे परमेश्वर ! किते उह कोई बनारसी ठग ही न होवे। तुरन्त अपनी पालकी में बैठ सब नौकर-चाकरों समेत जब घर में आके देखें तो, न गुवर्द्धनदास न उसकी लुगाई और न कोई उसका नौकर-चाकर ही दिखाई दिया। सारा घर भीतर बाहर से बुहारा धरा, फाटक खुले और ताले टूटे और माल असबाब मे तवा तक भी नहीं कि रोटी कर खाएँ। तब तो गली कूचे के लोगो से पूछा कि 'सेठ गुवर्द्धनदास जी होरी आपणा घर सुन्ना छेड के कित्थे टुर गये हैन'।[1] लोगो ने कहा यहाँ तो कोई गुवर्द्धनदास नही रहता अलबत्ता पंद्रह बीस दिन से एक कंगाल सी लुगाई और एक बूढा यहाँ किराये पर आ रहे थे सो आज मेले का दिन है कहीं माँगने खाने टरक गये होंगे। यह सुनते ही दिवान साहिब का मुख पीला हो गया और ओठो पर कालख छा गई। जब मुहल्ले वालो से पूछा कि 'किउं जी, उस गुवर्द्धनदास दे आगे-पिच्छे ताँ पंज सत्त प्यादे दौड दे हुंदे सान, अते रथ गाडी पालकी अर होर घोडे टट्टू वी उसके पास हुंदे हैगे सान, फेर ओह ऐडे झब दे किद्धर छपन हो गया हई।"[2] तो उनकी बात सुन के लोगो ने समझा कि यह कोई विदेशी लूटा गया है और बोले लाला तुम तो धोखे मे आ गए दीखते हो। क्या तुमने नही सुना कि

---

१ पंजाबी बोली सेठ गोवर्धनदास जी साहिब अपना घर सूना छोड कर कहा गए हैं ?

२ पंजाबी बोली क्या जी उस गोवधनदास के आगे पीछे तो पाँच सात प्यादे दौडा करते थे और रथ, पालकी और घोडे-टट्टू भी उसके पास होते थे, फिर यह ऐसी जल्दी किधर छिप गया है ?

दिल्ली और बनारस में कपड़ा गहना रथगाड़ी पालकी घोड़े हाथी सब कुछ किराये पर मिल सकते हैं, वह कोई ठग था जाओ चुप करके बैठो नाहक कोई कानिस्टबिल सुन लेगा तो कुछ और झमेला खड़ा कर लोगे।

यह सारा वृत्तान्त सुनके पंडित जी ने कहा महाराज यह जो आपने सुनाया काशी में यह कोई बात नहीं, सदा ऐसी बातें होती रहती हैं, जैसा कि देखिये एक बात आपको मै सुनाता हूँ कि जो इससे भी कुछ बढ़के है।

दो-तीन वर्ष हुए कि एक साधु जो बड़े भारी महंत और किसी राजा के गुरु जाने जाते थे सौ पचास साधु की भीड़-भाड़ साथ लिये यहाँ काशी से बाहर एक बाग में आ ठहरे थे, उनके पास एक हाथी दस-बीस घोड़े और कड़े कंठे शस्त्र वस्त्र बहुत अच्छे सुने जाते थे, एक दिन कोई सेठ पालकी में बैठ के उनके पास इस रीति से पहुँचा कि मानों कहीं को जाता हुआ अचानक साधुओं के दर्शन को आ गया है। जाते ही एक मोहर जेब में से निकाल भेंट की और प्रेम भाव से पूछा कि महापुरुषों का आना किस देश से हुआ? महंत जी बोले हमारा स्थान तो कुरुक्षेत्र देश में है और न्योनू हांढदे हुए थारी नगरी में आ रहे हैं।[1]

सेठ ने उनकी बांगरी बोली समझ के जी में कहा, बड़े मोटे देश के हैं, इन बांगर के डांगरों को मैं अभी बांध लेता हूँ। फिर

---

१. बांगरी बोली: हमारा स्थान तो कुरुक्षेत्र देश में है और यों ही घूमते हुए तुम्हारी नगरी में आ ठहरे हैं।

कहा, स्वामी जी ! अब तो मैं अचानक किसी और काम को जाता हुआ आ निकला हूं फिर कभी दर्शन करूंगा परन्तु आप यह बताइए कि आप के संग कितने एक साधू हैं ?

महंत जी ने कहा, "भक्त जी ! माणस तो घणे थे पर अब उरेसी सौ एक माणस की भीड़-भाड़ है।"[1]

सेठ जी प्रणाम करके उठ आए और दो-तीन दिन के पीछे फिर जाके एक मोहर भेंट चढ़ाई और पूछा महाराज यदि कोई ब्राह्मण बनिया अपने घर मे भोजन बनवा के आप को अपने घर ले जाना चाहे तो आप उसको पवित्र कर सकते हो वा नहीं ?

महंत जी बोले, "भक्त जी ! साधु लोग भाव के भूखे हैं भोजन के नहीं, सो जो कोई हमने भाव से बुलावे तो हमारे कोई सा माण नहीं।"

सेठ नमस्कार करके चला आया और पांच छ दिन पीछे एक ब्राह्मण के हाथ कहला भेजा कि कल को मेरा घर पवित्र करना होगा सब साधुओं को नौता है, कच्ची मिस्सी रसोई बनवा छोड़ूंगा और यह भी कहा कि मैं चाहता हूं कि सारी धूम-धाम आपके साथ हो और मैं आप आकर सत्कार मान सहित ले चलूं। सब साधु आपके पास ही रहें पूरे दस बजे कोई कहीं चला न जाए। महंत जी ने दूसरे दिन हाथी पर कमखाब का झूल कसवा और सुनहरी हौदे से सजा के एक ओर खड़ा किया। और रुपहरी सुनहरी काठियां घोड़ो पर कसवा कर अलग खड़े किए। दस-बीस साधु चांदी सोने के आसे लिए खड़े हैं और

---

१ बागरी बोली भक्त जी आदमी तो बहुत थे पर अब यहां सौ एक आदमी की भीड़ भाड़ है।

बावा जी मखमल की गद्दी पर मोतियों की झालर वाले तकिए लगाए रेशमी चाँदनी के नीचे अलग विराजमान हो रहे थे कि इतने में दस-बीस टहल वालों के साथ परम श्रद्धा युक्त नंगे पाँव से आता सेठ भी दिखाई दिया। जब उसने पास आते ही प्रणाम किया और पधारिए महाराज! कहा तो दस साधुओं को डेरे की रखवाली छोड़ के महंत जी तो हाथी पर और कई एक मुख्य चेले घोड़ों पर चढ़े। सारा डेरा शंख भेरी नृसिंगे घड़ियालें बजाता हुआ सेठ के पीछे हो लिया। सेठ ने आगे बढ़ के विनती की कि, स्वामी हम काम-काज के आदमी फिर कैसे जिमा सकेंगे आप इन दस साधुओं को भी संग ले चलें, डेरे की रखवाली में मैं आदमी छोड़ चलता हूँ कि जो चौकसी से बैठे रहेंगे।

महंत जी तो उसके प्रेम भाव में पहले ही अंधे हो चुके थे अब कब हो सकता था कि उसकी बात पर कुछ भ्रम खड़ा करते। सेठ के मनुष्यों को बैठाय उन साधुओं को भी साथ ही ले चले। जब नगर के भीतर पहुँचे तो सेठ ने एक गली में बड़े ऊँचे मन्दिर के आगे उन सब को बिठा दिया कि जहां सुन्दर दरियाँ बिछ रही थीं और महंत जी से कहा कि स्वामी गली बहुत तंग व भीड़ी है, लोगों का आना-जाना रुक गया; यदि आप की आज्ञा हो तो हाथी-घोड़ों को मेरे आदमी असबाब समेत कसे कसाए आपके डेरे में ले जाएं। जब आप जीम चुकेंगे तो एक दम में मँगा दूँगा। महंत जी इस पर भी प्रसन्न हो गए तो उस मन्दिर की डेउडी में चौकी बिछवा महंत जी को बैठा दिया। और आप यह कह के भीतर जा घुसा कि देखूँ रसोई में क्या विलम्ब है। महंत जी तो भूखे बैठे जंभाइयाँ ले ही रहे थे वह तुरन्त दूसरे द्वार से निकल महंत जी के डेरे पहुँचा। वहाँ तो सब कुछ लपेट-सपेट के इसी की बाट देख रहे थे। ज्यों ही यह उनके पास पहुँचा सब मिल के कहीं को चल दिए। आश्चर्य यह है

कि घोड़ा न हाथी न उनका धरती पर कुछ चिन्ह ही प्रतीत होता था कि हाथी की चोरी करके वे कहाँ छिप गए।

जब महंत जी ने चार घड़ी बाट देखी कि भीतर से कोई न आया तो एक साधू को कहा तुम भीतर जाके तो देखो क्या हो रहा है?

वह मंदिर तो पुराना खंडहर था, बाहर से ही अच्छा दिखाई देता था जब भीतर जाके देखा तो न कोई सेठ न कहीं रसोई, ईंटों के ढेर और मट्टी के टले धरे थे। महंत जी का मुख देखते ही श्याम हो गया। जब लोगों से पूछा कि यह स्थान किसका और जो सेठ हमको यहाँ लाया था कहाँ चला गया तो लोगों ने कहा यह किसी का स्थान नहीं, पुराना खंडहर पड़ा है, और सेठ को हम नहीं जानते कौन था और कहाँ को चला गया। यह सुनके महंत जी का मन घबराया और कहा साधो! पीछे की सुध भी लेनी चाहिए, हम तो बनारसी ठग के पल्ले पड़ गए दीखते हैं। जब डेरे पहुँचे तो लीद के ढेरों के बिना कुछ भी देखने को न मिला। और पूछा गया तो वह लीद भी घोसी और पजाये वालों के पास बेच गये प्रतीत हुए।[1]

यह सुनके राजा जी ने कहा पंडित जी महाराज! आप यह तो सुनाइए कि उस पहले सेठ ने पजावी के घर वालों के नाम और गली कूचे के पते ठीक २ कैसे बता दिये? और इस दूसरे सेठ ने कपड़े बर्तन हौदा और काठिया आदिक पदार्थ तो छिपाए परन्तु हाथी घोड़ों को कैसे छिपाया होगा कि जिनके पाँवों के चिन्ह धरती से शीघ्र नहीं छिप सकते।

पंडित जी ने कहा, पृथ्वीनाथ! चोर बड़े चतुर होते हैं

---

१ पजाये को 'पँयावा' वा 'आवा' भी बोलते हैं कि जहाँ ईंटें बनती पकती हैं।

उनको ऐसी बातों का कुछ कठिन नहीं होता। और निज करके इस काशो में तो ऐसे-ऐसे ठग रहते हैं कि जो आँखों का अंजन निकाल लें और किसी को प्रतीत न हो।

राजा जी ने कहा, पंडित जी! आज जो हमने आपको दूत भेज के बुलाया है प्रयोजन हमारा यही था कि आप कोई ऐसा ग्रंथ रचें कि जिसमें जगत के सब छलबल और उनकी युक्तियां लिखी हुई हों। जब वह ग्रंथ आप हमको लिख देंगे तो छपवा के सर्व देशों में भेजा जाएगा। इससे निश्चय है कि कोई किसी के धोखे में नहीं आया करेगा। जिन प्रकारों से लोग मूर्खों को धोखा देते और लूट लेते है वे सब प्रकार उसमें लिख देना चाहिए।

पंडित जी बोले, सत्य वचन महाराज! परन्तु ऐसा ग्रंथ मुझ से शीघ्र नहीं बन सकेगा। आप शीघ्र से शीघ्र कहें तो मै एक वर्ष में ऐसा ग्रंथ लिख सकूँगा।

राजा जी ने कहा, बहुत अच्छा! परन्तु जितना हो सके उसको शीघ्र लिखना चाहिए।

पंडित जी ने एक वर्ष में जब वह ग्रंथ लिखके राजा को दिया तो राजा जी ने बहुत प्रसन्न होके सहस्र मुद्रा पंडित जी को अर्पित कीं। उस ग्रंथ में कि जिसका नाम उन्होंने 'कौतुक-संग्रह' रक्खा था रसायन सिद्धि मंत्र-तन्त्र और कई प्रकार का धोखा देना लिखा हुआ था कि जिसको पढ़के कोई कभी भी धोखे में नहीं आ सकता।

जब पंडित जी वह रुपये लेकर आए तो घर के द्वार पर यह सन्देश मिला कि जो जन्मपत्री लालमणि की पंडित वासुदेव शास्त्री ने मँगाई थी वह उनकी कन्या से मिल गई है। और वह यह भी कहता है कि शास्त्री जी महाराज माघ सुदी अष्टमी का विवाह देते है और आपने प्रमाण करना होगा।

पडित जी ने सुनते ही बहुत आनन्द माना और पूछा कि वासुदेव शास्त्री कौन से ? क्या वे है कि जो मिशन स्कूल मे पढाते और पन्द्रह रुपए मासिक पाते हैं, भाई वे तो काशी से बाहर किसी ग्राम के वासी सुने जाते हैं, सो हम तो काशी से बाहर अपने बेटी-बेटे का विवाह करना नही चाहते ।

सन्देश लाने वाला बोला, महाराज ! आपका ध्यान कहाँ चला गया ? ये तो वे वासुदेव जी हैं कि जो जयपुर के राजा के गुरु और बडे प्रतापी हैं। रहते तो वे सदा जयपुर मे ही पर अब कन्या का विवाह यहाँ काशी मे अपने भाई-बधो के बीच बैठ के करने आए हैं।

पडित जी ने कहा हाँ ठीक, वे तो बडे प्रतापी और तेजस्वी हैं और उनके पिता पितामह भी काशी मे गिनती के थे। और उनका कुल बहुत उत्तम और घर सब ब्राह्मणो मे प्रतिष्ठित है।

जब पडित जी भीतर गये तो वह सहस्र मुद्रा अपनी स्त्री को देके कहा कि बडे आनन्द की बात है कि आज ही लालमणि मे विवाह का सन्देश एक ऐसे कुल से आ गया है कि जो सारी काशी मे विख्यात है।

पडित जी ने अपने भाई बन्धु और पचो को बुला के तुरन्त लालमणि के माथे पर तिलक कराया और सबके सामने शास्त्री वासुदेव जी के कुल की उपमा की।

जब विवाह का समय निकट आया तो पहले शास्त्री जी को एक पत्र लिखा कि जिसमे यह वृत्तान्त था —

स्वस्ति श्रीमन्निखिल विद्याविशारद पडित वासुदेव शास्त्री जी के प्रति नमस्कार प्रणाम के अनन्तर प्रार्थना है कि आपने अत्यन्त अनुग्रह से हमारे लालमणि के सिर पर हाथ रखना

चाहा है इसमें मैं अपनी सुभाग्यता और उत्कृष्टता समझता हूँ और लालमणि भी बड़ा ही भाग्यशील है कि जिस पर आपकी सुदृष्टि हुई है। श्रीमन् आपने हमारी कुल को पवित्र करना चाहा है तो हम क्यों न स्वीकार करेंगे परन्तु मेरी एक प्रार्थना है कि मेरे चित्त में विवाह के विषय में कई संकल्प भरे हुए हैं सो मैं आपको सुना देना चाहता हूँ। निश्चय है कि आप भी उनको सुन के स्वीकार्य समझेंगे यद्यपि मैं जानता हूँ कि ऐसी बातें मेरे मुँह से निकलने में कोई मुझ को अहंकारी समझेगा और कोई कहेगा कि यह धन के लगाने में संकोच करना चाहता है, कोई कहेगा कि यह जगत से न्यारी मर्यादा बाँधना चाहता है, कोई कहेगा कि यह अपने कुल धर्म से उल्टा चलता है,किसी को यह भ्रम होगा कि यह लोक-विरुद्ध व्यवहार करता है। परन्तु मुझको निश्चय है कि आप जो शास्त्रज्ञ और सब मर्यादाओं को जानने हारे हो मेरी बात से आप कभी बुरा नहीं मानेंगे। और आपको यह भी विदित है कि यह व्यवहार शास्त्रीय और यह केवल मूर्खों और स्त्रियों ने शास्त्र से विरुद्ध ठहरा रखा है और आप इस बात को भी भली भाँति जानते होंगे कि अमुक व्यवहार के करने में सुख और अमुक में दुःख होता है, अब मैं अपने मन की बातें प्रकट करता हूँ सुनिए :—

१. विवाहों से स्त्रियों का पुरुषों के सामने गाना बन्द कर दिया जाए।

२. जो कोई किसी समय गावे भी तो सिठनी या कोई निर्लज्ज वाक्य मुख से न निकाले और यदि विवाह वाले घर के भीतर-भीतर कुछ मंगल शब्द स्त्रियाँ सभी लें तो डर की बात नहीं पर बाजारों में स्त्रियों का गाती जाना अवश्य बन्द कर देना चाहिए।

३. बराती लोग पैसा रुपया कुछ न बखेरा करें।

४. चूहड़े-चमार आदि कंगाल इकट्ठे होकर बरातियों के घर पर हल्ला न मचाया करें।

५. बरातियों से जो कुछ खर्च कराना हो सो बेटी वाले की पंचायत एक बार लेकर अधिकारी लोगों को अपने हाथों से बाँट दिया करें। परन्तु बरातियों को बहुत बार न सताना चाहिए।

६. बरात में बहुत-सी रथों और गाड़ियों और घोड़ों का बुलाना व ले जाना बन्द किया जाए।

७. जो शकुन व टोटके शास्त्र से बाहर हों, उनको अवश्य दूर कर देना चाहिए।

८. जिन व्यवहारों में बेटी बेटे वाले के बीच में बैर और विरोध खड़ा हो सकें, उनका कभी आरम्भ न होने पाए।

९. बेटी-बेटे के माँ बाप और बड़े भाई का मिलना जुलना जो विवाह के पीछे रुक जाता है यह बात अच्छी नहीं। वरन् आपस में अत्यन्त मिलाप होना चाहिए।

१०. जो द्रव्य अग्निक्रीडा और नाच में व्यर्थ लुटाया जाता है, वह बेटी-बेटे को देना चाहिए।

११. बेटे-बेटी वाले की ओर से जो बेटी के लिए कपड़े बनाए जाते हैं, वे ऐसे होने चाहिएँ कि जो पहनने के काम आया करें। जो अत्यन्त गोटा किनारी, तिल्ला और कलाबत्तू आदि से लदे हुए सदा गठड़ी और पिटारों में धरे ही दो कौड़ी के रह जाते हैं। उनके बदले बेटी को कुछ गहना बनवा देना चाहिए।

१२. खाना खिलाना एक ऐसी पवित्र और उचित रीति से चाहिए कि जिसमें न किसी प्रकार की अशुद्धि होने पाए और न खाने वाले को उसकी आशा में सारा दिन जँभाइयाँ लेनी पड़ें।

बाप को चाहिए कि जो गहना कपड़ा बर्तन आदि पदार्थ बेटी को दे वह ऐसा हो, कि उसके काम आए। वैसा न हो कि जब उसमें से कुछ बेचना चाहे, तो जिस पर रुपया लगा था उसका चार आना पल्ले पड़े। इस प्रकार की और भी बहुत बातें हैं, जिनसे सारा भारत खण्ड दुखी है। परन्तु कोई पलटने का उद्यम नहीं कर सकता।

श्री शास्त्री जी महाराज, जब आप इन बातों को अपने घर से और इधर मैं अपने घर से बन्द कर दूंगा तो निश्चय है कि देखा देखी सारी काशी में से दूर हो जाएँगी। और जब काशी से इन बातों को निकाल दिया, कि जो भारत खण्ड का एक प्रसिद्ध नगर है तो पूर्व-पश्चिम उत्तर-दक्षिण के सब नगरों में इसी के अनुसार विवाह करने लग जाएँगे और आपका यश होगा।

पत्र के पहुँचते ही शास्त्री वासुदेव जी ने बड़े आनन्द से उत्तर लिखा कि जिसका वृत्तान्त यह था—

सिद्ध श्री सर्वगुणोत्कृष्ट, विद्वज्जनमंडली वरिष्ठ, श्रीमत्पंडित उमादत्त जी के प्रति कोटांशोन्नति पुंज के पश्चात् प्रकट हो कि, कृपा पत्र आपका मनोहर संकल्प वृन्द युक्त पहुँच के आनन्द जनक हुआ, भगवन् ! मैं तो प्रथम ही इस बात को चाहता था कि किसी ऐसे घर में कन्या समर्पण हो कि जहाँ पुरानी भाँति के मनुष्य न हों। विद्वन् ! अब तो समस्त बुध जनों को यही उचित है कि समय के अनुसार कार्य का व्यवहार किया करें। जो बातें आपने लिखीं मैं इनमें ऐसी कोई नहीं देखता कि जो ग्रहण करने के योग्य न हो। मुझको पहले ही से इन शास्त्र विरुद्ध विचारों का दूर करना श्रेष्ठ दिखाई देता था। परन्तु अब बड़ा आनन्द हुआ कि आप भी मेरी नाईं इन दुराचारों से घबराए हुए हो। हाय जगत में कैसी अन्धपरम्परा चली आती

है कि एक दूसरे के पीछे चला जाता है। कोई आँख मूँद के यह नही सोचता कि यह व्यवहार मैं क्यों और कैसे करता हूँ। बुद्धिमान वही है कि जो सम्पूर्ण व्यवहारो के पूर्व विचार को मुख्य रखे। और जो कि देखादेखी कुए मे गिर जाए, हम उसको पंडित नही कहेगे सो आप दृढ निश्चय रखें कि हमारे घर मे आपकी इच्छा से विरुद्ध कोई व्यवहार नही होने पावेगा। हम सपरिवार आपके अनुकूल हैं। नमोनमः।

पण्डित उमादत्त जी इस पत्र को पढकर फूले न समाते थे, और अपनी स्त्री से कहने लगे कि लालमणि की माँ! हमको ईश्वर ने समधी भी वैसे ही मिला दिए कि जैसे हम चाहते थे। नही तो कई बातो मे विमन और उदास होना पडता। अब हमको यह भी निश्चय है कि उस घर की बेटी भी बडी चतुर होगी कि जिसका बाप ऐसा बुद्धिमान है। पंडित उमादत्त जी ने विवाह के योग्य भूषण वस्त्र आदि ठाठ तो पहले ही बना रक्खा था जब चलने का दिन आया तो १०-१२ मनुष्य अपने भाई बन्धुओ मे से बुला के साथ लिए और दो रथो और दो-तीन गाडियाँ और पाँच टहल वाले कहार बरात के साथ लेकर शास्त्री वासुदेव जी के स्थान को चल पडे। चाहे गली कूचे के कई लोग चलने के समय कह चुके कि पंडित जी महाराज! आपको भगवान ने सब कुछ दे रखा और सैकडो रथ गाडियाँ और हाथी घोडे बग्घी, पालकी आदि पदार्थ नैकसी जीभ हिलाने मे आपके पास काशीराज के यहाँ से आ सकते थे। फिर आप लालमणि का विवाह चुपके से क्यो करते हैं? फिर बहुत सी लुगाइयाँ यह कहती भी पास से निकली कि ऐ हैं री! इस पंडित का एक ही पूत और घर मे सब तरह से भगवान की दया है। और समधी भी भगवान् ने अच्छे खाते-पीते इनके बराबर के ही मिलाये थे पर यह निगोडा इस समय पैसे का पूत बना जाता

है। क्या यह इतना पदार्थ छाती पर ले जाएगा ? कई भिक्षुक और कंगाल कहते कि मिस्र जी ! देखना ब्राह्मण हो न हो निकलना यह मन खोलने का बेला है। कोई-कोई भाई बन्धु पंडित जी को सुना के कहता था कि भाई ! पैसा हाथ से छोड़ना बड़ा कठिन है। पतप्रतीत तो फिर भी हाथ आ जाएगी, पर गया हुआ धन फिर हाथ नहीं आता।

पंडित जी महाराज सबकी सुनते हुए चुपचाप चले जाते किसी को कुछ उत्तर नहीं देते थे। जब शास्त्री जी की गली में आके डेरा किया तो शास्त्री जी ने कहला भेजा कि मुझको मेरे सम्बन्धी और पड़ौसी इस बात में बहुत दुखी कर रहे हैं कि तुमने इतने बड़े होके चुपके से बेटी का विवाह कर लेना चाहा है। यदि हमारे कुल के समान धूम-धाम से विवाह न करोगे, तो हम लोगों में से तुम्हारे घर कोई नहीं आवेगा। सो अब बताइए कि जब कोई भाई बन्धु विवाह में न आया तो काम कैसे चलेगा। क्योंकि एक तो नगर में अपकीर्ति होगी दूसरा मैं अकेला आपकी टहल-सेवा कैसे कर सकूँगा। उनको मनाने जाता हूँ तो वे नाच मुजरा और अग्निक्रीड़ा और कई प्रकार की धूमधाम देखना चाहते हैं कि जो आपकी इच्छा से बाहर है। सो कहिए कि अब मुझे क्या करना उचित है ?

पंडित उमादत्त जी ने उसके उत्तर में कहला भेजा कि मेरे भाई-बन्धुओं ने भी चलती समय मुझसे कुछ थोड़ी नहीं की थी। पर मैंने उनकी एक नहीं मानी। आप जानते है कि जब-जब कोई पुरुष किसी नई बात का आरम्भ करना चाहता है तो अथवा अपनी पुरानी रीतियों को सुधारने की इच्छा करता रहा है उसके भाई-बन्धु और सांसारिक लोग कभी उससे प्रसन्न नहीं रहे। सो जो अपने भाई-बन्धु और जगत की अपकीर्ति से डरता रहे वह संकल्पों को कभी पूर्ण नहीं कर सकता। बात तो तब ही

बनती है कि यदि उन्मत्त हस्ती की नाईं अपने मार्ग में सीधा चला जाए और लोगों के बकने पर कान न धरे। जंगल का बकना उस दशा में सुन सकना चाहिए कि जब कोई बुरा काम करते हो। जिस दशा में आप सारे जगत का सुखदायक और परम श्रेष्ठ काम करते हो, तो फिर मूर्खों के बकने का क्या भय करना चाहिए। आप जानते हैं कि जब कोई माता-पिता अपने सोए पड़े बालक को जगाने लगता है तो बालक दुखी होके क्या बकता है परन्तु माता पिता का धर्म नहीं कि उसको सोया ही छोड़ दें। सो वैसे ही यह संसारी लोग भी अज्ञान-निद्रा में सोये पड़े हैं। यदि कोई इनको जगाना चाहता है तो अत्यन्त दुखी होते हैं। सो शूरवीर वही है, कि जो वाक्य-कुवाक्य सहार के इनके जगाने में लगा रहे। शास्त्री जी महाराज आप यह भी विचारिए कि लोगों का क्या जाएगा। यह तो विलास देख के अलग हो जाएँगे और घर हमारा तुम्हारा लुटेगा। आप इन लोगों के बुलाने और मनाने की कुछ इच्छा न करें। और न मैं इनकी टहल-सेवा का भूखा हूँ। इनकी चाल यह भी होती है कि जितना आप इनको बुलाएँगे, यह दूर भागेंगे। और यदि आप इनसे दूर रहना चाहेंगे तो अपने आप आपके पीछे फिरेंगे।

पंडित उमादत्त जी की इन बातों को सुनके शास्त्री जी का मन दृढ़ हुआ और शास्त्रीय रीति के अनुसार विवाह कर्म में प्रवृत्त हुए। विवाह का लग्न जो रात का था, इस कारण सारी रात लालमणि को जागना पड़ा और उनींदे रहने के कारण प्रातः ही लड़के को थोड़ा सा ज्वर हो गया। जब गली कूचे में यह बात प्रकट हुई कि आज दूल्हे को तप चढ़ आई है, तो भाई-बन्धु और स्त्रियों में यह बात फैली कि भाई क्यों न हो क्या हमारे पुरखा लोग मूर्ख थे? कि जिन्होंने विवाह से पहले चौल्ह का पूजन ठहराया हुआ है। क्या वृद्ध लोग भूल के दूल्हे से गये

का पूजन कराया करते थे। भाई, इन्होंने तो सबकी मानता छोड़ दी। हम सुनते हैं कि पुत्र वाला घर से चलने लगा तो उस कीकर के रूख को तो मनाया ही नहीं, कि जिसको सब लोग मनाया करते थे। सुना जाता है कि इसने चलने के समय लड़के को दही तो खिलाया ही नहीं, कोई बोला कि बहुत विद्या पढ़ने के कारण यह लड़का भी हाथों से निकला जाता है।

रात इसने लगन समय किसी का यह कहना भी नहीं माना कि बकरे का कान चीर के वेदी पर बैठता। कोई कहता, अरे तुम क्या कहते हो लड़का तो कल घर ही में आ घुसा उसने हमारे कुल की रीति के अनुसार पुराने जूते को भी सिर न झुकाया, और न इसने हमारी यह रीति मानी कि सूप के ऊपर पाँव धर के भीतर जाता, फिर भला इसको तप क्यों न चढ़ आती। भाई मनमतिये होना अच्छा नहीं, किसी की बात भी मान लेना चाहिए।

अब लुगाइयों की सुनिये! जब सुना कि आज दूल्हे का मन भारी है तो शास्त्री जी की लुगाई से आके कहने लगीं कि, पंडितानी जी! लड़के का चित्त अनबन सुना है, क्या तुमने किसी शगुन वा टेहुले को तो नहीं तोड़ा? हम सुनती हैं कि तुम्हारे समधी तो किसी को भी नहीं मानते। गली की लुगाइयाँ कहती हैं कि कल बहुत लोग कह चुके पर बाप ने अपने पूत का कल्लू पीर के आगे सिर न झुकाने दिया, और यह भी सुना गया है कि जब लड़के को घोड़ी पर चढ़ाया तो लुगाइयों को लड़के के माथे पर बेसन का टीका भी न लगाने दिया, कोई कहती ऐ है री! लड़का आप ही बड़ा निडर है उसने हमारे सामने यह बात कही थी कि मैं लुगाइयों वाले सगन सूत कोई नहीं मानूँगा। एक लड़की पास से बोली अम्मा उसने सब लड़कियों को गाने से बन्द कर दिया था; एक और लड़की बोली कि जब हम सब

उसकी आँखो मे अजन डालने गई तो उसने कहा मैं ये स्त्रियों वाले छनन मनन कभी नही मानूँगा। एक ने कहा हम सब बहुतेरा ही समझा रही पर दूल्हे ने न तो नगर की रीति अनुसार आप ही मदारी शाह की भीत को सलाम किया और न दुल्हन को ही करने दिया। ये बातें हो ही रही थी कि शास्त्री जी घर मे आ निकले। लुगाइयो की भीड देख के पूछा क्या हो रहा है? एक बुढिया बोली क्या हो रहा है बताये? दूल्हे को चिन्ता मे बैठी हैं।

शास्त्री जी ने कहा, दादी जी! रात भर जो वेदी पर बैठ के जागना पडा इस कारण उसका सिर कुछ भारी सा हो गया था अब तुम्हारी दया से अच्छा है, चिन्ता मत कीजिये।

बुढिया बोली, हाँ! रात के जागने से भी किसी को तप आ जाती होगी? तुम्हारा तो कोई निराला ही मत है, तुम तो सबके दादा जनमे हो कि जो कुनबे मे से किसी की नही मानते? चलो, लडके को घर मे भेज दो, जिस पीर फकीर देवी देवता की भूल हुई होगी हम आप ही क्षमा करा लेंगी।

शास्त्री जी ने उसका मन उदास करना अच्छा न समझ के यही कहना योग्य समझा कि, बहुत अच्छा दादी जी! उनके डेरे मे नाई को भेजता हूँ, यदि बालक उनके साथ आ गया तो आप जो चाहे सो कर लें।

तीन दिन बरात वहाँ रही। चौथे दिन शास्त्री जी ने चादी की खाट बिछाई। दान-दहेज का क्या ठिकाना था। बड़े २ इकावन बरतन और एक सौ ग्यारह सूती और रेशमी वस्त्र, इक्कीस गऊ, ग्यारह घोडे और सोने-चांदी के दुहरे गहने और सीतापुर नाम एक गाँव है जो जयपुर के राजा ने शास्त्री जी को दिया था यह सब पदार्थ तो लडकी के लिये निकाला और छोट

के कड़े मोतियों की माला, पाँचों वस्त्र लड़के के लिए धरे। एक दुशाला और इकावन मोहरें श्री पंडित उमादत्त जी के लिए रख के शास्त्री जी ने साथ जोड़े और कहा कि यह पुष्प पत्र आपकी भेंट है। मैंने जो कन्या आपको दी है यह भोली भाली आपकी दासी कुछ सेवा-टहल नहीं जानती। हमारे कुल की लाज काज आपके आधीन और मेरी पत आपके हाथ है। सो सदा कृपा दया रखते रहना, आपके दास हैं।

उमादत्त जी ने यह बात सुनके नेत्र जल से भर लिये और कहा, शास्त्री जी महाराज! आप यह क्या कहते हैं, आपने जो हमारे सब दरिद्र दूर कर दिये? क्यों न हो, आपके वंश का यह इन्हीं बड़ाइयों से विख्यात हुआ है, सब लोग जानते हैं कि आपके वृद्ध भी सदा ऐसी ही उदारता दिखाते रहे हैं, हमारा लालमणि अत्यन्त बड़भागी है कि जिसके सिर पर आपका हाथ रक्खा गया है। यह कहके पंडित उमादत्त जी ने जल का लोटा और अर्घा लालमणि के साथ में देकर ग्यारह मोहर का संकल्प कुल पुरोहित को और पाँच उपाध्याय को दिलवाया। दो मोहर नाई और दो ही भीवर को देकर पाँचसौ रुपया वर वधू के सिर पर न्योंछावर करके नगर के कंगालों के लिये निकाल दिया। फिर सारा पदार्थ छकड़े पर लदवा बड़े आनन्द मंगल से घर में आए। घर में आते ही अपनी गली में की सब विधवाओं और कंगालों को पाँच-पाँच रुपये लालमणि के हाथ से दिलवाये। और दो सौ रुपये विवाह के उत्सव के पश्चात् शास्त्रीय पाठ-शाला में भिजवाये कि जहाँ विदेशी विद्यार्थी पढ़ते थे।

अब लालमणि की माँ फूली न समाती थी और भाग्यवती भी अपनी भावज को देखकर बहुत प्रसन्न हुई। लालमणि की माँ गली की लुगाइयों से कहती कि, हमारी बहू शास्त्री जी की बेटी है पढ़ने-लिखने में बड़ी चतुर होगी। भगवान् ने बड़ी दया

की कि जैसा हमारा लालमणि गुणवान् और विद्या की खान है वैसी ही उसको बहू भी मिली। जो लुगाइयाँ बहू को देखने आतीं इसके रूप यौवन शील स्वभाव की बड़ाई करके हँसी में यह अवश्य कह जातीं कि, पंडितानी जी बहू तो भाग लगे, बहुत अच्छी मिली पर शास्त्री जी की बेटी है, जैसा उन्होंने कुनबे में विवाह के समय किसी का कहना नहीं माना वैसे यह भी हम सबसे निकले देख को ही न निकल आवे।

बहू कुछ दिन तो मारे लाज और संकोच के किसी की बात का उत्तर नहीं देती थी पर जब थोड़े दिन में अपने पराये सब लोगों को पहचान जान लिया और सब लुगाइयाँ भी एक २ दो २ बार देख भाल ली तो यथायोग्य सब का आदर भाव और मान सत्कार करने लगी। तब तो सब स्त्रियाँ और लड़कियाँ जहाँ बैठतीं इसी के शील स्वभाव की उपमा किया करती थीं। लालमणि की मा भी इससे बहुत प्रसन्न रहने लगी, क्योंकि, थोड़े ही दिनों में घर का सब काम-काज जो उस को करना पड़ता था बहू ने सम्हाल लिया। ईश्वर ने बुद्धि ऐसी दी थी कि सासु को कोई बात मुख से नहीं निकालनी पड़ती, जिधर ध्यान करती सब काम हुए हुवाये ही देखती।

अब जो घर का हिसाब लिखना और सीना परोना आदि भाग्यवती के काम भी बहू ने ही सम्हाल लिये तो, भाग्यवती के लिखने पढ़ने के लिए कुछ और भी अवसर प्राप्त हो गया। जैसा कि उस ने 'आत्मचिकित्सा' के पीछे कुछ साहित्य शास्त्र का पढ़ना भी आरम्भ कर दिया कि जिस के पढ़ने से छन्द प्रबन्ध रचने की सामर्थ्य हो जाती है। जब थोड़े ही दिनों में उस को नायिका भेद, अलंकार और छन्दों का ज्ञान हो गया तो कुछ-कुछ कविता भी करने लग गई। एक दिन उसके पिता ने पूछा बेटी भाग्यवती! हम सुनते हैं कि तुम को छन्द रचने की भी

अच्छी सामर्थ्य हो गई है। सो यदि यह बात सत्य है तो दो चार श्लोक हम को काशीराज की स्तुति के बना दे कि तेरे विवाह के लिए कुछ द्रव्य प्राप्त हो जाए। भाग्यवती ने विवाह का नाम सुनके तो नेत्र नीचे को कर लिये परन्तु श्लोकों के विषय में धीरे से यह उत्तर दिया कि संस्कृत श्लोकों के बनाने में तो मुझे अभी पूरी सामर्थ्य नहीं पर भाषा के दोहे चौपाई और कवित्त आदिक जितने छन्द हैं मैं बुरे भले सब बना लेती हूँ जैसा कि देखिये मैंने एक रूमाल पर कुछ सुई का काम किया है। और उस सुई के काम में मैंने एक न्या बना के कुण्डलियाँ छन्द भी लिखा है। कि जो उसी रूमाल की स्तुति में है।

पण्डित जी उस रूमाल को देख के बहुत ही प्रसन्न हुए और मन में कहा यह राजा जी के योग्य है। जब पण्डित जी ने दूसरे दिन यह बात कह के राजा जी को दिखाया कि महाराज ! यह रूमाल भाग्यवती ने बनाया है तो राजा जी अत्यन्त प्रसन्न हो के कहने लगे आहा ! यह तो बहुत ही अच्छा बनाया और इस के बीचों बीच जो उस ने कुण्डलियाँ लिखा है इस को देख के यह निश्चय करते हैं कि यह कन्या बड़ी ही चतुर है। और इस के समान काशी भर में दूसरी कोई नहीं होगी। लो आज यह मोतियों की माला हमारी ओर से भाग्यवती को देना। और जब आप उसका विवाह करो तो कुछ दिन आगे हम को विदित करना।

पण्डित जी प्रसन्न हो कर भाग्यवती के पास आये और गली में की कई लड़कियों के सामने यह बात कह के वह माला दी कि बेटा भाग्यवती ! राजा जी तेरे बनाये हुए रूमाल को देखकर बड़े आनन्दित हुए, सारी सभा के सामने उन्होंने यह मोती की माला तेरे लिए भेजी है। उन का मन गुण विद्या चतुराई को देख के अति आनन्द मानता है। यदि इन लड़कियों

मे से भी कोई कुछ अपनी चतुराई राजा जी को दिखावे तो वह अवश्य अपनी उदारता दिखावेंगे।

भाग्यवती ने लपक के उस माला को लिया और अपनी माता जी को जा दिखाई। इतने मे पण्डित जी ने पास जाके कहा लालमणि की मा ! लो आज तो राजा जी ने यह भी कह दिया है कि भाग्यवती के विवाह से पहिले हम को विदित करना। सो यदि तुम भी श्रेष्ठ समझती हो तो पण्डित जगदीश जी के यहाँ उसका सम्बन्ध कर दें, क्योंकि एक तो वे राजमान्य और सारी काशी मे धनाढ्य हैं दूसरा उनका पुत्र मनोहरलाल आज काशी मे अद्वितीय पण्डित है, पिछली सभा मे उस बालक को शास्त्री की पदवी मिली। और राजा लोग उस को सदा अपने पास रखना चाहते हैं हमने देखा है कि उस का जन्मपत्र भी भाग्यवती से मिलता है और तुम उसके रूप लक्षण को देख के भी मन मे प्रसन्न होओगी। अवस्था सोलह वर्ष की और शील सन्तोष मे भी भाग्यवती के समान है।

पण्डितानी बोली तो बस फिर आप और क्या देखते हैं। सुख और सम्पत तो लड़की के भाग्य पर है पर माता पिता का यह धर्म है कि घर-वर अच्छा देख लें। सो अब विलम्ब न कीजिये।

पण्डित जी ने तुरन्त भाग्यवती का सम्बन्ध पण्डित जगदीश जी के यहाँ भेज के यह प्रकट किया कि वैशाख शुक्ल अष्टमी का विवाह है।

पण्डित जगदीश जी ने इस समाचार के पहुँचते ही अपने वंश के लोग बुला के सारा वृत्तांत सुनाया। लोगो ने कहा महाराज ! या घर तो पण्डित उमादत्त जी का बहुत उत्तम और प्रतिष्ठा भी भगवान की दया से अच्छी और राजमान्य है, परन्तु उनका स्वभाव कुछ जगत से निराला सुना जाता है। जब वह अपने पुत्र लालमणि को शास्त्री वासुदेव जी के यहाँ

ब्याहने आये थे तो इतने बड़े होकर न कोई बाजा लाये और न कोई तमाशा, कंगालों की नाई दो तीन गाड़ियाँ लेकर आ बैठे थे। हां हम सुनते हैं, कि परोहितों और उपाध्यायों और नाई कहार आदिकों को तो बहुत कुछ दिया और पांच सौ रुपये गली में के कंगालों को भी दिये, परन्तु इतना देना तब ही शोभा पाता कि यदि बरात के साथ पाँच सात प्रकार का नाच और कई चौकियां गाने-बजाने वालों की होतीं। उनसे तो न कोई पांच सात सौ रुपये की बखेर ही बन पड़ी और न एक रुपये तक की किसी को अग्निक्रीड़ा ही दिखाई; चुपके से बेटे का विवाह कर ले गये।

पण्डित जगदीश जी ने कहा, हम तो इन बातों में उनकी श्लाघा ही करेंगे कि जिन्होंने मूर्खों की भाँति अपने धन को व्यर्थ न लुटाया। भला तुम ही बताओ कि यदि बखेर के समय एक दो कंगाल भीड़ में दब जाते तो सरकार में कौन खिचा २ फिरता? और अग्निक्रीड़ा में दो घड़ी की आहा के अतिरिक्त क्या लाभ होता? गाना, बजाना, नाच मुजरा तुम लोग भी तब लौं ही अच्छा समझते हो कि जब लौं इसके दोष को नहीं सुना, वे तो पण्डित थे ऐसा व्यर्थ उत्साह क्यों करने लगे थे? लोगों ने कहा अच्छा महाराज! आप पण्डित हो जिस बात को चाहो खरी खोटी बना सकते हो, हमारा यही धर्म है कि आप के पीछे चलते रहें।

पण्डित जगदीश जी ने विवाह का दिन नियत कर के जब पण्डित उमादत्त जो के यहाँ सन्देश भेजा तो पण्डित जी ने भाग्यवती के विवाह का सारा-वृत्तान्त राजा जी को जा सुनाया। राजा जी ने एक सहस्र मुद्रा दे के कहा पण्डित जगदीश जी बड़े प्रतापी और प्रतिष्ठित हैं। उनकी सेवा-पूजा में न्यूनता न होने पावे।

जब विवाह का दिन आया तो पण्डित उमादत्त जी के लिखे अनुसार पण्डित जगदीश जी यथायोग्य समाज बना कर आ प्राप्त हुए। लग्न के समय दोनों ओर से जैसा उचित था, दान पूजा और औदार्य प्रकट हुआ। फिर खाना खिलाना जैसा कि हुआ उस में कौन दोष लगा सकता है। चौथे दिन यथाशक्ति पण्डित उमादत्त जी ने भाग्यवती और मनोहर लाल अपने जमाई को और उस के पिता को दान दहेज दे के नमस्कार किया और चलने के समय हाथ जोड़ के यह बात कही कि हम आप के दास और हमारी लाज आपके हाथ है।

अब भाग्यवती अपने सुसराल मे आई। इस के गुण विद्या चतुराई की धूम तो सारी काशी में पहिले ही मच रही थी, नित्य नित्य बहुत सी स्त्रियां इसके देखने को आने लगी। जो कोई एक बार भाग्यवती के पास बैठ के बात-चीत सुन कर जाती फिर उसका मन अपने घर में काहे को लगता, आठों पहर इसी के देखने की खच लगी रहती। थोड़े ही दिनों में इस ने अपने प्रेम भरे बोलचाल से सब लोगों को वशी कर लिया। इसके घर के लोग तो इसके काम काज और शील स्वभाव से प्रसन्न थे ही परन्तु गली-कूचे में भी बाल वृद्ध स्त्री पुरुष ऐसा कोई न था कि जो इस की श्लाघा न करता। चाहे यह नई बहू और अवस्था की छोटी भी थी पर दूर २ की स्त्रियां अनेक व्यवहारों में इससे बात पूछने का आया करती थी। बड़ियों का आदर छोटियों पर दया और समान वालियों से मैत्री और अयोग्यों की अपेक्षा इस का यह व्यवहार देख के दो चार स्त्रियां सदा इस के पास बैठी रहती थीं, इस कारण अब इसने उनको कुछ शिक्षा करना आरम्भ किया। किसी को कहती तुम्हारी बुद्धि बहुत अच्छी दिखाई देती है क्या अच्छा हो कि यदि तुम थोड़ा सा लिखना-पढ़ना सीख लो। किसी को कहती तुम आज से कुछ सीना-परोना सीखा

करो। किसी को कहती, कल मैंने ऊपर से तुम्हारे घर में यह बात होती सुनी थी कि भाजी में लोन थोड़ा था, यदि तुम सीखना चाहो तो मैं दस दिन में तुम को सारे व्यंजन बनाने सिखा सकती हूं। उसकी ऐसी मीठी और मनोहर वाणी थी जिसको जो कुछ कहा सो ही मान लिया। एक लड़की ने कहा मेरे पिता मुझ को कई बार अक्षर सिखा चुके हैं। उनके नाम तो मैं जानती हूं पर जब वे पूछते हैं कि यह कौन सा अक्षर है तो मैं उसकी मूर्ति नहीं पहिचान सकती। सो कोई ऐसी युक्ति बताओ कि जिससे मैं अक्षरों की मूर्तियां पहिचान लिया करूं।

भाग्यवती ने कहा, यह बात तो बहुत सहज है। मैं पन्दरह बीस दिन में तुम को सब अक्षर सिखा दूंगी। तुम कल सवेरे से एक घड़ी नित्य मेरे पास आया करो। जब दूसरे दिन वह लड़की गई तो भाग्यवती ने उसके हाथ में पांच बादाम दिये कि जिन पर ककार से लेकर ङकार तक पांच अक्षर के स्वरूप लिखे हुए थे। फिर उन में से ककार वाला बादाम निकाल के उसको दिखाया और कहा, ला ! मैं इसको इन पाँचों के बीच मिला देती हूं तुमने ढूंढ के यही बादाम मुझ को पकड़ा देना। एक दो बार तो उसने कोई और अक्षर पकड़ा पर फिर आप ही वही अक्षर निकाल के देने लग गई। जब उसने ककार की मूर्ति भली भाँति पहिचान ली तो फिर वैसे ही खकार की भी पहिचान ली। जब पाँचों की मूर्ति उसके मन पर लिखी गई तो, फिर चकार आदिक पांच भी वैसे ही उसकी पहिचान में कराये। इसी रीति से छः सात दिन में अक्षरों की पहिचान और दस दिन लगमात्र की पहिचान करा के छोटे २ पद पढ़ाने लग गई। ५ बजे से दस बजे लों लिखाना पढ़ाना और दस बजे से बारह लों सीना सिलाना सिखा के ऊपर का सारा दिन घर के काम-काज में पूरा करती थी, पर घर का सुधारना बनाना नौकर-चाकरों के

आलस्य होने के कारण कोई किसी काम-काज को हाथ नहीं लगाती था। जो बरतन जहां पड़ा वह सांझ लों वहीं पड़ा रहता। और कपड़ा जहां धरा वह वहीं पड़ा मैला हो जाता था। कई बार ऐसा भी हुआ कि किसी बहू का कोई गहना मटेरे पर से भाग्यवती ने उठाया, और कई बार किसी बेटी का छल्ला कोठे पर से किसी नौकर ने पाया। खाने और सोने के अतिरिक्त घर में कोई कुछ न जानती थी। पण्डित जी जो कुछ घर में कमा के लाते, फिर वे कभी नहीं पूछते थे कि कितना लाय और कैसे हुआ। अन्न घी मीठा लोन तेल आदिक सामग्री की कुछ गिनती नहीं थी कि महीने में कितनी आती और कहां जाती थी। चाहे नौकर-चाकर तो घर में चार-पांच रहते थे पर यह कोई नहीं जानता था कि मुझे नित्य क्या २ काम करने चाहियें। भाग्यवती ने यह दशा देख के सोचा कि घर के सब व्यवहार जो बिगड़े बिगड़े पड़े हैं इनको अवश्य सुधारना चाहिये। पर इतना विचार है कि यदि मैं किसी को कुछ समझाऊंगी तो मुझ से उस की अनबन हो जायगी। कोई ऐसी युक्ति निकालनी चाहिये कि जिस से काम भी चल जाय, और बुरा भी न माने।

जब तड़का हुआ तो भाग्यवती ने बिछौने पर से उठते ही सारे घर में झाड़ू दिया, और फिर आप ही रसोई के स्थान चौका लगाया और सब बरतन मल धरे, फिर आप ही दही बिलोकर अपने स्नान ध्यान से अवसर पाया और लिखने पढ़ने के स्थान पर जा बैठी। जब उसकी सासु जागी और सब काम हुआ हुआया पाया तो नौकरों से पूछा आज यह सारा घर झाड़ा बुहारा हुआ देख के मेरा मन बहुत प्रसन्न होता है, सच कहो तुमको तड़के जागने की प्रवृत्ति किसने सिखाई ?

भाग्यवती ने यह सुन के कहा, ये लोग दिन भर सोये रहते और रसोई बनाने में बहुत दिन चढा देते थे, इस कारण ये सब काम आज मैंने कर छोड़े थे। और आगे को भी मेरी इच्छा है कि नित्य मैं ही कर दिया करूँगी।

सासु ने कहा, ऐहै बहू! ऐसे छोटे कामों को तेरी बला हाथ लगाती है फिर ये निगोड़े नौकर दरमाहा काहे को पाते हैं! चलो तुमसे काम-काज कराना हमको अच्छा नहीं लगता। तुम तो भगवान् रक्खे अभी कोमलगात और नई बहू हो फिर क्या हम अभी से तुमको कुछ काम-काज करने देंगी?

भाग्यवती बोली, आय! नौकर-चाकरों का होना तो बड़े घरों की शोभा है। भगवान ने तुमको दिया है तुम आगे दिये जाती हो। पर हम भी तो आपकी दासी ही हैं। यदि अपने घर का काम कर लिया करेंगी तो हमारा क्या घट जायगा। फिर अपनी दुरानियों और ननद की ओर ताक के कहा कि हमारा बहू बेटियों का कोमल गात तो तब ही शोभा पायगा कि यदि घर का काम करेंगी नहीं तो यह गात किस काम आवेगा? नौकर-चाकर चाहे कितने ही हों पर काम-काज जैसा अपने हाथ से ठीक होता है वैसा दूसरे के हाथ से नहीं होता। मैं तो इसमें प्रसन्न हूँ कि बाहर का काम-काज तो नौकर-चाकर किया करें और भीतर का काम-काज हम सब आप मिल के कर लिया करें। इसमें मैं दो फल देखती हूँ, एक तो अपने हाथों में काम करने से शरीर अरोग रहता है और दूसरा अन्न वस्त्र भूषण बरतन आदि पदार्थ बिगड़ने नहीं पाते। जो लोग सदा निकम्मे बैठे रहते हैं न तो उनका कोई काम ही पूरा होता है और न उनके शरीर से आलस्य की ही निवृत्ति होती है कि जो सब व्याधियों का मूल है।

यह सुनके एक बहू ने कहा कि हमको तो तुम जो कुछ कह छोडो सो कर धरा करेंगी। दूसरी बोली हम तो पहिले ही से चाहती थी कि कोई कुछ काम बताए। फिर बेटी देवकी ने कहा, भावी ! अब तुम हम सब मे चतुर आ गई हो, जो कुछ कहोगी कर लिया करेंगी। हम क्या घर इन सबको देख के मैं भी ढीली हो रहा करती थी।

भाग्यवती ने उत्तर दिया कि, मेरा कहां मुंह जो मैं तुमको कोई काम बता सकूं, तुम तो मेरी बडी हो। हां मेरा धर्म यह ठीक है कि तुम सबके आगे मैं टहलन बनके रहूं और जो कुछ आज्ञा तुम मुझको दिया करो सो तन मन से मान लिया करूं।

यह सुनके सासु बोली, नहीं बहू ! बडाई कुछ अवस्था का नाम नही, बडा तो वही है कि जो बुद्धि मे बडा हो। सो क्या डर है तुम जिसको जो काम बता छोडो वह अवश्य कर लिया करेंगी।

भाग्यवती ने कहा, मेरा अपराध क्षमा हो, यदि आपकी इच्छा यही है तो लो मैं ही कह देती हूं। क्योंकि जब लों हम सब मिलके एक २ काम अपने ऊपर न उठा लेंगी घर की शोभा नहीं निकलेगी।

एक बहू को कहा, कि रसोई के समय आटा दाल घृत मिष्ठान्न लोन मसाला अचार मुरब्बा आदि जो सामग्री काम मे आती है उसकी रखवाली तुम किया करो। इन वस्तुओं मे से जो कुछ घटा हुआ देखो चार दिन पहिले कह दिया करो और जिसको इनमें से किसी वस्तु की इच्छा हो न तो वह आपसे निकाले और न कोई दूसरा हाथ लगावे जब दो तुम ही दो। और ईंधन तेल दाना घास आदिक की ताली भी आप ही के हाथ रहनी चाहिये और नौकर लोग भाडू पछोड के जब गेहूं पीसन-

ःहारियों को दे दे तो तुलवा के आटे का धर लेना इत्यादि सब काम आपके पास रहें।

फिर अपनी मँझली दुरानी से कहा कि घर में जितने बरतन और गहने कपड़ा दरी पलंग सन्दूक तम्बू आदि पदार्थ हैं इन सबको आज ही से कागज पर लिख रक्खो, इनमें से जो वस्तु टूट-फूट जावे वा खो जाय अथवा जो कुछ नया बनाना चाहो सो ऐया जी से कह दिया करो।

जब कहार बर्तन मांज चुके तो नित्य उन्हें गिन के धर लेवें, और जो किसी दूसरे के घर में कोई वस्तु अपने यहाँ की माँगी हुई जाए उसका नाम लिख लेना और फिर शुध करके मँगा लेना यह सब काम आपको करना चाहिए।

फिर ननद देवकी से कहा, बीबी जी ! आपने जो इनको देख के ढोली ही रहना कहा यह सच है पर आपकी तो हम लोगों पर दया ही बहुत है।

आप सदा अपनी कृपा रखो, काम-काज कर लेने को हम आपकी दासी ही बहुतेरी हैं। क्योंकि यहाँ काम-काज करने का केवल हम ही को अधिकार है कि जिन्होंने इस घर में अपना सारा आयु व्यतीत करना है।

फिर भाग्यवती ने हाथ जोड़ के कहा, यदि तुम सबकी आज्ञा हो तो यह सब काम मैं अपने ऊपर उठाती हूँ कि जो कुछ पदार्थ घर में आवे-जावे उसका लेखा-जोखा उसी रीति से लिख रक्खा करूँगी कि एक छदाम तक की भी भूल न होने पावे। और सौदा सुत लाने के समय नौकर लोग जो हमारे घर से हाथ रंग रहे हैं इनको भी मैं ही सीधे कर लूँगी।

सासु बोली, बहू ! और क्या चाहिए, यदि लेखे-जोखे की लिखा-पढ़ी तुम अपने हाथ में रखो तो हमारे बहुत काम सीधे

हो जाएंगे। देखो हजारों रुपये बाहर से घर में आते और घर-में कोई ऐसा बड़ा खर्च भी नहीं, पर हम को कुछ प्रतीत नहीं होता कि वह द्रव्य कहां चला जाता है। बेटी, तुम बालकों को क्या सुनाऊं पांच सौ रुपया तो सेठ रामजीलाल का हमारे ऊपर आता है और पचास साठ रुपया हमारा नन्दा कहार उचा-पत के हमारी ओर बतलाता है। लड़का मनोहर तो अपने पढ़ाने से अवसर नहीं पाता और उसके पिता लेखे-जोखे में सदा आलस्य किया करते हैं। रही मैं, सो घर की धूरी हूं बाहर निकल ही नहीं सकती, फिर कहो तो घर को सम्हाल कौन करे ? हां, भगवान ने तुम सरीखी चतुर बहू हमारे घर में भेज दी है, ईश्वर चाहे तो घर का रूप रंग कुछ अच्छा निकल आवेगा।

भाग्यवती ने कहा, ऐसा ! नन्दा कहार को कहो कि आज वह बाजार का सारा नामा लिख लावे और उसको यह भी आप कह दें कि जिन लोगों से वह सौदा सूत लाता रहा उनके भी लिख लाओ। जब यह छोटी पूंजी पहिले उतर जायेगी तो उस बड़ी के लिये भी उद्यम किया जायगा।

नन्दा भली-भांति जान गया था कि यह बहू बड़ी चतुर आई है और हम सबके काम बिगाड़ेगी। जब पण्डितानी ने कहा, लेखा लिख लाना तो सौ-सौ बहाने बनाने लगा। कभी कहता मा जी ! पहले तो जो कुछ बाजार का उठता था तुम बिना पूछे मुझ को दे दिया करती थीं, अब क्या मैं कोई और नन्दा हो गया हूं कि जिस पर भरोसा नहीं रहा ? हम तो सात पीढी से इसी घर का लोन खाते रहे कभी कोई छल बल नहीं किया, सो अच्छा यदि आपको कुछ भ्रम हो गया है तो लाओ साठ के पचास ही दे दो, अब की बार दस रुपये हम अपने पास से दे दिला देंगे। और आगे को बाजार का काम जिस से चाहो करा लिया करो।

यह सुनके भाग्यवती जान गई कि ठीक दाल में कुछ काला है। फिर अपनी सासु से बोली, ऐया ! इसको कहिये साठ के पचास देने की क्या बात, जो कुछ उठा हो कौडी दी जायगी, पर तुम उन लोगों का नाम तो बताओ कि जिनके यहाँ से उचावत उठती है।

नन्दा बोला, बहू ! खफा क्यों होती हो, लो तुम्हारा ही घर भर जाय मैं कुछ भी नहीं माँगता, यों कहि के बाहर चला गया और फिर कभी मुँह न दिखाया।[1]

भाग्यवती ने सासु से कहा, माँ जो ! देखो तुम्हारा नन्दा कैसा गन्दा था, सेंत में साठ रुपये उड़ाना चाहता था, यदि बाजार का कुछ ठीक देना होता तो वह क्या कभी छोड़ के जा सकता ?

सासु बोली, ऐहै ! यह लोग तो सदा हमको यों ही लूटते रहे हैं। तुम्हारा भला हो कि इस को घर से निकाला। मुझे निश्चय है कि वह पाँच सौ रुपये भी हमारे सिर पर झूठ-मूठ ही ठहराही ठहरा रक्खे होंगे।

भाग्यवती ने पूछा आप बतायें तो सही कि वे पाँच सौ रुपये आपने काहे में उठाये थे। सेठ रामजीलाल से कोई सौदा मँगाया था, उधारे लिये थे ?

सासु बोली, बेटी ! इतनी तो भगवान की दया है कि आज लों किसी से उधार नहीं उठाने दिया। सौदा सूत तो रामजीलाल से मैंने कुछ नहीं मँगाया पर यह रुपये हमारी भूल से हमारे सिर हो गये हैं। बेटी वह सेठ बड़ा भला मानस है कि कभी

---

१. इस पृष्ठ का सारा प्रसंग छापे की भूल से रह गया था, इस लिए पीछे से लगाया है, पाठक क्षमा करें। इसको ३२ पृष्ठ के आगे पढ़ें।

हमारे घर पर मांगने नहीं आया और न कभी किसी हमारे नौकर चाकर को ही कुछ रोक-टोक करता है। मैं आठ आना गिनी के नग सदा तीस रुपये वर्ष पीछे इस सन्तलाल मिश्र के हाथ उसकी हाट पर भेज दिया करती हूं। वह चुपके से लिया करता है कभी किसी दूसरे को हमारे घर का लेन-देन नहीं सुनाता। यही यह मिस्सर बीस वर्ष से हमारे घर में रसोई बनाता और बड़ा अच्छा नौकर है यह इसी की दया है कि इस को कभी हम ला नहीं आने दिया, नहीं तो क्या जाने वह सेठ हमको कैसा तंग करता।

भाग्यवती ने पूछा, "ऐया! वह कौन सी भूल आप से हुई कि जिससे पांच सौ रुपया आप के सिर हो गया?"

सासु बोली आज छठा वर्ष हुआ मनोहर के बाप जयपुर के राजा ने बुलाये थे वहां से जा छः सात महीने तक कुछ खरच घर में न भेजा इस कारण मैंने सोने के कड़ों की एक जोड़ी बेचन के लिये इस सन्तलाल मिस्सर के हाथ बाजार में भेजी। जब यह वे कड़े लेकर बाजार में पहुँचा तो किसी ने कहा, ये कड़े तुम ने कहां से लिये, यह तो मेरे यहां से चुराये गये थे, इस ब्राह्मण का भला हो कि जिस ने अपने ऊपर कई भांति की ताड़ना सहारी, पर हमारे यहां का नाम न बताया, नहीं तो क्या जाने मुझ बुढ़िया का चूंडा किस-किस कचहरी में खिचा फिरता। बेटी! यह कहना है कि अन्त को वे कड़े तो सरकार में जब्त हो गये, जिसके वे चुराये गये थे उसको इस मिस्सर ने सेठ रामजीलाल से पांच सौ रुपये मोल के दिलवा कर बड़ी कठिनता से पैंडा छुड़ाया। सो ये वे रुपये तब ही से हमारे सिर चले आते हैं।

भाग्यवती को ये अनमेल सी बातें सुनके कुछ भ्रम तो हुआ

पर फिर बोली, मा जो आपकी बला कचहरी में भेज के कह दिया होता कि कड़े हमारे पास अमुक स्थान से आए हुए हैं, फिर इसमें मुझे एक यह संशय होता है कि जिस चोरी का मालिक पास हो वह तो उसी को दे दी जाया करती है फिर यह व्यवहार कैसे हुआ कि वे कड़े सरकार में जबत हो गये और मालिक को मोल मिश्र से दिलाया गया ?

सासु ने कहा, बेटी मैं ये कानून की बातें क्या जानूँ ? मुझे तो जो कुछ मिस्सर ने बताया सो ही सच मान लिया और यह भी मुझे इसी ने कहा था कि किसी भाई बन्धु के पास इस बात का नाम न लेना क्योंकि शरीक लोग बैर से बात को बढ़ा दिया करते है। बड़े दोनों लड़के तो उन दिनों में बाप के साथ ही गये हुए थे और यह छोटा मनोहर उस समय लड़का था। वह ! मैंने तो आज तक उसके बाप को भी यह बात नहीं विताई और न उस भगवान के प्यारे ने कभी वे कड़े हट के पूछे हैं कि कहाँ हैं।

भाग्यवती उस समय तो चुप ही रही, पर दूसरे दिन अपने पड़ौस में की एक मालन को बुला के उससे कहा कि आज तुम हमारा एक काम कर दो। सेठ रामजीलाल की हाट पर जाकर यह प्रतीत कर आओ कि उसका हमारी गली में भी किसी से लेन-देन है वा नहीं। मालन ने आके उत्तर दिया कि वह वह तो यों कहता है कि इस गली में कभी हमारे किसी बड़े का लेन-देन भी हमारी वही में नहीं लिखा।

भाग्यवती यह सुनके चकित हुई और अपने पास पढ़ने वाली एक लड़की को बुला के कहा, आज तुमने हमारी ओर से अपने बाप से कहना कि, भाग्यवती कहती है कि सन् अठावन को अप्रैल के महीने जो सन्तलाल ब्राह्मण के कड़ो का मुकद्दमा

सरकार में हुआ था उसकी नकल हम को हासल कर दें। उस लड़की ने पूछा, क्या पण्डितानी जी ! किसी के मुकद्दमे की नकल कोई दूसरा मनुष्य भी ले सका करता है ?

भाग्यवती ने कहा क्यों नहीं ! सरकार अंग्रेजी मे यह तो अच्छाई है कि प्रजा को किसी भांति की रोक-टोक नहीं।

लड़की बोली, पण्डितानी जी ! आप सब व्यवहारों को जानती हो, जगत् की कोई बात भी आप से छिपी हुई नहीं। मुझे निश्चय है कि काशी भर मे आप के समान स्त्री तो कोई नहीं होएगी।

भाग्यवती ने कहा, नहीं यह तो सच नहीं। पर जो बातें आवश्यक हैं उनको मैंने थोड़ा बहुत जान रखा हुआ है। यह बात बहुत आवश्यक है कि प्राणी सरकारी कानून को भी थोड़ा बहुत जरूर जान छोड़े। देखो बहुत से मनुष्य और स्त्रियाँ जो सरकारी कानून से अनजान हैं कचहरी दरबार का नाम सुन के ही काँपने लग जाते हैं। और जब कभी उनको किसी हाकिम के सामने जाना पड़ता है तो डर के मारे पहिले ही हाथ-पाँव ढीले करके अपना काम बिगाड़ लेते हैं, सो योग्य है कि तुम भी मुझ से कोई कानून की पोथी पढ़ छोड़ो।

लड़की बोली, कानून की पोथी तो अंग्रेजी वा फारसी जबान मे होगी कि जो मुझ को आती नहीं ?

भाग्यवती ने कहा, नहीं ! हिन्दी भाषा और नागरी अक्षरों मे भी बहुत पोथियाँ छप गई हैं।

जब वह लड़की घर को गई, उसके तीसरे दिन आके बोली, मेरा बाप कहता है कि मैंने सरकार मे सवाल दिया था, वहाँ से उत्तर मिला कि पाँच छः वर्ष से इस भाँति का मुकद्दमा

सरकार में कोई दायर नहीं हुआ कि जिस में सन्तलाल ब्राह्मण के कड़ों की वात हो।

जव भाग्यवती ने अच्छी भाँति से जान लिया कि हुआ हवाया कुछ भी नहीं, यह सारी सन्तलाल की नटखटी है, तो चुपके से उसकी लड़की से जो उसके पास पढ़ा करती थी, कहा, वीवी तुम्हारे घर में जो एक जोड़ी सोने के कड़ों की है किसी समय मुझको दिखाना क्योंकि मैं भी उसी भाँति के बनवाना चाहती हूँ। पर देखना, मेरे मा और बाप को यह बात विदित न होने पावे क्योंकि यदि वे मेरे किसी सम्बन्धी के पास बात कर बैठेंगे तो फिर मेरा काम बिगड़ जायगा। भाग्यवती ने अपनी सासु से उन कड़ों का तोल मोल तो सुन ही रक्खा था, जब कड़े ले आई तो पहिचान के डिब्बे में घर लिये।

फिर एक दिन एकान्त में बैठा के उस सन्तलाल ब्राह्मण को कहा, मिश्र जी! मुझे इस समय कुछ काम बन गया है; यदि तुम कहीं से मुझे १८० रुपये उधारे ला दो, तो मै शीघ्र ही ब्याज समेत उतार दूंगी। यह सुन के सन्तलाल तुरन्त रुपये ले आया और भाग्यवती को पकड़ा दिये।

दूसरे तीसरे दिन भाग्यवती ने सन्तलाल के सामने अपनी सासु से कहा, ऐथा! कल तुम्हारे बेटा पूछते थे कि हमारे घर में जो एक जोड़ी सोने के कड़ों की होती थी वह अब पाँच छः वर्ष से कहीं देखी नहीं जाती सो बताओ तो वह कहाँ है?

इस बात को सुन के सासु तो कुछ चुपकी सी रही, पर बात के टालने के लिये सन्तलाल बीच ही में बोला, घर में ईन्धन नहीं रहा कहाँ से मंगाया जायगा?

जब भाग्यवती ने इसका कुछ उत्तर न दिया और अपनी सासु से फिर भी वही बात पूछी, तो सन्तलाल ने कहा, बहू जी

इस समय इनका मन किसी और बात मे लगा हुआ दिखाई देता है। तुम कड़ों की बात फिर कभी सोचते में पूछ लेना।

भाग्यवती ने कहा, अच्छा फिर सही, पर मिश्र जी तुम आज सेठ रामजीलाल को तो हमारे पास बुलाओ और उसे यह भी कहना कि वह अपनी वही भी साथ लावे कि जिस पर हमारे यहाँ का लेन-देन लिखा है।

यह बात सुनते ही मिश्र जी चकराये और आगा-पीछा ताकने लगे। जब कुछ उत्तर न बन पड़ा तो बोला, क्या सेठ तुम से कभी कुछ माँगने आया है ? उसका लेन-देन तो हमारे से है सो हम आप ही उससे समझ लेंगे।

भाग्यवती ने कहा अच्छा ! फिर आप ही बताइये कि जिस ने वे कड़े चोरी के बताये थे वह मनुष्य कहाँ का था। और जिस फिरंगी ने तुमसे उन कड़ों को छीन के जब्त कर लिया था उस का क्या नाम था ?

मन्नलाल ने बुरा सा मुख बना के कहा, क्या वह मैंने झूठ-मूठ ही कह दिया था कि वे कड़े चोरी के निकले ?

भाग्यवती बोली, नहीं दादा ! तुम इतने बड़े बूढ़े और पुराने नौकर होकर जिस घर का लोन खाया उसकी बुराई क्यों करने लगे थे पर मैंने भी तो इतना ही कहा है कि जाओ सेठ रामजीलाल को बुला लाओ।

मन्नलाल बोला, बहू ! बहुत बातों से क्या फल ? पर जाना गया कि तुम हमको इस घर में टिकने न दोगी। सो अच्छा लो, अपना घर सम्हालो, हमने तो नौकरी करनी है, भगवान हमारा आन मेर आगा किसी और ठाई बना देगा।

भाग्यवती बड़ी क्षमा और धैर्य से युक्त थी। उसने देखा कि हमारे कड़े आ गये और जो १८० रुपये छः वर्ष में आठ आना

मितों के लेखे यह मेरी सासु से सेठ का नाम ले के ले गया है वे भी मैंने युक्ति से मँगा लिये हैं। अब इस बूढ़े ब्राह्मण को दुःखी करने में क्या लाभ होगा। यह बात सोच के वे कड़े अपनी सासु के आगे रक्खे और कहा लो, पहिचान लो इस मिश्र की बेटी के हाथ मैंने उस फिरंगी के यहाँ से मँगा लिये हैं कि जिसने जब्त कर लिये थे और जो रुपये मिश्र जी ब्याज के नाम से ले जाते रहे वे भी उस सेठ ने इन्हीं के हाथ परसों हटा भेजे हैं। आगे आपकी इच्छा, इस विश्वासघाती मिश्र को रक्खो चाहे न रक्खो।

पण्डितानी ने जब यह सारा चरित्र समझ लिया तो उस ब्राह्मण को थाने पहुँचाना चाहा, पर भाग्यवती ने कहा, मा जी, यदि इस कंगाल को कुछ दंड दिला दोगे तो आपको क्या लाभ, इसका तो यही दण्ड है कि यह आज से हमारे घर न घुसा करे।

इस प्रकार के कई व्यवहार देख के जो अब घर में भाग्यवती का अत्यन्त आदर-सत्कार होने लगा तो दूसरी बहुओं के मन में कुछ ईर्षा खड़ी हो गई। कभी तो ननद को कह देतीं कि भाग्यवती तुम्हारा घर में रहना नहीं सहारती, कभी अपने स्वामियों से कहतीं कि अब यह भाग्यवती बड़ी अहंकारन हो गई है।

कल इसने हमको यह बात कही कि मैंने तो इस घर के सैंकड़ों रुपये बचाए, तुम ने आज लों क्या बनाया है? कभी सासु से कहतीं कि, ऐय्या! तुम जो भाग्यवती को हम से अधिक प्यार करती हो, क्या वह आकाश से उतरी है? कभी अपने सुसरे को कहला भेजती कि, बावा जी! आप जो भाग्यवती को हम सब से अच्छी समझते हो क्या आपको दोनों आँख से समान ही नहीं देखना चाहिए! कुछ दिन तो इनकी बात पर किसी को

कुछ निश्चय न हुआ पर नित्य की बाना मरी बुरी होती है। धीरे धीरे सब के मन में भाग्यवती पर कुछ भ्रम खड़े हो गये और फिर सब ने यह भी मना पराया कि जैसे बन इस घर में से कुछ अपना काम बना ले। पहिले तो ननद देवकी के मन मे आया कि मैं जो इस घर के काम-काज मे टूट-टूट मरती हूं पीछे से ये लोग मुझे क्या दे देंगे सो योग्य है कि जो कुछ हाथ लगे अपना अलग करती जाऊँ। अब वह तो कुछ अलग कर ही रही थी, फिर भाग्यवती के जो दोनों जेठ थे वे अपनी लुगाइयों के कहने से अपना गठडी अलग बांधने लग गये। जो गहना कपड़ा बरतन भाण्डा जिसके हाथ लगता वह न्यारा कर लेता था। और जिस प्रेम भाव से भाग्यवती को पहिले देखते थे अब वह दृष्टि सब की पलट गई। और यदि किसी दूसरे से भी भाग्यवती की बात करते थे तो टेढी तिरछी ही निकलती थी। लोगों का यह स्वभाव है कि एक की चार बना के सुनाया करते हैं। जब भाग्यवती नित्य लोगों से ऐसी बुरी बातें सुनने लगी कि आज तुम्हारी ननद यो बात कहती और जेठानियाँ यो कोस रही थी और सासु तुम पर यह दोष लगा रही थी तो भाग्यवती के मन मे कुछ चिन्ता भी तो होती पर फिर जो उसको अपना कोई अपराध दिखाई न देता तो कहती, अच्छा ! यदि हमारा मन शुद्ध है तो किसी का कैसे अशुद्ध हो सकेगा ? मैं तो सबकी दासी हूं, जो उनकी इच्छा सो समझ रखें।

जो कुछ भाग्यवती से सुना लोगों ने यथार्थ कितना ही क्यों न था। वे तो चाहते ही थे कि इनके घर में भी फूट पड़ी हुई दिखाई दे। इधर उधर की बातें मिला के घर वालों का मन भाग्यवती की ओर से और भी पत्थर बना दिया। घर वाले लोग पहिले तो अपने ही मन मे भाग्यवती पर क्रुद्ध रहते थे, जब

लोगों से सुना कि वह भी कुछ बुरा-भला कहती है तो सारे शत्रु बन बैठे। और उसको वृथा दुःख देने लग गये।

एक दिन जो भाग्यवती की माँ ने किसी से सुना कि वह ससुराल में कुछ दुःखी रहती है और घर के लोग उससे विरोध रखते हैं तो बड़ी चिन्ता हुई। भोर होते ही एक बुढ़िया को भाग्यवती का समाचार पूछने भेजा। जब भाग्यवती ने सारा वृत्तान्त सुना कि किसी ने वृथा ही मेरी माँ को जा क सताया है तो बड़े धैर्य से उस बुढ़िया को बोली, दादी ! मेरी माँ को राम-राम कहना और समझा देना कि मैं सर्व प्रकार से घर में प्रसन्न हूँ। मुझ से कोई विरोध नहीं रखता, सब मुझे प्यार करते और प्रसन्न रखते हैं, मैं किसी प्रकार से दुःखी नहो, तुम किसी भाँति की चिन्ता मत करो।

इधर तो वह बुढ़िया पीछे को हटी और उधर भाग्यवती की दोनों जेठानियों ने ननद देवकी को बुला के कहा, बीबी जी ! यह भाग्यवती न तो तुम को देख के प्रसन्न होती है और न घर में किसी और से इसकी बनती है, कोई ऐसी युक्ति निकालो कि जिस से पण्डितजी और पण्डितानी इसको मनोहर समेत अलग कर दें। देखो हमने कैसा सुख पाया था, जन्म भर कभी तिनका नहीं तोड़ा पर जब से यह घर में आई सब को किसी न किसी धधे में लगा छोड़ती है। आप तो किसी गंवार की बेटी है कि जो काम-काज करती हुई थकती नहीं, पर हम तो भगवान रखे बड़े बाप की बेटी हैं। जैसा माँ बाप के घर में फूल के नाई रही थीं वैसे ही यहाँ रहना चाहती हैं, हमें काम-काज से क्या काम। जब यह पापिन अलग हो जायगी तो हम सब उसी भाँति अपनी नींद से सोया करेंगी कि जैसे इसके आने से पहले थीं।

देवकी ने कहा, अच्छा ! तुम सब मेरी सहायता में रहो तो मैं शीघ्र ही अपने बाप को इसका वैरी बना सकती हूँ। यह

बहू के उसी दिन अपनी माँ से रोती २ बोली कि किसी ने मेरी गठडी में से एक रेशमी साडी निकाल ली है। माँ ने जब दोनों बडी बहुओं से पूछा तो उन्होंने कहा, कि एक दिन भाग्यवती की पढ़ने वाली लड़कियाँ बीबी की कोठडी में घुसी हुई तो हम ने ठीक देखी थी पर यह हम नहीं जानती कि साडी कौन ले गया। भाग्यवती से तो सासु का मन कई दिन से पहिले ही इन्होंने खट्टा कर छोडा था अब उस से क्या पूछती पर देवकी को इतना कहा कि बीबी रोवे मत, तुझे साडी और मगा दूँगी।

इन बातों का समाचार जब पण्डित जगदीश जी के कानों तक पहुँचा तो एक दिन अपनी स्त्री से पूछा, इसका क्या कारण है कि हमारे घर में अब नित्य का क्लेश देखा जाता है कि जो आज लों कभी भी नहीं हुआ था? फिर हम यह भी देखते हैं कि अब घर में न कोई अच्छा गहना ही देख पडता है और न कोई कपड़ा फिर मैंने सुना है कि कल लड़की की साडी गठडी में से किसी ने निकाल ली है सो बताओ तो सही इन बातों का कारण क्या है। पण्डितजी की इन बातों को सुनके और तो अभी किसी ने कुछ उत्तर नहीं दिया था पर देवकी ने आगे बढ के कहा यदि बुरा न मानो तो मैं बता देती हूँ।

जब पिता ने कहा बता, तो देवकी ने कहा कि जिस भाग्यवती ने पहिले इस घर को सुधारना चाहा था अब वही इसके बिगाडने पर कटि बाँध बैठी है। नित्य उसकी मा की भेजी हुई लुगाइयाँ उसके पास आती हैं, यह जो गहना कपडा बरतन अच्छा देखती हैं तुरन्त उठा के अपनी मा के यहाँ भेज देती है। अभी तो चार दिन नहीं हुए कि एक बुढिया उस गली में की आई हुई थी।

नित्य को काना भरी के कारण मन तो पण्डित जी का भी भाग्यवती की ओर से कुछ खिचा ही रहता था,बेटी की यह बात

सुन के बोला कि पीछे तो हुआ सो हुआ, यदि आगे को कोई वहाँ का आये अथवा यह कुछ अपना सन्देश पहुँचाये तो मुझे बताना।

देवकी ने उसके तीसरे दिन अपनी बड़ी भावजों के विचार से एक भावज के गले का हार लेकर उस साड़ी के पल्ले बाँधा कि जो खो गई प्रगट की थी। फिर वह सब कुछ एक थैली में बन्द करके एक मालन के पास ले गई कि जो इनके पड़ौस में बसती थी और कहा, भाभी भाग्यवती कहती है कि यह एक औषध की थैली मेरी मा को दे आओ। और यह एक चिट्ठी दी है कि जिस में इस थैली में के औषध खाने बरतने की विधि लिखी है। जब मालन ने यह थैली रख ली तो देवकी तुरन्त अपने बाप के पास पहुँच के बोली, आज भाग्यवती ने फिर एक थैली में कुछ भर के मालन के हाथ अपनी मा को भेजा है। यदि मालन इधर से निकले तो छीन के देख लेना कि उस में क्या भरा है।

जब मालन वह थैली लेकर भाग्यवती की मा की ओर चली तो पण्डित जगदीश जी ने उसे बुला के थैली लेकर छीन ली, और उस चिट्ठी को खोल के पढ़ा तो यह वृत्तांत लिखा पाया :—

सिद्धि श्री सर्वगुण सम्पन्न माता जी के प्रति भाग्यवती की राम-राम बांचना। एक साड़ी रेशमी के पल्ले मैंने एक हार भेजा है सो तुमने सम्भाल के रख लेना। और सब आनन्द है।

जब पण्डित जगदीश जी ने यह वृत्तांत पढ़ा और उस थैली को खोलके देखा तो आग भड़क उठी और कहा कि उस दुष्टा भाग्यवती को अभी पकड़ के घर से बाहर निकाल दो। सच है कि पढ़ी हुई स्त्री खोटी होती है। हाय उसने हमारा घर लूट के बाप के यहाँ पहुँचा दिया। हम मनोहरलाल का विवाह और

कर देंगे पर इस दुष्टा को घर में नहीं रखना। जैसे पण्डित जी बोलते थे उसी भांति पण्डितानी और दोनों बेटे और बहूएं और देवकी भाग्यवती को बुरा भला कहने लग गये। तब तो सारी गली में हल्ला मच गया। जब किसी का समय खोटा आता है तो उसके साथ सारा जगत खोटाई करने लग जाता है। जो कोई सुनता भाग्यवती की विद्या बुद्धि पर चकित होना और कहना भाई, क्या हुआ जो उसने थोड़ी सी विद्या पढ ली थी, पर अन्त को तो स्त्री ही थी न।

जब भाग्यवती ने यह सारा वृत्तांत सुना तो बड़ी दुखी हुई और सोचने लगी कि यह किसी ने क्या आश्चर्य किया कि झूठा कलंक मेरे सिर पर खड़ा कर दिया। हाय! मुझ को गली के लोग क्या कहते होंगे और मेरे माँ बाप यह बात सुन के मुझे क्या कहेंगे! और मैं उन्हें मुंह कैसे दिखाऊँगी? हाय! मेरे भाई लालमणि यह बात सुन के लोगों को क्या उत्तर देंगे? और काशीराज की सभा में मेरी क्या उपमा होगी कि जहाँ से मैंने बड़ा नाम पाया था। हाय! इस बनावट को कौन झूठ मानेगा कि जो मेरे शत्रुओं ने झूठी ही बना के खड़ी कर दी! हाय! जो लोग मेरी स्तुति किया करते थे वे मेरे मुख पर थूक कर चलेंगे? हाय! मैंने पहले दिन ही अपनी सासु और सुसर को बात क्यों न बता दी कि मेरी जेठानियाँ और नन्द मुझ से ईर्षा करती हैं? यदि मैं आज इनका वैर अपनी सासु सुसरे को बताऊँ तो कब सच मानेंगे? कभी चित्त में आता कि चुपके से बाप के पास चली जाऊँ। कभी सोचती कूए में गिर के प्राण खो दूँ। कभी कहती अब जीने का क्या धर्म है, गंगा में डूब मरूँ। हाय! जिस घर और नगर में इतना मान और यश पाया उस में अब लोग मुझको बुरी कहेंगे।

भाग्यवती इस भांति की बातें विचारती हुई सोच के समुद्र

में वही जाती थी कि इतने में उसको एक गीता का श्लोक स्मृत हुआ :—

दुःखेषु, नौद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतराग भयक्रोधः स्थितधोर्मुनिरुच्यते ।।१।।

(अर्थ इसका यह है कि कृष्ण जी कहते हैं कि जो दुःख में दुःखी नहीं होता और सुख में बहुत इच्छा नहीं रखता और जिसका राग, भय, क्रोध दूर हो गया है वह स्थिर बुद्धिवाला मुनि कहाता है ।)

इस श्लोक के स्मरण होते ही भाग्यवती के सब शोक दूर हो गये और तुरन्त सावधान होके मन में कहने लगी कि मैं बड़ी मूर्ख थी कि थोड़ी सी विपत देख के व्याकुल हो गई । हा ! हा ! मुझे विद्या पढ़ने का क्या फल हुआ ? मैं तो अज्ञानियों के समान शोक समुद्र में बह चली थी । हाय ! मैंने क्यों न सोचा कि दिन सदा एक नहीं रहते; कभी सुख कभी दुःख यह तो सदा से रीति चली आती है, फिर उदास होने में क्या कारण ? मुझे तो यह विचारना योग्य था कि जैसे सुख का समय दूर होकर यह दुःख का समय आ गया है वैसे यह भी सदा नहीं रहेगा, इसको दूर करके फिर सुख शीघ्र ही आ जायगा । बुद्धिमान कहो है कि जो विपत्काल में धैर्य को हाथ से न छोड़े । हाय ! यदि युद्ध में ही शस्त्र काम न आये तो फिर कब आवेंगे ? यदि विपत्काल में ज्ञान विचार से सुख न दिया तो फिर कब काम आवेगे ? अब ता यह योग्य है कि कोई ऐसा उपाय करूं कि जिस से सासु और सुसरे के मन से भ्रांति दूर होकर मुझे निरपराध जानने लग जायं ।

सोचते २ पहिले तो यह बात निकाली कि अपने भर्ता द्वारा पण्डित जी को देवकी और दोनों जेठानियों के विरोध का कारण

जनाऊं, पर फिर यह बात सोची कि यह भी तो इन ही का बेटा है, जब मा, बाप, भाई, बहिन और भावजो के मेरे विरुद्ध कहते सुनेगा तो मुझ अकेली की बात को कब सच मानने लगा है। भाग्यवती यह बात मन मे विचार ही रही थी कि इतने मे एक और सकल्प चित म उठा। वह यह था चाहे आज लों कभी समागम तो नहीं पड़ा परन्तु आज अपने सुसरे को एक चिट्ठी लिख के अपने मन की सच्चाई दिखाऊं। उसी समय लेखनी पकड के अपने सुसरे को बडी दीनता के साथ यह चिट्ठी लिखी।

स्वस्ति श्री परम करुणा निधान, वेद विद्या विशारद अधिक सुज्ञान, धर्म प्रचारक, परकष्ट निवारक, दया-समुद्र, तुम ही विष्णु-स्वरूप और तुम ही मेरे ब्रह्मा और रुद्र। मैं भाग्यवती मूढमति चरण सरोज पर सिर धरती हूं, कान धर कर सुनिये एक विनती करती हूं। मैं दीन छीन परम मलीन इस घर की दास हूं, कभी कोई अपराध नहीं किया पर आज बहुत उदास हूं। आप यह तो सोचते कि जिसने मुझपर यह कलंक लगाया वह मेरा शत्रु है या मित्र? मैंने कभी चोरी नहीं की, मेरा मन पवित्र है, यह सब उसी का चरित्र है। यदि आप मन दे के इस बात को विचारो सच और झूठ को निवारो तो मैं सब कुछ आपको बता सकती हूं, हार और साडी का लेना थैली मैं यह सारा भेद समझा सकता हूं। आप जानते हैं, ईर्षा के औगुणो को पहिचानते हैं, जिस के मन मे यह आता है, कई वर्ष के प्रेम मैत्री को एक क्षण में दूर बहाती है। मुझको जो घर के सब लोग कुछ अच्छी २ कहने लग गये थे, बीबी और बहुएं और मेरे दोनो जेठ ईर्षा में रहने और वृथा अपनी छाती को दहने लग गये थे। इसी कारण उस सब ने मिलकर यह बात बनाई है, मेरा अपराध कुछ नहीं झूठ-मूठ ही मुझ पर चोरी जगाई है। यदि आप इस बात का सच

झूठ विचार लो, सच्चे को सच्चा और झूठे को झूठा मन में धार लो, तो बहुत अच्छी बात है, नहीं तो, विनाश काले विपरीत बुद्धि, यह बात शास्त्र में विख्यात है। मेरा क्या है मैं तो घड़े की मछली हूँ, रक्खोगे रहूँगी निकाल दोगे चली जाऊँगी। पर एक स्मृत रखना जहाँ जाऊँगी आप ही के यहाँ की बहू कहलाऊँगी। आगे आपकी इच्छा भला हो सो कीजिये, पीछे से पछताओगे। अपनी दासी समझ के अभय दान दीजिये।

इस चिट्ठी के पढ़ते ही पण्डित जी के मन में तो बड़ी दया आई परन्तु पास बैठने वाले कब चैन लेने देते थे। उसी समय सबके सब बोले देखिये उसकी नटखट ! एक चोर दूसरी चतुर बन के दिखाती है। आप तो भली बनी और हम सबको बुरे ठहराती है। अच्छा महाराज आपकी इच्छा हो सो कीजिये पर यदि वह घर में रहेगी तो हमारा ठिकाना नहीं, हम सब कहीं, और स्थान में निवास करेंगे।

पण्डित जी ने यह सारा वृत्तान्त जब मनोहरलाल को सुनाया तो वह तुरन्त भाग्यवती का वैरी बन गया। तब तो सब ने मिल कर यह बात विचारी कि हुआ सो हुआ पर अब उसका यही दण्ड है कि वह मनोहरलाल के साथ अलग जा रहे और हम सब अलग रहा करें। यह सुनके मनोहरलाल ने कहा कि जब आप लोग उसको बुरी समझते हैं तो मैं उसको अपने संग नहीं रख सकता, जहां उसकी इच्छा हो अकेली रहा करे।

उसकी ये बातें सुनके सब ने भाग्यवती की चिट्ठी के उत्तर में यह बात लिखी कि तुम्हारे बीच रहने में हमारे घर में फूट पड़ती है सो अब योग्य है कि तुम दूसरी गली में हमारे बाहर वाले स्थान में हो बैठो। उसने यह उत्तर पढ़ के सोचा कि अच्छा ईश्वर की भावी यों ही है तो मेरी क्या आधीन ?

अब भाग्यवती ने सारे परिवार से अलग होके जैसे अपने बुद्धि बल से फिर सब पदार्थ इकट्ठे किये और आपन से समृत् में पहुँची वह सारा वृत्तांत सुनने के योग्य है। जब भाग्यवती को अलग किया तो दोना बहुओं को तो आधा २ घर बाट दिया और पण्डित जगदीश जी और पण्डितानी, मनोहरलाल समेत बेटी देवकी को साथ लेकर अलग रहने लगे। भाग्यवती के पास उस समय जल पीने के लिए भी कोई बरतन नही था। केवल लोहे का एक तसला किसी पडोसन के यहाँ माँग के अपने घर मे ले आई। चाहे जानती थी कि यदि मैं अपने बाप के यहाँ अपनी विपत्ति की बात लिख भेजूँ तो मुझे सब कुछ वहाँ से आ सकता है परन्तु उसने इस बात को अच्छा समझा कि मनुष्य को किसी के अर्थी होना श्रेष्ठ नही। सिंह और शूरवीर वही है कि जो किसी दूसरे की मार से अपना पेट न भरे।

अब दूसरे दिन भाग्यवती ने मन मे विचार किया कि चुप-चाप बैठने से निर्वाह नही होगा, कुछ उद्यम और यत्न करना मनुष्य का धर्म है। पर क्या करूँ, मेरे पास न तो कोई पैसा है कि जिसकी सहायता से कुछ व्यवहार फैलाऊँ और न कोई हथियार है कि जिस से कुछ उद्यम करूँ, चाहे भाग्यवती विद्या और गुण तो कई प्रकार के जानती थी पर कोई उद्यम और पुरुषार्थ का साधन पास न होने के कारण घडी दो एक सोच मे पडी। इतने मे जो कुछ मन में उठा तो वह लोहे का तसला एक पडोसन के यहाँ गहने रख के पाँच आने के पैसे ले आई। घर मे आते ही दो आने का तो सूत मँगाया और एक आने मे चार सूए। और दो आने मे भोजन मँगवा के पेट भरा। हाथ ऐसे शीघ्र चलता था कि साँझ लों एक जोडी जुराब की ऐसी बूटे बेल से सजाई कि उसी दिन आठ आने को बेच दी। कुछ दिन तो यही चाल रही कि दो आने मे भोजन और दो आने का सूत

ला के चार आने के पैसे बचा तो गई। दो एक दिन के बाद वह तसला छुड़ा के उसी एक बरतन से जैसे रसोई का काम चलाने लगी वह बात भी सुनने के योग्य है।

पहिले तो तसले में पानी लाके कपड़े पर आटा मांड लेना और फिर तसले में दाल बना लेना। फिर दाल को दौनों में डाल के उसी तसले से तवे का काम चलाना और फिर रोटी पोकर उसी तसले में जल भर पीना। इस बिपत से दिन काट कर, जब दूसरे महीने में जुरावों की कमाई में से चौदह पंद्रह रुपये पास हो गये तो पांच रुपये में रसोई के बरतन मँगाये और वह तसला जिस से लिया था उसे फेर दिया। फिर दस रुपये में एक-एक रेशमी चादर मंगा के उस पर सूजनी काढ़ने का आरम्भ किया। उस पर ऐसी सुन्दर सिलाई की कि सूई के काम में फूल-पत्ती बेल बूटा से अधिक इस भाँति-भाँति के दोहे भी लिख दिये :—

## दोहा

विद्या बन्धु विदेश में, विद्या विपत सहाय।
जो नारी विद्यावती, सो कैसे दुःख पाय॥
राज भाग सुख रूप धन, विपत समय तज जांह।
इक विद्या विपता समय, तजे न नर की बांह॥

जब वह सूजनी बाजार में आई तो सैकड़ों ग्राहक खड़े हो गये, कोई कहे मैं लूँगा कोई कहे मुझे दीजिए। अन्त को बीस रुपये मोग पड़े। इस भाँति की दो-तीन सूजनियाँ महीने में बेच के चार रुपये में भोजन चलाती और अब शेप रुपयों को इकट्ठा करने लगी। एक वर्ष में चार-पाँच सौ रुपया इकट्ठा करके कुछ थोड़ी-सी पृथ्वी मोल ले ली। अब पृथ्वी की कमाई में से तो वर्ष भर का अनाज पट्ठा चला आता और हाथों की कमाई

में म चार-पाच मो रुपये प्रत्येक वर्ष में पीछे पडने लगा। फिर गली म की लडकियो को पढाना लिखाना सिखा के उनके घर वालो को अपना सहायक बना लिया। जीभ में ईश्वर ने वह रस दिया था कि पशु और पक्षी भी कहना मानते थे। जो लडकियां पढने आती उन में कुछ पढाई तो लेती नही थी पर किसी से टोपी किसी से कोई रुमाल किसी से जोडी जुराब की और किसी से दस्तानो की एक आध जोडी नित्य बनवा अच्छे मोल को बेच डालती। उनको काम सिखाना और अपना दस बीस रुपये महीने का ठिकाना यह भी निकाल रखा था। अब तो ईश्वर की दया हो गई किसी वर्ष में दो तीन गहने और किसी म चार-पांच अच्छे कपडे और बरतन बना लेने लगी। कभी कोई पलग और कभी कोई सन्दूक, कभी कोई दरी, कभी तम्बू आदि पदार्थ जो बडे घरो की शोभा रूप होते हैं, हरेक वर्ष मे कुछ न कुछ अवश्य बना लेती थी। जब उसमें पांच-सात नौकर रखने का सामर्थ्य हो गया तो फिर एक गाये, अब दूध दही भी घर में ही होने लग गया और गोबर से ईंधन का काम बन्द हुआ। यदि कोई गाय भैस अच्छा कट्टा बच्छा देती तो खेती के काम में जोतती और जो दुबला-पतला देखती तो बेच के रुपये इकट्ठे कर लेती। सयम और यतन ऐसी वस्तु है कि थोडे ही दिनो मे भाग्यवती धनवती कहाने लग गई। जिसके पास धन होता है लोग बिना प्रयोजन उसके प्रेमी हो जाया करते हैं। अब भाग्यवती को कुछ तो विद्या का बल और कुछ शील सतोष का समर्थन, कुछ धन की बाहुल्यता इन सब पदार्थों ने निन्दक सब वन्दक और शत्रु सब मित्र बना दिए। सदा ईश्वर का धन्यवाद करती हुई आनन्द मगल से घर मे रहने लगी।

अब उसके घर के लोग भी चारो ओर से ये बातें सुनने लगे

कि, भाई सासु और ससुर ने तो भाग्यवती को घर से निकाल ही दिया था पर ईश्वर सब का पालन करता है। देखो उसने इनसे अलग होकर चौगुणा तो अपना घर बना लिया और काशी भर में नाम पाया, सो अलग रहा। भाई विद्या बड़ी अच्छी वस्तु है। इसके समान और कोई धन नहीं। कोई कहता देखो, जिस भाग्यवती को इन्होंने नंगी भूखी निर्धन निराश्रय करके घर से निकाल दिया था आज उसके यहाँ सैकड़ों कंगाल भोजन पा के निकलते हैं। और आज उसने सौ रुपया धर्मार्थ निकाल के पाठशाला में भेजा है कि यहाँ विदेशी विद्यार्थी विद्या पढ़ते हैं। आज उसने एक हवेली गहने रखी है और आज उसके घर में कंगाली के लिए धर्मार्थ औषधि बाँटने वाले दो वैद्य नौकर रक्खे गए हैं। इन बातों को सुन के सासु और सुसरे के मन में लज्जा तो आती, पर कुछ उत्तर नहीं दे सकते थे।

अब इनके यहाँ की सुनिए कि भाग्यवती को अलग करने के पीछे घर में क्या-क्या उपद्रव हुए। जब भाग्यवती को अलग किया तो थोड़े दिन पीछे पण्डित जगदीश जी को एक साधु मिले कि जिन्होंने इनसे कई दिन लो प्रेम बढ़ा के एक दिन पूछा, पण्डित जगदीश जी अब आप तो वृद्ध हो गए और बेटे सब अपने २ घरों में अलग हो रहे हैं, कुछ द्रव्य भी बटोर रक्खा है वा नहीं कि जो ऊपर की अवस्था में काम आवे ?

पण्डित जी बोले, बाबा जी ! कमाया तो बहुतेरा पर हम ब्राह्मण लोगों को इकट्ठा करना कब आ सकता है।

बाबा जी ने कहा, अच्छा अब हमारा तो आप के साथ प्रेम हो गया आप से कुछ छिपाना अच्छा नहीं, सो लाओ थोड़ा-सा पारा और संखिया तो मँगा दीजिए। भगवान चाहे तो सब दरिद्र दूर हो जाएँगे। जब पंडितजी ने पारा संखिया मँगा दिया तो बाबा

जी ने तुरन्त कुठाली में डाल कर पण्डित जी के हाथ से एक बूटी का रस उसके ऊपर गिरवादा। और ऊपर सोंधे पाड़े से धोंकने इसका के फूंक लगाने लगे तो बाबा जी ने कहा पण्डित जी! इस सब चांदी बन जायगी और इस युक्ति से नित्य दो तोले चांदी बना लिया कर और अब साधु चलता है। पण्डित जी ने युक्ति तो सारी सीख ही ली थी साधु के रहने की कुछ आवश्यकता न समझा। बाबा जी जब चले गये तो कुठाली में से दो तोले चांदी निकल पड़ी। अब तो पण्डित जी मन में बहुत प्रसन्न हुए और बोले धन्य ईश्वर परमात्मा है कि जिस ने हमको अमोघ धन प्रदान किया।

जब दूसरे दिन पण्डित जी तड़के ही सब कर्मों से पहले अंगीठा तपाया और कुठाली में तांबा मसाला डाल के फूंके लगाने लगे तो चाहे दस बीस बार वही बूटी डाल के बहुतेरा मन मारा चांदी देवता के दर्शन न हुए। अब तो धुन पड़ गई, नित्य चार चार का मंगाया तांबा आग में जलाना और सांझ को बुरा सा मुंह लेकर बैठ जाना, और कहना साधु जी की तो बड़ी दया हो गई थी पर न जाने क्या भेद रह जाता है? एक दिन पण्डित जी इसी सोच में बैठे थे कि सामने से वही साधू जाते हुए दिखाई दिया कि जो इनके लूटने का काज कर गये थे। पण्डित जी ने तुरन्त दौड़ के उन्हें जा रोका और चरणों पर सिर धर के बड़ी दीनता और प्रेम भाव से अपने घर में ले आये। चौबारे में तो बाबा जी का पलंग बिछ गया और तन मन से सेवा होने लगी। बाबा जी ने तो पांच चार बार फिर भी चांदी बना के दिखा दी पर जब पण्डित जी बनाते थे तो कुछ नहीं बनता था।

जब बाबा जी ने देखा कि अब यह पण्डित लालच में पूरा अन्धा हो गया है तो कहा, पण्डित जी! हमने तो रसायन के

बताने में कुछ पड़दा नहीं रखा पर क्या करें तुम्हारे भाग्य में इस अनन्त लाभ का प्राप्त होना नहीं लिखा। सो अच्छा हम तुम्हारे पांच सात वर्ष के निर्वाह के लिये कुछ पदार्थ अपने हाथ से ही बना देते हैं जब वह खालोगे तो फिर कभी देखा जायेगा। जाओ, आप को जितना कि मिल सके कुछ सोना हम को ला दो। हम वह सोना दुगना बना देंगे। पण्डित जी तुरन्त अपनी स्त्री का सारा गहिना उतार लाये और ला के बाबा जी को सम्भाल दिया। बाबा जी ने उन के सामने उस गहिने को एक बूटी के रस में लपेट के एक हांडी में भर दिया, और उनके हाथ से मुख बन्द कराके चूल्हे पर रखवा दी, और आग जलवाने लगे। कुछ काल के पीछे बाबा जी ने कहा पण्डित जी थोड़ा जल मंगाइये कि हाथ धो लूँ, पण्डित जी के घर में जल लाने वाले चाहे कई मनुष्य थे पर बाबा जी के रिझाने के लिये आप ही नंगे पाओं भागे गये। पण्डित जी का जाना और बाबा जी ने ऐसी फुर्ती की कि चूल्हे पर से वह हांडी उतार के वैसे ही रंग ढंग की एक और हांडी चूल्हे पर रख दी कि जिस में उतने ही तोल के कंकर भरे हुए थे। जब पण्डित जी जल लेकर आये तो कहा देखना हांडी गिर न पड़े इस को उठा के सीधे कर दो। पण्डित जी तो भोले भाले थे उनको हांडी पर कुछ भी भ्रम नहीं हुआ था पर बाबा जी युक्ति से उनको यह विश्वास बढ़ाया कि देख ले वैसे ही भारी है मैंने कुछ पीछे से निकाल नहीं लिया। चार घड़ी के पीछे बाबा जी तो गहने वाली हाँडी काँख में दबा के लोटा पकड़ दिशा फिरने चले गये और पण्डित जी चूल्हे की सेवा में रहे। जब साँझ लों बाबा जी लौट के न आए तो पण्डित जी ने हांडी को उतार के देखा। हांडी तो कंकरों से भरी हुई थी, देखते ही हाथ मलने लग गये और सिर पटक २ कहने लगे हाय ! मैं विद्यावान होकर धोखा खा गया। इनका विलाप सुन

कर शास्त्री मनोहरलाल जो इनका छोटा बेटा था कहने लगा कि जो विद्या और विचार से युक्त होकर चूक जाये उसका यही दण्ड है कि जो आप को मिला। क्या आपने भर्तृशतक नाम ग्रन्थ का श्लोक नहीं पढ़ा था कि —

उत्खात निधिशङ्कया क्षितितल ध्माता गिरेर्धातव ।
निस्तीर्ण सरितांपतिनृपतयो यत्नेन सन्तोषिता ॥
मन्त्राराधन तत्परेण मनसा नीता श्मशाने निशा ।
लब्धाकाण वराटिकाऽपि न मया तृष्णेऽधुना मुञ्च माम् ॥१॥

(अर्थ इसका यह है कि मैंने धन की भ्राति से पृथ्वी को खोदा, और पवन की धातुओ को रसायण की कामना से जलाया, मानियो की इच्छा से समुद्र को तैरा, और धन प्राप्ति के निमित्त बड यत्न से राजाओ को रिझाया, मन्त्र सिद्धि और भूत सिद्धि के लिये दृढ मन होकर कई रातें मसानो मे बिताई, परन्तु हे तृष्णा मुझे एक कानी कौडी भी प्राप्त न हो सकी, सो तू अब मुझको छोड दे)।

पण्डित जी ने कहा, यह तो सब कुछ पढ़ा था पर उसने जो मुझको कई बार चांदी बना के दिखा दी थी इस कारण मेरा मन पतियाया गया। भला तुम ही बताओ तो उस साधु ने पारे की चांदी कैसे बना दी होवेगी ?

मनोहर लाल ने कहा, मैं कुछ आप से बुद्धिमान तो नहीं पर मेरी समझ में यों आता है कि जब उसने पारा कुठाली मे डाल के ऊपर कोयले दिये तो पारे के तोल की चांदी की डली अपने पास से क्या तो किसी कोयले के बीच भर के कुठाली मे रख दी और क्या चांदी के ऊपर कोई काला धागा लपेट के कोयला सा बना दिया जब को [illegible] के बीच मिला के वह बनावटी कोयला कुठाली मे डाला [illegible] लगाई तो पारा उड गया

और चाँदी की डली पिघल के कुठाली में बैठ गई। बस आप ने जान लिया कि उस पारे की ही चाँदी बन गई है।

पण्डित जी ने कहा, हां सच है। एक भारी सा कोयला ठीक मेरे हाथ से कुठाली में डलवाया करते थे। सो अब जाना गया कि वह चाँदी से भरा होता था। अच्छा भाई ईश्वर की भावी यों ही थी पर इतने में ही शिक्षा प्राप्त हो गई सही!

अब बेटी देवकी की सुनिये। एक दिन एक पड़ौसन ने आके कहा देवकी मेरे घर के लोग मुझ से लड़े रहते हैं, इस कारण मैं अपने खाने तक से दुःखी रहती हूँ, यदि तेरे पास हो तो मुझ को पाँच रुपये उधार दे मैं टका रुपया के लेखे तुझे ब्याज दे दिया करूँगी। जब देवकी ने उसको बड़े घर की बहू समझ के पाँच रुपये दे दिये तो पंदरह दिन पीछे पाँच टके और पाँच रुपये फेर के दे गई। थोड़े दिन पीछे फिर आके बोली तुम जानती हो कि हमारा स्वभाव किसी की कौड़ी रखने वाला नहीं; जब लों किसी का देना होता है आपके नींद नहीं आती। देवकी ने कहा, हां! मैं तुम्हारी सच्चाई को जानती हूँ, जब तुम को कुछ काम पड़ा करे तो बे डर दस बीस रुपये ले कर काम चला लिया करो। पड़ौसन ने कहा दस बीस तो नहीं पर यदि तुम मुझको पचास रुपये उधार दो तो मैं आना रुपये के लेखे ब्याज भर सकती हूँ। लालच बुरा होता है। देवकी ने झट पचास रुपये निकाल दिये और कहा लो मैंने ये रुपये ज्यों-त्यों इकट्ठे कर रक्खे थे और अब मेरे पास नहीं है। हाँ रुपया तो पाँच चार सौ मेरे पास अलग इकट्ठा हो गया था पर खोये जाने के भय से मेरे बाप ने उन सब का गहना पत्ता ही मुझे घड़ा दिया है।

पड़ौसन घर में पहुँचते ही पिछले पाँव भागी हुई आके कहने लगी, बीबी देवकी! एक तो तू ब्राह्मण की बेटी तेरे अंश को हम कब तक खायेंगे, सो यह लो अपना रुपया पकड़ो। इतनी

जल्दी मत किया करो। लो तुमने मुझे पचास के इक्यावन गिन दिये थे, मैं यह तुम्हारा रुपया फेर लाई हूं। भगवान करे तुम्हारी ब्राह्मणो की कौडी हमारे पास न रहे। देवकी ने लपक के वह रुपैया ले लिया और मन मे समझी यह तो बडी धर्मात्मा जीव है कि जिसको पराये पदार्थ का इतना भय है।

थोडे दिनो के पीछे पडौसन ने आके वे पचास रुपये देवकी के आगे धरे और पचास आने ब्याज के दिये और कहा लो बीबी जी गिन लो कभी फिर काम पडेगा तो फिर मांग लूंगी। देवकी ने कहा, नही। तुम ने इतनी जल्दी क्यो की ? तुम्हारे ही पास थे हमको तो तुम पर अब कुछ भ्रम नही रहा, जाओ दस बीस दिन और काम चला लो। पडौसन ने कहा अच्छा तुम्हारी खुशी, मैं थाडे दिन और रख लेती हूं, पर आज तो मैं तुम्हारे पास एक और काम को आई थी। मेरी नन्दसाल मे एक लडकी का विवाह है वहा से मुझे बुलावा आया है। यदि चार दिन के लिये अपना गहना मुझे दो तो मैं विवाह देख आऊ। देवकी को उस पर कुछ भ्रम तो रहा ही नही था तुरन्त सारा गहना निकाल दिया।

बस यह अन्त का दिन था फिर पडौसन ने कभी मुख न दिखाया। जब देवकी उसके घर मे जाती तो वह सीधे मुख से बोलती भी नहीं थी कि कौन और क्यों आई है। जब देवकी अपना गहना मागती तो वह झुझला के कहती, अरी तू कौन है ? और गहना कैसा ? क्या तूने कुछ भग खाई है ? बता तो सही, मेरा घर किस गली में है ? मैं तो कभी घर से बाहर भी नहीं निकली कि तुझे पहिचान सकती। चल कोई मर्द आ निकलेगा तो तुझे नाहक शरमिन्दी होना पडेगा। देवकी कहती, अरी तू कई बार मेरे घर गई और कितने दिनो से तेरा मेरा लेन देन चला आता है और एक दिन तू मुझे भूल से दिया हुआ

रुपैया फेर के दे आई थी और अभी दस दिन नहीं बीते कि नन्दसाल में जाने के लिये तू मेरा सारा गहना माँग के लाई है फिर यह क्या बात है कि अब मुझे रूखी-सूखी बातें सुना रही है ? देवकी की इन बातों को सुन के बोली, वाह ! अच्छी कही, मैं तो जब से व्याही आई हूँ कभी घर से बाहर पाँव नहीं रखा। मेरे घर में भगवान ने सब कुछ दे रक्खा है, मैं तुम से लेने देने करने और गहना माँगने क्यों गई थी ? और तू ऐसी नादान कहां की आई कि भूल के बढ़ती रुपैया गिन देती, चल दूर हो मेरे घर के लोग बुरे हैं, कोई छोकरा छना आ गया तो इज्ज़त बिगाड़ देगा, भोख मांगतों की सारी उमर गई, अब हम को देनदार बनाने आई है।

जब देवकी किसी दूसरे से यह बात सुनाती तो लोग उसी को भूठी करते और कहते, बीबी जी ! तुमने किस के सामने गहने पत्ते दिये थे। क्या तुम नहीं जानती हो कि बिना लिखित कराये एक कौड़ी भी किसी को नहीं देनी चाहिये। जाओ चुपके से बैठो, जो पैसे तुमको ब्याज में मिले उन्हीं को धो धोकर पियो कि जिन्होंने तुमको लालच में फँसाया था।

इधर देवकी तो भाग्य को रो रही थी उधर एक सन्यासन उस गली में आ रही थी कि जिसका ऊपर का स्वांग देख के सब लोग उसको उत्तम साधनी मानने लग गये। आठों पहर लुगाइयों की भीड़-भाड़ उसके पास लगी रहती। कोई कहती, माई जी ! मेरा पति मुझ से प्रेम नहीं रखता। कोई कहती, माई जी ! मेरे बेटे की बहू मर गई है, दूसरा विवाह कब होगा ? कोई बोलती माई ! मैं तो तन मन से तुम्हारी दासी हो जाऊँ जो मेरा भाई विदेश से घर में आ जाये। कोई कहती माई जी ! मैं दस वर्ष से घर बसती हूँ भगवान ने जगत में कुछ साँझ नहीं बनाई जो एक भी छोकरा हो जाये तो तुम्हारी टहल करूँ। वह माई यह सुन

के किसी को कहती, लो ! यह यन्त्र पानी मे घोल के पिलाना, तुम्हारा पति तुम्हारे चरण धोने लग जाएगा। किसी को कहती लो यह धागा गूगल की धूप दे के अपनी कमर में बांधो शिवजी करेंगे तो तुम्हारे घर लड़का हो जायेगा।

ये बातें सुन के पण्डित जगदीश जी की बड़ी बहू भी उस सन्यासन के पास पहुँची। और बीच ही मे एक लुगाई ने कहा, लो माई जी ! आज तो पण्डिताइन जी भी तुम्हारे पास आई हैं, यदि इनकी आशा पूरी कर दोगी तो काशी भर में तुम्हारा नाम हो जाएगा। यह बड़े घर की बहू है, यदि इनको कुछ परिचय दिखावोगी तो सब लोग तुम्हारे दास हो जायेंगे।

माई ने कहा, आशा पूरी करनी तो शिवजी के आधीन है, पर हमको जो कुछ गुरु महाराज ने बताया है उसमे फरक नहीं रखेंगे। सो अच्छा मिसराईन तुम्हारा मनोरथ भगवान की दया से पूरे हो रहे हैं।

किसी बात का घाटा नहीं पर एक सन्तान की चाह है सो यदि तुम सतों की चाह है, सुदृष्टि हो जाए तो हम भी जगत से सुखी चले जाए।

सन्यासन बोली, अच्छा ! निश्चय रक्खोगी तो उसके घर कुछ घाटा नहीं। एकांत मे आना, तुमको भी एक धागा बना दिया जाएगा।

जब पण्डितानी एकांत मे गई तो सन्यासन ने कहा यह धागा तो तुम अभी से अपनी कमर मे बाध लो और सनीचर की रात को हमारे साथ नगर से बाहर एक चौराहे मे चलना होगा। पर एक बात है उस समय तुम स्नान करके सब कपड़ा गहना पहिन लेना और जो कुछ शृंगार सुहागिन स्त्रियों का होता है वह सारा बनाके मेरे पास आना।

पण्डितानी सनीचर की सांझ को नहा धो गहने कपड़े पहिन जब सन्यासन के पास पहुँची तो सन्यासन ने तुरन्त एक थाली में थोड़ा सा सिन्दूर और फूल रख के पण्डितानी के हाथ दी और आप साथ होकर उसे नगर से बाहिर ले गई। और कहा लो मिसरायन, वह चौराहा दीखता है, तुम पहिले तो इसी भांति बनी ठनी हुई उसके पास जाकर नमस्कार करो, फिर मेरे पास आके सब गहने कपड़े उतार धरो। मैं तो उनकी रखवाली में रहूँगी और तुम यह सिंदूर और फूल लेकर नंगे बदन चौराहे के पास जाओ। पहले तो उस पर यह सिंदूर और फूल चढ़ाना फिर आँखें मूँद के शिवजी के नाम की चुपचाप एक माला पूरी करना। जब माला पूरी हो जाये तो फिर आके गहने-कपड़े पहन लेना।

पण्डितानी उसकी आज्ञा के अनुसार ज्यों ही आँख मूँद के चौराहे के पास बैठी तुरन्त सन्यासन ने गहने कपड़े की गांठ बाँध अपना पीछा सम्भाला। घर तो किसी दूसरे का ही मांगा हुआ था अब उस गली में क्या काम था। न जाने कहां छपन हो गई।

जब पण्डितानी माला पूरी करके आई तो न सन्यासन है, न गहने, कपड़े, तब तो बहुत घबराई और दो तीन बार भूमि पर पटक पड़ी। फिर छाती पीट के कबी कहती, हाय! मैं क्या करूँ? हाय! मैं कहाँ जाऊँ? हाय! मैं नंगी घर में कैसे पहुँचूँगी? इस प्रकार रोती-रोती जब कुछ उपाय ना सूझ पड़ा तो ज्यों-त्यों चुपके से घर में आई और औंधे मुख धरती पर आ पड़ी। जब घर के लोगों ने जान लिया कि ये गहना कपड़ा सब लुटा बैठी है तो सन्यासन की ढूँढ होने लगी। कोई कहता वह साधु नहीं थी। ठग, इसने अमुक लाला के यहाँ भी यों ही हाथ मारा था। कोई बोला प्यारेलाल की गली में भी कुछ दिन

इसकी छाट जमी थी पर कोई गरडी का पूरा आँख का अन्धा इसके हाथ न लगा ।

अब गालो के लोगो मे यह विचार होने लगा कि भाई पण्डित जगदीश जी के यहाँ जो दिनो दिन लूट की बातें होती सुनी जाती हैं इसका क्या कारण है ? एक ने कहा, जब से इन्होने भाग्यवती को दुखी किया तब से भगवान ने इनको भी सुखी नही बैठने दिया । कोई बोला हाँ, ठीक ! इनके घर मे भाग्यवती हस थी और तो सब बहुएं काग भरी हुई हैं । देखो उसके पीछे इन्होंने बनाना तो क्या था पर अपने हाथ से ही घर उजाड रही हैं । हम देखते हैं कि जब से इन्होंने भाग्यवती को अलग किया तब से वह तो सुखी है और इनके यहाँ दरिद्र पड़ता जाता है । सच है शास्त्र मे लिखा है कि —

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते, पूज्यायाति ह्यपूज्यताम् ।
त्रीणि तत्र भविष्यन्ति दारिद्र मरण भयम् ॥१॥

अर्थ इसका यह है कि जहाँ अपूज्यो की पूजा और पूज्यो का निरादर होता है वहाँ तीन बातें होती हैं एक दारिद्र, दूसरा मरण, तीसरा भय, सो देख लो इन सब मे गुण विद्या बुद्धि की अधिकता के कारण भाग्यवती पूजा और सत्कार के योग्य थी सो उसके निरादर और इन मूर्ख बहुओ के आदर ने इनके घर मे दरिद्र को भर दिया है ।

इन बातो को सुन के पडित जगदीश जी और उनकी स्त्री के मन मे कुछ लज्जा सी तो आई पर यह कब हो सकता था कि भाग्यवती को मना लाते ।

जब किसी के दिन खोटे आते हैं तो पूछ के नही आते, दिनों दिन कुछ बिगडता ही चला जाता है और उसके मन में अपने आप वैसे ही सकल्प उदय होने लग जाते हैं कि जिनसे हानि

होवे। जैसा कि देखो जब पंडित जगदीश जी की दूसरी बहू ने देखा कि अब घर का सब पदार्थ नष्ट हो गया किसी के पास कोई अच्छा गहना कपड़ा भी नहीं रहा तो मन में सोचने लगी, ऐसा न हो कि अब पंडित जी मेरे गहनों को बेच के निर्वाह करने लग जाएं। सो योग्य है कि मैं अपना सब गहना पत्ता अपने भाई के यहाँ पहुँचा दूं। यह सोच के सब कुछ भाई के घर भेज दिया।

जब थोड़े दिन बीते तो उस भाई ने यह नटखटी की कि प्रातः उठते ही एक दिन यह प्रकट कर दिया कि हमारे घर में चोरी हो गई है। यह सुन के उसकी बहिन दौड़ी गई और भाई से पूछा कि तुमने मेरा गहिना तो ऐसे स्थान में कभी नहीं रखा होवेगा कि जिसको चोर ले जाते। भाई ने बुरा सा मुख बना के उत्तर दिया कि, बीबी! हमारा तो जो कुछ गया उसकी हमको ऐसी कुछ चिन्ता नहीं पर भारी सोच तो हमको तुम्हारे ही माल की हो रही है कि बहिन बेटी का धन हम कैसे उतारेंगे, हां चाहे हम जानते हैं कि तुम्हारे घर में सब कुछ भगवान् ने दे रक्खा है और तुम मुझ छोटे भाई को अपने माल के पीछे दुःखी नहीं करोगी पर अन्त को तो यह बात बुरी ही हुई न कि तुम्हारा पदार्थ हमारे घर से चुराया गया।

बहिन सुनते ही पीली हो गई और बोली, ना भाई! अब हमारा घर भी ऐसा नहीं रहा कि उस माल के लिए तुमको कुछ न कहूँ, बल्कि अब तो तुमको शीघ्र हमारा पल्ला पूरा करना पड़ेगा।

भाई ने कहा, सच पूछो तो हमारा घर भी तुम्हारे ही धन ने लुटाया है, यदि वह पापी धन हमारे घर न आता तो हमारा काहे को लुटता। सो जाओ हमारा मन इस समय जला बला हुआ है, कुछ बुरी बात मुख से निकल जाएगी। और यदि बहुत

घबराती हो तो चलो आँखों से दूर होवो, हमारे पास लेने देने को कुछ नहीं, जो चाहो सो कर देखो।

बहिन को यह सुनके निश्चय हो गया और तुरन्त चुपचाप पीछे को हटी। जब घर मे सास ने पूछा बहू उदास सी दीखती हो, कुशल तो है? तो कुछ उत्तर न दिया। इतने मे पंडित जगदीश जी घर मे आए तो पंडितानी बोली आज तो मभली बहू भी उदास दिखाई देती है, क्या जाने और कौनसा फूल खिला हो। पंडित जी ने आ के पूछा तो प्रकट हुआ कि सब ने तो सारे घर का होम कर ही दिया था पर अब इसने पूर्णाहुति डाल के काम समाप्त कर छोड़ा है।

तब तो पंडित जी को बहुत सोच हुआ और भाग्यवती का ज्ञान बुद्धि बहुत याद करने लगे। फिर सारे परिवार को बुला के कहा, भाइयो! हमने भाग्यवती को थोड़े से अपराध पर घर से बाहर निकाल दिया, उस बुद्धिमती के बिछड़ने ने हमारा घर धूलि में मिला दिया। मैं तुम सब को यह समझाना चाहता हूँ कि जिसको गृहस्थ आश्रम में सुख लेना हो वह अपने किसी चतुर और बुद्धिमान् मनुष्य को थोड़े से अपराध पर अलग न किया करे। देखो हार और साड़ी का जाना बहुत थोड़ी बात थी, यदि हम उसको सहार लेते तो काहे को हम रसायन के धोखे में आते और क्यो देवकी का गहना पत्ता पड़ोसन मार बैठती? और काहे को बड़ी बहू को सन्यासन लूटती? और क्यों यह छोटी बहू भाई का घर भरती? हाय भाग्यवती बड़ी चतुर थी और उसके होते हमारा घर कभी नाश न होने पाता। सो चलो आज भाग्यवती को मना लाए। जो कुछ उससे अप-राध हुआ सो भी हम अब अपने मन से भुला देते हैं। उस समय वह बालक थी यदि कुछ चूक हो गई तो क्या डर है। छोटों का अपराध बड़ों को मन पर नहीं रखना चाहिए।

यहां यह बातें हो ही रही थीं कि इतने में भाग्यवती ने सुना कि आज घर में मेरे बुलाने का विचार हो रहा है। उसने सोचा कि मेरी बुद्धि की क्या बड़ाई है कि यदि मैं उनके आने पर घर में चलूं। उत्तम तो वही है कि जो बड़ों के पास चल के आप जाए। मैं जो छोटी हूं तो ईश्वर ने ही मुझे छोटी बनाया है। यदि वे मेरे पास चलके आ जाएंगे तो क्या मैं उनसे बड़ी बन जाऊंगी ? वह समय ही वैसा था नहीं तो पंडित जी महाराज ऐसे ज्ञानी होके मुझे घर से कभी न निकालते। तो अच्छा बुद्धिमान वही है कि जो सब प्रकार से अपनी ही भूल मान लेता है। ये बातें सोच समझ भाग्यवती पालकी में बैठ आप ही पंडित जी और अपनी सासु के पाओं में जा पड़ी और तो सब लोग उसी समय इसकी बुद्धि विचार और ज्ञान विवेक की श्लाघा करने लग पड़े परन्तु पंडित जी और सासु ने प्रणाम की आशीर्वाद के विना, मारे लज्जा के मुख से और कुछ न कहा।

अब भाग्यवती ने देखा कि पंडित जी और सासु के मन में मेरे अलग कर देने और घर का सारा धन मूर्खपन के प्रताप से नष्ट हो जाने की लज्जा दूर करने के लिए आप ही अपनी सासु से बोली कि मैं बड़ी पापिन हूं कि आज लौं कभी पालागन कहने नहीं आई। यों तो सदा मेरा मन आपके चरणों में लगा रहता था, पर क्या करूं अकेली का घर से बाहर निकलना बड़ा कठिन है। मैं तो कई दिन से ताकती थी पर आज जो मैंने सुना कि घर से कुछ खोया गया इस कारण मेरा मन रह न सका। सच है कि जब कोई वस्तु जाना होता है तो बड़े २ बुद्धिमान देखते ही रह जाते हैं। इसी कारण बड़ों ने कहा है कि कोई अपनी बुद्धि पर घमण्ड न करे। ईश्वर की इच्छा के आगे जीव की बुद्धि और ज्ञान कुछ काम नहीं आता। देखो तो बीवी और मेरी जेठानियाँ तो भला स्त्रियाँ ही गिनी जाती हैं, पंडित जी तो

रसायन के धोखे में न आते कि जो सब विद्या-निधान थे। परन्तु इससे यही पाया जाता है कि जानहार वस्तु किसी प्रकार नहीं रह सकती। सो अच्छा आप कुछ सोच न करें उधर भी सब कुछ आप ही का है जो चाहो सो मगा लो।

जब पंडित जी ने और सासु ने सुना कि अपने निकाल देने का कुछ उलाहना नही देती और न हमारे अज्ञान पर कुछ हंसी करती है तो कहा, बहू भाग्यवती! हां ईश्वर की जैसी इच्छा होती है सब काम वैसे ही होते हैं, उसकी इच्छा के सामने जीव की बुद्धि कुछ वस्तु नही यह तुमने सच कहा। और जो तुमने कहा कि उधर से जो कुछ चाहो सो मगा लो, यह भी सच है, पर जब तुमको हमने अलग किया उस समय आप तो कुछ दिया ही नहीं फिर अब हम तुमसे किस मुख माग सकें?

भाग्यवती ने कहा, ऐय्या! तुमको तो तुमने सब कुछ दिया है। देखो यह जो कुछ अब मेरे घर मे दिखाई देता है सब आप ही की दया से हुआ है। मैं तो अपने अलग करने को भी आपकी दया ही समझती हूं क्योंकि यदि आप मुझे अलग न करते तो एक तो कोई मुझे भी अवश्य ठग के ले जाता दूसरा जो उद्यम और यत्न मैंने अलग हो के किए वे तुम्हारे बीच होने से काहे को बन पडते, सो ठीक सोचा जावे तो मेरी वृद्धि का हेतु मेरा अलग करना ही है। फिर मैं यह भी सोचा करती हूं कि वह समय ही मेरे लिए कुछ वैसा था नही तो आप कभी मुझे अलग न करते। अच्छा वह दिन आपके आधीन था न मेरे, ईश्वर ने वही रचा हुआ था कि जो कुछ हुआ। यदि वैसा न होना होता तो पंडित जी उस चिट्ठी के अक्षर पहिचानते कि जो उन्होंने थैली के साथ किसी मालन से भेजी थी। अथवा उस मालन से ही इतना पूछते कि तू भाग्यवती को जानती भी है या नहीं [illegible] यह थैली तुझे किसने पकड़ाई है। अथवा मेरी

विचारते कि जो मैंने अपने हाथ से लिख के भेजी थी। अथवा तुम ही सोचतीं कि भाग्यवती ने हमारे सामने कोई अपराध नहीं किया फिर हम लोगों के कहे कहाए उसके वैरी क्यों बनते हैं।

इन बातों को सुन के सासु ने पूछा, ऐ है बहू ! क्या यह सारा उपद्रव हमारे घर में बीच वाले लोगो ने ही खड़ा कर दिया था और तुझे कुछ भी मालूम नही ?

भाग्यवती ने उत्तर दिया, मै तो आज लौ इस बात को सोचा करती हूँ कि मेरे सुसरे और सासु ने मुझे किस अपराध पर घर से बाहर कर दिया ? और यदि कोई मेरा अपराध उनको जान पड़ा था तो मुझे बुला के झूठी करते मैं तो आज लौ यही माने हुई बैठी हूँ कि पराई बेटी का किसी के घर में क्या मान होता है जब चाहा गाय भैंस की नाईं कान पकड़ के बाहर कर दी।

यह सुन के सासु ने आँखें भर लीं और मारे मोह के कण्ठ ऐसा रुक गया कि कुछ बोल नहीं सकती थी। जब यह सारा वृत्तान्त अपने पति से कहा तो वे भी सुनते ही रोने और पश्चाताप करने लगे और बोले, हाय ! हमने ईर्ष्यालु और बैरी लोगों के कहने से अपने हृदय का टुकड़ा भाग्यवती अलग करके अत्यन्त दुःखी की, हाय उस परम सत्पात्र और माता-पिता की लाड़ली भाग्यवती को कि जो हमको भी अपने प्राणवत् प्यारी थी कई वर्ष लौं वृथा सताया, हाय हमारा यह पाप कैसे दूर हो सकेगा कि जिन्होंने उस भाग्यवती को कि जिसके खेलने खाने के दिन और अभी भोली भाली अवस्था में थी अपने पति से हीन रखा। धन्य है उसका धैर्य और धिक्कार है हमारी बुद्धि को कि जिन्होने उसकी प्रेम भरी चिट्ठी को पढ़ के भी कुछ विवेक न किया। हाय हम बड़े कृतघ्न और पापी हैं कि जिसके प्रताप से हमारा गया हुआ धन प्राप्त हुआ और जिसने हमको झूठे ऋण से छुटाया। हम

ने उसको लोगो के कहने पर घर से निकाल दिया। पडित पडितानी का यह विलाप और शोक देख के दोनों बहुओ और बेटी देवकी का मन भी भर आया। वरन भाग्यवती के धैर्य सन्तोष क्षमा कोमलता शान्ति गम्भीरता सरलता आदिक उत्तम गुणों ने उनके मनों को ऐसा गिराया कि अपने अपराध आप ही प्रकट करने लग गई। एक बहू बोली भाग्यवती का कुछ दोष नही हम ही अत्यन्त खोटी हैं कि जिन्होंने इस निरपराध गौ को सताया। दूसरी ने कहा मैं बडी पापन हूं कि इस साक्षात् देवी को वृथा कलङ्क लगा के सबकी दृष्टि मे बुरा बनाया। लडकी बोली इन दोनों का भी कुछ दोष नही, इस पाप का बीज केवल मेरे ही पापी मन ने बोया था कि जिससे यह परम पवित्र भाग्यवती कई कष्ट उठाती रही। मैंने आप ही अपनी साडी छिपाई और आप ही बडी भावज का हार उसके पल्ले बाध के थैली मे डाला था और वह मालन तो भाग्यवती को जानती भी नहीं थी, वह भी मैंने ही उसको कहा था कि औषध की थैली भाबी की मा को दे आओ। और वह चिट्ठी मुझे सतलाल मिश्र की बेटी गौरी ने लिखा दी थी, जिससे भाग्यवती ने उनसे कडो की जोडी मगा ली थी जो उसके बाप ने सरकार मे जब्त हो गई बताई थी। सो अच्छा, हम सब पापी हैं हम से हो गई, भाबी हम सबके पाप और अपराध क्षमा करे। और यदि हम सोचें तो इस पाप का फल भी हम सबको प्यारा २ हाथ पर मिल चुका है। देखो घर का धन सब न[illegible] हो गया, गहने कपडे, बर्तन सब ठगों ने ठग लिए। क्या यह [illegible] बात का फल नही कि भाबी भाग्यवती को घर से अलग कर[illegible] था? यदि यह बीच में होती तो किसी को क्या सामर्थ्य [illegible] कि हम लोगो को धोखा दे सकता।

पडित जगदीश जी [illegible] बातो को सुन के सब भाइयों के सामने फूट २ रोने लगे [illegible] की स्त्री ने लपक के भाग्यवती

को छाती से लगा लिया और कहने लगी कि बेटी ! हम सब तेरे देनदार और अपराधी हैं, क्या करूँ मुझको तो इन बातों का भेद कुछ भी प्रतीत न हुआ। हम पुराने समय के लोग हैं इस नए समय की बातें क्या जानें। जो कुछ किसी ने कान में भर दिया सो ही सच मान लिया, सो अब हमारा अपराध क्षमा कर। और यह तेरा घर है, हम तो दोनों बूढ़े हुए, किसी तीर्थ पर बैठ के दिन काट लेंगे। इस पापी परिवार का यही दण्ड है कि अब हम इनके बीच नहीं रहने के, तुम जानो तुम चाहे इनको अपने संग रखो चाहे हाथ पकड़ के निकाल दो, हम अपना बाजा बहुतेरा बजा चुके।

यह सुन के भाग्यवती रोने लगी और बोली, ऐय्या ! तुम्हारे पीछे इस घर में मेरा क्या काम है। जहाँ तुम वहीं मैं तुम्हारी सेवा टहल में जन्म सफल करूँगी। और यह घर इन ही लोगों को सफल रहे मैं तो इनकी और तुम्हारी दोनों की दासी हूँ। पहले तो चाहे मेरा मन कुछ इनकी ओर से तपा हुआ था पर अब इनके सच सच कह देने ने मेरे मन को ठण्डा कर दिया। अब मैं इनसे कभी अलग नही रहूँगी। धन्य है वह जीव कि जिसने कभी कोई अपराध नहीं किया और फिर अत्यन्त धन्य है वह कि जो अपराध हो जाने के पीछे पछताने लग जावे और अपने अपराध को अपने ऊपर मान ले सो मुझको तो इन सब के चरण चूम लेने चाहिए कि जिन्होंने अपने अपराध को मान लिया। अब आपको और बाबा जी को भी यही उचित है कि इनके अपराध मन से भुला दें और मेरी ओर से कुछ चिन्ता न करें। चाहे चार दिन मैं आपसे अलग तो रही पर अलग रहने में मुझे कुछ कष्ट नहीं हुआ वरना लाभ हुआ है। सो अब तो यही समय है कि तुम हमारे तीर्थ रूप बने घर में बैठे रहो और हम मिल के आपकी टहल किया करें। लो मैं उस घर का भी सब कुछ यहीं

मँगा लेती हूँ पर एक बात ये है मेरे दोनो जेठ और जेठानियाँ इसी प्रकार बीच मे मिल जाएँ। अब विपत् का समय तो चला गया फिर अलग रहने में क्या प्रयोजन ?

यह सुन के सब के मन प्रसन्न हो गए और सब मिल के घर में रहने लगे। जब भाग्यवती ने अपने घर का सब पदार्थ मँगाया तो पन्द्रह सहस्र रुपया रोक और गहने कपड़े बर्तन आदि पदार्थों की कुछ गिनती न रही। अब पंडित जगदीश जी का घर फिर भाग्यवान् दिखाई देने लगा। और सब सम्बन्धी एक मूठ हो गए। जहां चार मनुष्य बैठते ये ही बातें करते कि भाई ! देखो एक भल्लाग्न स्त्री ने बिगड़ा हुआ घर फिर फिर थोड़े काल में कैसा खड़ा कर दिया। कोई कहता भाई स्त्रियाँ तो बहुतेरी ही हैं पर भाग्यवान जीव कोई एक ही होता है। कोई कहता, नहीं भाई ! जीवा की क्या बात है यह सब विद्या का प्रताप है। मनुष्य हो चाहे स्त्री विद्या सबको भाग्य लगा देती है। हाय वे कैसे बुरे माता पिता हैं कि जो अपनी सन्तान को विद्या नहीं सिखाते। धिक्कार है उन पर कि जो यह बात कहा करते हैं कि स्त्री को विद्या न पढ़ानी चाहिए और बड़े ही मूर्ख हैं वे लोग जो अपने मुख से ये बातें कहा करते हैं कि विद्या पढ़ी हुई स्त्री बिगड़ जाती है। क्या भाग्यवती स्त्री नहीं थी कि जो कई वर्ष अपने पति से अलग रह के पवित्र रही ? और क्या यह विद्या ही का प्रताप नहीं कि विपत्काल में धैर्य सन्तोष को हाथ से न छोड़ा ? और क्या यह विद्या ही का फल नहीं कि एक लोहे के तसले से सहस्रों रुपयों का पदार्थ इकट्ठा कर लिया ? भाई यह विद्या ही का प्रताप है कि जिन्होंने भाग्यवती पर झूठे कलङ्क लगाए और घर से निकाल दी ! फिर उनका अपराध क्षमा करके अपने साथ मिला लिया, और यह भी विद्या ही का प्रताप है कि भाग्यवती को वह धैर्य सन्तोष प्राप्त था कि जिसके प्रताप से

उसके सामने शत्रु लोग आप ही लज्जावान होकर अपने अपराध प्रकट करने लग गए। क्या यह विद्या ही का प्रताप नहीं कि भाग्यवती कई वर्ष लों घर से निकाली रही और अलग रहने में सैंकड़ों दुःख और क्लेश सहारे पर एक ही नगर में बसते हुए अपने माता-पिता लों एक बात भी नहीं पहुँचने दी ? जो कुछ दुःख-सुख था अपने ही ऊपर उठाया, किसी दूसरे को कभी नहीं सुनाया कि जैसे और स्त्रियां जब घर में तनिक नी भी अनबन होती है तो गली कूचे में एक की बीस-बीस बनाके सुनाया करती हैं। सो यह सब विद्या ही का प्रताप है।

अब भाग्यवती अपने घर में आनन्द मंगल से रहने लगी और शास्त्री मनोहरलाल का भी उसमें अत्यन्त प्रेम हो गया। वह उसको देख के जीता और यह इसको अपना स्वामी परमेश्वर जान के कभी सेवा-टहल से विमुख नहीं होती थी।

जब कुछ दिन घर में बसते हुए बीते तो भाग्यवती को एक कन्या उत्पन्न हुई। उस पहली सन्तान को कन्या देख के शास्त्री मनोहरलाल जब कुछ उदास होने लगा तो एक दिन भाग्यवती ने कहा, स्वामी ! यह क्या बात है यदि आप ऐसे बुद्धिमान् हो के उदास होने लगे तो और कौन न होगा ? क्या आप कन्या और बालक में कुछ भेद गिनते हो ? ईश्वर की दृष्टि में तो कुछ भेद नहीं प्रतीत होता। यदि उसके यहाँ कुछ भेद होता तो कन्या के शरीर में भूख प्यास नींद आदि व्यवहार कुछ अधिक न्यून होते। फिर जन्म मृत्यु बढ़ना घटना भी समान ही दिखाई देता है। अब कहिए कि फिर सोच करने का क्या प्रयोजन ! बालक भी माता-पिता के मन को दस पन्द्रह वर्ष लों खिलौने के न्याईं प्रसन्न करता है सो इतनी अवस्था पर्यन्त कन्या भी मा बाप को कुछ थोड़ी लाड़ली और प्यारी नहीं होती। यदि कहो कि कन्या ब्याही जाने के पीछे पराई हो जाती है यह बात तो बालक में

भी उसके समान ही देखी जाती है क्योंकि वह स्याना होने से अपने स्त्री पुत्र का हो जाता है, जैसा पहले वह अपने माता पिता का बना रहता है उतना फिर पीछे से नही रहता। यदि इस बात को झूठ मानते हो तो अपनी ओर ही देख लो, तुम तो बड़े बुद्धिमान् थे, मेरे साथ व्याहे जाने के पीछे अपने माता पिता के क्यो न रह गए ? सो ईश्वर के इस दान पर आपको आनन्दित रहना चाहिए। यदि आप कहो इसके पालन-पोषण की हमको चिन्ता रहगी तो सुनो पहले तो यह बताइए कि खग मृगादि की पालन-पोषण कौन करता है ? दूसरा यह कहिए यदि बालक होता तो क्या आप उसका पालन-पोषण न करते ? यदि आप कहो कन्या के विवाह पर धन बहुत लगाना पड़ता है तो आप भली प्रकार जानते है कि मेरे और आपके पिता ने इस बात का तो नाम ही दूर कर दिया कि कोई बेटी के विवाह पर वृथा धन का नाश न करे सो यदि और लोग भी इस सुखदायक रीति को अपने घरों में चला दे तो अहोभाग्य, नही तो हम तो अवश्य वैसा कर सकते हैं कि जैसा हमारे तुम्हारे विवाह मे दोनो पिता ने किया था। क्योंकि उन्होने केवल अपने ही सुख के लिए विवाहों मे धन लुटाना वर्जित नही ठहराया वरन् सारे जगत् को इस व्यर्थ क्लेश से छुडाने के लिए उद्यम किया था। शास्त्री जी ये बातें सुन के बहुत प्रसन्न हुए और भाग्यवती की विद्या और बुद्धि की अपने मन मे श्लाघा करने लगे।

भाग्यवती के धैर्य और क्षमा आदि उत्तम गुण कुछ अपने ही घर मे नही थे वरन् यदि कोई अन्य स्त्री पुरुष भी इसके साथ लड़ना बोलना चाहता था तो यह चुप हो रहा करती थी जैसा कि देखिए —

उस गली मे एक ऐसी क्रूर स्त्री रहती थी कि जिस से सब लोग डरते और कोई सामने नही आ सकता। लडने मे वह यहाँ

तक प्रसिद्ध थी कि सारी काशी में नाम उसका लड़ाकी पड़ रहा था। उसका स्वभाव ऐसा क्रूर था कि कोई चाहे कैसा ही क्षमा-शील और भला मानस हो यह अपने खोटे वाक्य सुना के उसके स्वभाव को अवश्य बिगाड़ दिया करती थी और गली में ऐसा कोई बाल-वृद्ध स्त्री-पुरुष नहीं था कि जिसके साथ एक आधो बार इसने लड़ाई न करली हो।

एक दिन की बात है कि भाग्यवती अपनी छत पर अपनी लड़की लिए बैठी थी कि इतने में लड़ाकी भी सामने से अपनी छत पर किसी काम को चढ़ी। जब भाग्यवती ने उसको अपने से बड़ी समझ के 'पाइ लगी' कही तो लड़ाकी बुरा सा मुख बना के और नाक भौं चढ़ाके बोली, बहू ! तुझे तो अपनी विद्या और धन का घमण्ड हो रहा है, तू काहे को हमें पालगी कहेगी।

भाग्यवती बोली, मुझ में तो ऐसी कोई विद्या व धन नहीं कि जिसका घमण्ड हो जाए। और मैं अपनी जान में सदा आप को अपनी बड़ी जानती और पाइ लगी कहती रही हूँ और यदि मुझ से कभी चूक भी हो गई हो तो आप क्षमा करें, क्योंकि छोटों के अपराध बड़े लोग सदा से क्षमा करते आए हैं।

लड़ाकी ने कहा, क्यों री तू मुझ से ठट्ठे करती है ? चल मैं तेरे बनाए से बड़ी नहीं हूँ। यदि तू मुझे बड़ी न समझेगी तो क्या मैं छोटी हो चली हूँ ? चल अपनी पाइ लगी घर रख हम इसके भूखे नहीं। हम छोटे बड़े जैसे हैं अपने घर पर हैं, तेरे घर में कभी भीख माँगने नहीं गए। नकारी बोलने को मरती है ?

यह सुन के भाग्यवती सुन्न सी हो गई और मन में सोची यह क्या आश्चर्य है कि इसने अपने आप ही मेरी सीधी बात को उलटा समझ लिया ? फिर बहुत दीनता और नम्रता से बोली, मा जी ! आपकी जो इच्छा सो कह छोड़ो पर मैं तो अपने

को आपकी दासी और तुम को अपनी सासु और मा के समान सदा अपनी बडी जानती हूं।

लडाकी ने कहा, क्या री ! तू मुझे चतुराई से अपने बाप और अपने सुसरे को सुगाई बनाती है ? हत्तेरे सुसरे की दाढी जलाऊं, वह भडुआ कौन है जो मुझे अपनी लुगाई बनावें ? उसकी लुगाई बन तू अथवा उसकी बेटी देवकी ! आने दे मेरे बडे बटे को मैं कैसा तेरा चूंडा और तेरे सुसरे कजर की दाढी फुकवाती हूं। यों बकती और फूट-फूट रोती हुई अपने घर के द्वार पर आ खडी हुई जो कोई भला-बुरा स्त्री-पुरुष उस गली में से होकर जाता उसी को पकड के खडी हो जाती और रो-रो के कहती, देखो जी चुडैल भाग्यवती मुझे अपने सुसरे की लुगाई बनाती है।

लोग इसके स्वभाव को तो जानते ही थे पर जब भाग्यवती से आकर पूछते कि तुमने आज यह भिडो का छत्ता क्यो छेड लिया तो वह सक्षेप से अपनी पाइलगो कहने से लेकर सारा वृत्तात सुना देती और लोग सुन के लडाकी के स्वभाव पर बहुत चकित होते थे।

जब लडाका भाग्यवती को बहुत गालियां दे रही थी तो एक पडोसन ने उठ के कहा, बहू भाग्यवती ! जो तू इसी भांति चुप हो रहेगी तो यह पापिन काहे को पैंडा छोडेगी ? तू कहे तो मैं तेरे सुसरे और जेठो के पास छोकरा भेज के बुला लूं। बहू ! हम से तो ये गालियां नही सुनी जाती और हम यह भी जानती हैं कि जो तुम इसके आगे चुप हो रहेगी तो कल को कोई और तुमको दबाने लग जाएगी। सो अच्छा तो यही है कि तुम इसको जरा धमका दो।

भाग्यवती ने हंस के कहा, अम्मा ! तुम सच कहती हो पर मैं यह सोच रही हूं कि इसके बकने से मेरा बिगडता क्या है ?

अब लों कोई नहीं जानता कि किस के साथ लड़ती है यदि मैं इसके सामने खड़ी हो के कुछ उत्तर देने लगूगी तो सब कोई कहेगा कि भाग्यवती से लड़ाई होती है और जो तुमने मेरे सुसरे और जेठों के पास छोकरा भेजने की बात कही, इससे यह तो जाना जाता है कि तुम बड़ी सहायक हो, परन्तु उनके घर में बुलाने में यह विचार है कि अब तो लुगाइयों की लड़ाई है इधर लड़ी और उधर फिर वैसी ही हो गई, पर मर्दों के बुलाने से न जाने कितनी लम्बी खिच जाए। योग्य तो यही है कि मैं इसकी गालियों को विवाह की गालियां समझ के चुप रहूँ। जब थक जाएगी तो यह भी आप ही चुप हो जाएगी जैसा कि मैंने नीति शास्त्र में यह श्लोक पढ़ा है :—

क्षमा खड्ग करे यस्य दुर्जनः किं करिष्यति।
अतृणे पतितं वन्हिः स्वयमेवोपशाम्यति ॥१॥

अर्थ इसका यह है कि जिसके हाथ में क्षमा का खड्ग पकड़ा हुआ हो वैरी उसका क्या बिगाड़ेगा। जब अग्नि में ईंधन न डाला जाए तो वह आप ही बुझ जाया करती है।

पड़ोसन ने कहा धन्य तुम्हारा धैर्य्य! पर हमसे तो इसकी गालियाँ कभी न सहारी जाएँ।

भाग्यवती ने कहा, हाँ सच है? खोटे वचन का सहारना बहुत कठिन होता है पर सुख तब ही होता है कि जब मन में खोटे वचन सहारने का सामर्थ्य हो जाए। सुनो मैं आपको एक बात सुनाऊँ कि जिसके ग्रहण करने से बड़ा भारी सुख हो सकता है। वह यह है कि जो लोग किसी को लड़के वा बोल के जीतना चाहते हैं वे हार जाते और जो आप हारना और चुप करना ग्रहण करते हैं वे सारे जगत को बिना यत्न जीत लिया करते हैं।

पडोसन ने कहा, यदि चुप कर रहना दूसरे को जीत लेता हो, तो तुम जो घर मे चुपचाप बैठी हो लडाकी क्यों नही हार जाती ?

भाग्यवती बोली, तुम थोडी सी और बैठो मैं शीघ्र ही तुम को लडाकी चुप हुई २ दिखा देती हूं।

पडोसन ने कहा, तुम तो क्या इसको बडे २ चुप करा चुके पर यह चुप न हुई।

भाग्यवती ने कहा, वे लोग चुप कराने की रीति नहीं जानते होंगे नही तो अवश्य इसको चुप करा देते।

पडोसन बोली, इनसे अच्छी रीति और क्या होगी कि कई लोगो ने इसके सामने गालियां दी, और कई लोग इसको पकड के थप्पड मार चुके। और बहुतो ने इसे थाने मे पहुंचाया और कई लोगो ने इसे जरीमाना भराया। यह चुडेल तब भी चुप न बैठी।

भाग्यवती ने कहा, यह रीति भी चुप कराने की थी तो अच्छी, पर मेरे पास इससे भी अच्छी एक और रीति है कि जिससे सब कोई चुप हो जाया करता है।

पडोसन ने पूछा फिर तुम इसको किस रीति से चुप करा-ओगी वह हमको भी बतानी चाहिए ?

भाग्यवती ने कहा, मैं तो पहले ही तुमको बता चुकी हूं कि जो कोई लडने वाले के सामने चुप हो रहे उसको देख के लडने वाला क्या मडेरो को गालिया देवेगा ? तुम सच जानो कि यदि मैं न बोलूंगी तो यह आप ही चुप हो जाएगी।

पडोसन ने कहा, आज तो चाहे तुमको चुप देख के थोडा चुप हो रहे पर जब कभी तुम इसके सामने आओगी, यह तब ही कुछ न कुछ बकने लग जाएगी।

भाग्यवती ने कहा, अच्छा तुम देखती रहो ईश्वर ने चाहा तो मैं शीघ्र ही इसको ऐसो उत्तम बनाऊँगो कि कभी किसी से लडने का नाम न लिया करे।

जब दो तीन दिन बीते तो लड़ाकी का एक छोटा सा लड़का खेलता हुआ गली में एक सांढ के आगे आ गया। ज्यों ही सांढ उसको दबाने लगा भाग्यवती ने दौड़ के उस लड़के को गोद में उठा लिया और छाती से लगा के उसका माथा चूमने लग गई। एक लुगाई जो दूर खड़ी देख रही थी, भागती हुई लड़ाकी के पास जा के यह बात बता रही थी कि जो भाग्यवती न उठाती तो आज तेरा छोकरा सांढ ने मार दिया होता कि इतने में भाग्यवती भी लड़के को चूमती हुई लड़ाकी के घर में पहुँची और कहा छोकरे को अकेला गली में मत छोड़ा करो। लड़ाकी को भाग्यवती की क्षमा देख के अपने बोलने बकने पर कुछ लज्जा सी तो आई पर स्वभाव के क्रूर होने के कारण मुख से यही निकला कि तुमने क्यों उठाया, क्या हमारे हाथ-पांव साथ नहीं थे, हम आप ही उठा लाते।

भाग्यवती ने कहा, आपके हाथ-पांव सदा बने रहें पर यदि मैं लड़के को उठा लाई तो मेरा क्या घट गया? क्या आपका लड़का हमको कुछ पराया है अथवा मुझको तुम अपनी दासी नहीं समझतीं? मैं तो यही जानती हूँ कि हमसे जितनी टहल आपकी बन सके हमारी सौभाग्यता है।

लड़ाकी लड़के को उठा के तो भीतर जा घुसी पर चलती बार उस चुड़ेल के मुख से यही निकला कि चल री! भगवान हमको किसी की टहल का अर्थी न बनावे।

जब भाग्यवती अपने घर में चली आई तो उसके छठे सातवें दिन इसके पिता की गली में से एक ब्राह्मण आके कहने लगा,

बेटी भाग्यवती ! मुझको मेरे यजमान लाला सदासुख ने तुम्हारे पास इसलिए भेजा है कि तुम्हारी गली मे एक लडका है, उसकी जन्मपत्री हमारे पास भिजवा दो। उसने यह भी कहा कि यदि बीबी भाग्यवती श्रेष्ठ समझे तो हमारी कन्या का सम्बन्ध अपने हाथ से उस लडके के साथ कर दे। एक यह बात उसने ठीक पूछी है कि उस लडके का बाप तो मर गया सुना जाता है पर उसकी मा को जो लोग लडाकी बोलते हैं इसका क्या कारण है ? और यह बात भी उसने तुम ही पर छोडी है कि तुम भली भांति विचार लो कि वह घर और वर कैसा है ?

इधर तो भाग्यवती से वह ब्राह्मण पूछ ही रहा था उधर किसी ने लडाकी से जाकर कहा कि एक ब्राह्मण तुम्हारे बेटे की जन्मपत्री मांगने आया है और भाग्यवती के घर बैठा तुम्हारे कुल की बात पूछ रहा है। लडाकी बोली, उससे तो कल हमारी लडाई हो रही थी फिर वह कसाई की जनी मेरे घर की बडाई क्यों करेगी ? अच्छा मैं आप उसके घर मे जाके सुनती हूं कि वह हमारे घर को क्या २ कलंक लगाती है ?

जब लडाकी भाग्यवती की डेवढी मे आके छिप रही तो भाग्यवती को उस ब्राह्मण से यह कहती पाया कि मिश्र जी ! अपने यजमान से जाके कहो कि भाग्यवती कहती है कि देखते क्या हो ऐसा घर वर फिर नही पाओगे, विलम्ब न करो तिलक भेज दो और जो तुमने पूछा कि उसकी मां को लोग लडाकी क्यों बोलते हैं सो यहां तो उसको कोई लडाकी नही बोलता और न मैंने कभी उसको गली चौक मे किसी से लडती देखा है। मिश्र जी तुम जानते हो कि आजकल जगत् मे वैर विरोध ईर्ष्या बहुत बढ रही है किसी वैरी ने तुम्हारे पास आ के उसका नाम लडाकी बताया होवेगा। सो तुमको चाहिए कि किसी की सुनी सुनाई बात पर कान मत धरो, वह कभी किसी से लडाई भिडाई नहीं

किया करती, हाँ इतना ठीक है कि वह इस गली में की सब लुगाइयों से बड़ी है, इस कारण यदि किसी को कुछ अनरीति करते देखती है तो शिक्षा के प्रकार से दबक दिया करती है। सो यहाँ कोई उसके कहने का बुरा भी नहीं माना करता। हमारे घर पर तो वह सदा अपनी दया रखती है और हम उसको बड़ी समझ के सब कामों में पूछ लिया करते हैं।

ये बातें सुन के लड़ाकी बहुत प्रसन्न हुई और उसी दिन से भाग्यवती के शील सन्तोष क्षमा धैर्य को सारी गली में श्लाघा करने लग गई। एक दिन किसी स्त्री के पास यह भी कहा कि हमारी गली में भाग्यवती के समान भला मनुष्य कोई नहीं होगा; देखो मैंने उसको वृथा इतनी गालियाँ दी पर उसने एक का भी उत्तर नहीं दिया। आज काशी भर में उसके धनी और सुसरे की बात सब लोग मानते हैं, वह चाहती तो मुझे एक घड़ी में गली से बाहर निकलवा देती पर धन्य है उसकी क्षमा को कि उसने मेरी लड़ाई का आज लों उनके पास नाम तक नहीं लिया। मुझे तो वह ऐसी प्यारी लगती है कि सारा दिन उसके पास बैठी उसकी मीठी-माठी बातें सुनता रहूँ। पर क्या करूँ मैंने जो उसको बहुत खोटे वचन कहे हुए हैं इस कारण मेरी आंखें उसके सामने नहीं हो सकतीं। लड़ाकी की ये बातें सुन के वह स्त्री भाग्यवती के पास गई और यहाँ का सारा वृत्तान्त सुनाया। भाग्यवती ने उस समय तो इतना ही कहा कि उनकी दया है जो हमारी बड़ाई करती हैं नहीं तो मुझ में बड़ाई के योग्य कोई बात नहीं। पर दूसरे दिन अपनी लड़की को खिलाती हुई भाग्यवती आप ही लड़ाकी के घर में जा घुसी और कहा तुमको देखे बहुत दिन हो गए थे इस कारण मेरा मन घर में न रह सका। कहो अम्मा! आप आनन्द कुशल से हो? लड़ाकी ने भीतर से लाके मूढ़ा

दिया और मन मे सोचने लगी कि इसके साथ बातें कौन सी करनी चाहिए ? फिर कुछ सोच समझ के बोली यह भाग्यवती ! यह तुम्हारी लड़की सदा से दुबली पतली देखी जाती है, भगवान् रखे खाने पीने का भी घर में कुछ घाटा नहीं पर इसकी देह पर मास नहीं आता। भाग्यवती ने खिले हुए मुख से बडी प्रसन्नता से उत्तर दिया कि अम्मा ! आप सच कहती हो, पर अब जो इसके दात जम रहे हैं इस कारण कुछ और भी दुबली हुई जाती है। मेरी बडी भूल हुई कि पहले ही से इसको डाक्टर साहब के यहां न भेजा। मैं सुनती हूं कि वे लोग नश्तर के साथ दात उगने के स्थान को थोडा छेड दिया करते हैं कि जिससे बच्चो को दांत जमने पर कुछ कष्ट नही रहता। लडाकी ने कहा भाग्यवती इन फिरगी लोगो की सब बातें ऐसी ही चतुराई की सुनी जाती हैं।

भाग्यवती ने कहा, हां। इनके समान चतुर और प्रजा का भला चाहने वाला राजा आज और कौन है ? देखो, हमारे देश मे सीतला निकलने से कितने बच्चे मरा करते थे पर जब इन्होंने टीका लगाने की रीति फैलाई है तब से बहुत थोडे बालक ठण्डे होते हैं।

लडाकी ने पूछा, भाग्यवती ! तुम तो पढी-लिखी हुई और सारे काम जानती हो मुझे यह भली भांति समझा छोडो क्या टीका कराने से सीतला ठीक थोडी ही निकलती है। मैंने तो पिछले दिनो मे कि जब वे लोग हमारी गली मे टीका लगाने आए थे बहुत लुगाइयो को उनके पास बालक भेजने से रोक दिया था।

भाग्यवती ने कहा, तुमने बहुत बुरा किया, टीका लगवाना तो बहुत ही अच्छी बात है। जो लोग अपने बच्चो को टीका नहीं लगवाते वे अपने बच्चो को आप मृत्यु

जब भाग्यवती ये बातें करके उठने लगी तो लड़ाकी बाहर तक साथ आई और बोली ऐसी-ऐसी गुण विद्या की बातें जो तुम मुझको सुनाती सिखाती रहा करो तो मैं किसी समय तुम्हारे घर पर भी आ निकला करूंगी।

भाग्यवती ने बड़े आनन्द से उत्तर दिया कि धन्य मेरे भाग्य यह तो आप ही का घर है, आप आनन्द से वहाँ आएं मैं इससे भी अच्छी कई पोथियाँ आपको सुनाया करूंगी। यह कह के भाग्यवती घर को गई और लड़ाकी दूसरे ही दिन से उसके घर में आने-जाने लग गई। भाग्यवती के थोड़े दिन के सत्संग ने उसके मन को ऐसा सुधारा कि सारी गली में लोग लड़ाकी की बुद्धि विचार और ज्ञान विवेक की उपमा करने लग गए।

अब भाग्यवती के यहाँ एक पुत्र उत्पन्न हुआ कि जिसको सुन के पंडित जगदीश जी ने अत्यन्त आनन्द माना। सारी गली के लोग घर में बधाई देने आते और कहते लड़के की उमर बड़ी हो। चाहे पंडित जगदीश जी ने और मनोहरलाल शास्त्री ने लड़का होने में यथाशक्ति पदार्थ कंगालों और भिक्षुओं को तो दिया और सौ रुपया पाठशाला में भी धर्मार्थ भेजा परन्तु भाई-बन्धुओं के कहने से नाच-मुजरे और अग्निक्रीड़ा में एक कौड़ी भी न लगाई।

जब भाग्यवती चालीसवें दिन का स्नान कर चुकी तो उसकी सासु ने दो एक तांबे के तावीज और एक दो ऊन के धागे ला के कोई लड़के के गले और कोई भुजा में और कोई भाग्यवती के हाथ और कटि में बाँधना चाहा। और कहा, ले बहू ! इनमें से एक तो बाबा गोमती पगरि जी ने भेजा और दूसरा भैरोनाथ योगी के यहां से आया है। और यह धागा मैंने एक महन्त जी से लिया है, और यह पंडित रुद्रमणि जी ने दिया है कि जो मंत्रशास्त्र में बड़े प्रवीण और सारी काशी भर में सिद्ध गिने

जाते हैं। सो तू इन सबको लेकर आदर से बांध, इनकी दया से बालक की रक्षा रहेगी।

भाग्यवती ने हंस के कहा, ऐय्या! यह तो तुमने बडी दया की नहीं तो मुझे बालक की आप रक्षा करनी पडती। अब न तो कुछ शीत उष्ण मे बचाव करना पडेगा और न भूख-प्यास के समय दूध ही चुघाना पडेगा, ये सिद्ध लोगो के दिए हुए धागे और मन आप ही बालक की रक्षा करेंगे।

सासु ने कहा, नहीं बहू! दूध चुघाये बिना बालक कब पल सकते हैं?

भाग्यवती ने कहा, अम्मा! मैं क्या जानूं तुम ही ने कहा था कि ये धागे और तावीज के बांधने से बालक की रक्षा रहेगी सो यदि बालक पिलाने से ही पलते हैं और उनकी रक्षा भी अपने ही हाथ से करनी पडती है तो फिर इन धागे तावीजो के बांधने से क्या प्रयोजन सिद्ध होवेगा?

सासु ने कहा इनके होने से एक तो किसी की नजर नही लग सकती और दूसरी किसी देव परी भूत की छाया पछाया नहीं हो सकती कि जिससे बच्चो को बडी भारी जोखम है।

भाग्यवती बोली, जब लडकी हुई थी तब तो तुमने मुझे कोई यन्त्र और धागा बांधने को नही दिया था वह आज लो जीती जागती और भली चगी है। न तो उस पर किसी की नजर ही लगी और न वह आज लों किसी देव परी वा भूत की जोखम मे आई देखी गई है, फिर आप यह तो बताइए कि उसकी रक्षा किसने की?

सासु ने कहा, बहू! बचानेहार तो सब का भगवान् है, ये बातें केवल जगत की मानी हुई होती हैं।

भाग्यवती बोली, तब तो फिर तुम ही सोचो कि इस फून

के समान कोमल गात बच्चे को इनके बाँधने से बोझ उठाने और कभी-कभी इनके चुभ जाने के बिना और क्या लाभ होगा ?

सासु ने कहा, अच्छा बहू ! तुम जानो मैं तो तुम्हारे ही भले के लिए लाई थी, यदि इनमें तुमको कुछ फल नहीं दिखाई देता तो फेंक दो, पर मैं एक बात तुमसे पूछती हूँ कि क्या जब किसी बालक को कुछ कष्ट खेद हो तो झाड़ा टोना यंत्र मंत्र कुछ नहीं कराना चाहिए ?

भाग्यवती बोली, मां जी ! क्या मैं कुछ तुमसे स्यानी हूँ कि जो तुमको कुछ सिखाने बैठूँ पर आप इतना विचारें कि कष्ट और खेद छोटे बड़े सब जीवों को उदर विकार अथवा रुधिर विकार से हुआ करता है कि जो दोनों के शरीर के भीतर रहते हैं फिर धागे टोने झाड़ फूँक यंत्र मत्र आदि बखेड़ों से कि जो शरीर के ऊपर और बाहर बाँधे और पढ़े जाते हैं क्या फल होता है ? हाँ जो वस्तु भीतर अर्थात् उदर और रुधिर को शुद्ध करदे उसके खाने बरतने का कुछ डर नहीं। सो यह शक्ति किसी औषधि में हो तो हो और किसी में नहीं देखी जाती।

सासु बोली, तब तो तुम भूत-प्रेत और किसी देवी-देवता को भी मनुष्य में आ जाना काहे को मानती होगी।

भाग्यवती ने कहा, मैं तो मान भी लूँ यदि कोई मुझ को मेरी आंखों से दिखा देवे। अम्मा ! बहुत तो यही देखने में आता है कि क्या तो स्त्री और बालक अपने घर के लोगों को डराने के लिए कुछ बहाना बना बैठते है। और क्या कभी-कभी कोई रोग भी होता है कि जिसको अज्ञानी लोग भूत चुड़ेल का आवेश मान लेते हैं और जो तुमने मनुष्य के देह में किसी देवी-देवता का

आना कहा, इसको तुम आप ही विचार के कहो कि मनुष्य के मल मूत्र-युक्त महा मलीन और अपवित्र देह मे परम पवित्र देवी देवता काहे को प्रवेश करते होंगे ?

सासु यह सुन के चुप हुई और अपने पति से कहने लगी हमारी छोटी बहू भगवान् रखे बडी ही चतुर है, इसी कारण ईश्वर ने छोटी सी अवस्था मे धन, संतान और सब भांति का सुख दे रखा है।

पंडित जगदीश जी ने कहा हम तो सदा उस परमात्मा का धन्यवाद करते हैं कि जिसने हमारे घर मे भाग्यवती भेजी। हमको ईश्वर ने सारे सुख इसी के साथ दिखाए हुए हैं पर अब मेरे मन मे यह संकल्प बहुत उठता है कि तुम सब को साथ लेकर कुछ दिन तीर्थ यात्रा करू ।

पंडितानी बोली, वाह ! यह तो आपने मेरे मन ही की कही। अब हरिद्वार का कुम्भ नगीच आया है चलो पहले वहां का स्नान कर आए फिर कभी दूसरी ओर देखा जाएगा।

पंडित जगदीश जी ने पहले तो रेल पर चढ के चलने की इच्छा की थी पर फिर भाग्यवती के कहने से यह दृढ हुआ कि, घरों से चलना नित्य नित्य नही हो सकता, यदि रेल पर चलेंगे तो अच्छे-अच्छे नगरों और क्षेत्रो का दर्शन स्पर्श नही हो सकेगा, सो योग्य है कि अपने घर की बहली और पालकी और घोडे संग ले चलें, एक तो भाडा नही देना पडेगा दूसरा जहा चाहा एक दो दिन ठहर पडे।

यह बात सब ने अच्छी मानी और घर का ठाठ लेकर सब त्यार हो गए। दोनो बडी बहुओ सासु और भाग्यवती बहली मे चढने ठहराए और पंडित जगदीशजी के लिए पालकी हुई। शास्त्री मनोहरलाल के लिए बडा घोडा और छोटे टट्टू पर आवश्यक

कपड़ा चीथड़ा लादने की युक्ती लगाई। और जितनेक भाण्डे बर्तन आवश्यक थे वे गिन के कहार को सम्हाले और कहा तुम रसोई बनाने वाले मिश्र के साथ अगाड़ी विश्राम पर चल के अपने चौके बर्तन का उद्यम कर छोड़ा करना। फिर मिश्र से कहा, देवता! हमारे पहुँचने से पहले तुमको चाहिए कि किसी मोदी से सोधा सामग्री लेकर रसोई का उद्यम कर छोड़ा करो हम पहुँचते ही सारा नामा चुका दिया करेंगे।

फिर पंडित जगदीश जी ने भाग्यवती के कहने से, थोड़े रुपये मनोहरलाल के पल्ले बंधवा के कहा कि मार्ग में जो कुछ नित्य का खरच पड़े उसका लिखना और मोदी का निपटाना यह काम नित्य तुमको करना पड़ेगा और जो रुपए सारी यात्रा के लिए साथ लिए थे उन सब के नोट मंगवा के पास रखे। पंडित जी के दोनों बड़े बेटे तो घर की रखवाली में रहे और आप पंडित जी सारे परिवार समेत यथा रीति काशी से बाहर हुए।

पहले विश्राम पर पहुँचते ही, सांझ के समय प्रथम तो मोदी का नामा चुकाया और फिर मिश्र और कहार को कहा तुम दोनों सो रहो क्योंकि आधी रात लो तो हम सब बातचीत करते हुए जागते रहेंगे उसके पीछे तुम दोनों को जाग के डेरे का पहरा देना पड़ेगा।

इसी प्रकार चलते २ जब प्रयाग में पहुँचे तो वहां हरिद्वार के जाने वाले लोग बहुत इकट्ठे हो गए। उस भीड़-भाड़ को देख के भाग्यवती ने अपने घर के सब लोगों को सुनाया, मेले में ठग-उचक्के बहुत होते हैं, योग्य है कि सब कोई चौकसी से रहे, क्योंकि भीड़ बुरी होती है। चाहे रात के समय मिश्र और कहार पहरा देते भी थे पर भाग्यवती एक दो बार उठ के आप भी डेरे का ध्यान कर लिया करती थी।

एक दिन की बात है कि प्रयाग से कुछ आगे चलके एक गांव मे दुपहर हो गया। मेला बहुत होने के कारण गांव के भीतर तो उतरने को स्थान न मिला, वृक्षो के नीचे बाहर निवास करना पड़ा। भाग्यवती समेत स्त्रियां तो सब तबू मे बैठी थी और पंडित जी पालकी के बीच सोये पड़े थे। उस समय शास्त्री जी ने कहार के संग रसोइए से कहा, मिश्र जी! हम एक काम को जाते हैं, तुम ने डेरे की चौकसी रखना। ज्यो ही शास्त्री जी डेरे से बाहर हुए एक उचक्के ने आकर खूंट मे छोटे टट्टू को खोल दिया। जब टट्टू थोडी दूर गया तो उसी उचक्के ने सामने आके मिश्र से कहा, अरे देखता क्या है भाग, तुम्हारा टट्टू जाता है। मिश्र तो उधर भागा आप पीछे से बड़े घोड़े पर लात दे उड़ने लगा। जब भाग्यवती की दृष्टि पड़ी कि घोड़ा जाता है तो सोची कि हम स्त्रियो मे से तो न कोई तम्बू से बाहर निकल सकती है और न कोई ऊंचे से पुकार सकती है, फिर क्या युक्ति करू कि जिस से घोड़ा बच जाए। तब तो यह बात सोची कि अपनी लड़की के हाथ मे सोने के कड़े पहना के उसे तम्बू के पिछली ओर छोड दिया। ज्यो ही उचक्के ने देखा कि घोड़ से अधिक मोल के कड़े पहने हुई किसी की छोटी सी लड़की अकेली खेल रही है, पहले इसी को उठाऊं तो घोड़ा छोड उसके पास आया, लड़की उस नए मनुष्य को देख के डरी और ऊंचे से चिल्लाई तो तुरत पण्डित जी जाग के पालकी से निकल भागे। आते ही उचक्के को पकड़ लिया और थाने पहुंचाया। जब यह सारा वृत्तान्त घर वालों ने सुना तो रसोइए के भूसपन और भाग्यवती की चतुराई पर सब को आश्चर्य हुआ। अब और सुनिए कि, इनका डेरा तो प्रतापी दिखाई देता ही था, चार-पांच उचक्के वहीं से इनके पीछे हो लिये। जहां इनका डेरा ठहरा करता वही वे ठहर जाते और जब चलते तो चल पड़ा करते

थे। डेरा तो उनका नित्य इनके निकट हुआ ही करता था परन्तु अब पंडित जगदीश जी के साथ इन्होंने थोड़ा प्रेम भी उत्पन्न कर लिया। कभी २ पंडित जी के पाँव दबाने लग जाया करते और कभी पंखा हांकने लग जाते। एक दिन जो पंडित जी ने उनके स्थान और जाति पूछी तो किसी गाँव के वैश्य बताया और कहा कि हम भी श्री हरिद्वार जी को जाते हैं।

एक दिन जो किसी सराय में स्थित हुई, तो अधिक प्रेम बढ़ाने और सरलता दिखाने के लिए उनमें से एक ने कहा, पंडित जी महाराज! आप बड़े प्रतापी और धनवान् हैं, इस कारण मैं कह तो नहीं सकता पर हमारी सब की इच्छा है कि यदि आप मान लें तो आप के डेरे के लिए भी आज रसोई कच्ची पक्की जैसी आप कहें हमारी ओर ही बन जाए।

पंडित जी ने कहा, है तो ठीक! पर हम तो कभी किसी का नौता माना नहीं करते।

वैश्य बोला, नारायण कहो महाराज! हमारी कहाँ सामर्थ्य जो हम आपको नौता (न्योता) जिमाएं, यह तो प्रेम की बात है। जब आपका मन चाहे आप हम को जिमा दें, हम बड़े आनन्द से आपके यहाँ जीम लेंगे।

पंडित जी ने इस विषय में जब भाग्यवती से पूछा तो उसने कहा, किसी का निरादर करना तो अच्छा नहीं होता पर विदेश की बात है, क्या जाने किसी के मन में क्या भरा है, पर आप उनसे यह कह दें कि हम अपने ब्राह्मण के बिना किसी के हाथ की रसोई नहीं पा सकते?

वैश्यों ने इस बात को और भी अच्छी समझ के आपस में विचारा कि, इस समय तो हमने केवल अपनी प्रीति और सरलता ही दिखानी है. इन्हीं का ब्राह्मण बनावे। तुरन्त सारी

सामग्री मगवा दी और रसोई बनने लगी। जब रसोई जीम चुके तो एक-एक बीड़ा पान का सब को दिया। अब अत्यन्त प्रेम बढ़ गया और आपस मे किसी को कुछ भ्रम न रहा। पंडित जी के यहाँ की कोई वस्तु लेने खाने मे न कुछ उनको संशय होता और न उनके यहाँ के पदार्थ खाने-पीने मे इनको कोई सदेह खड़ा होना था। चाहे वे चोरी दाँव तो बहुतेरा लगा चुके पर भाग्यवती की चतुराई से बड़ा भय करते थे।

एक दिन उन्होने यह युक्ति निकाली कि रसोई बनाने वाले मिश्र से किसी भाँति गठ जाए तो सब काम ठीक हो जाएगा। यह सोच के कभी तो उसको एक सीधा दे दिया, और कभी कोई धोती वा अगोछा पहना देते। कभी भोजन जिमा के दो चार आने दक्षिणा पकड़ा दी और कभी किसी नदी वा ताल पर नहा धो-के दो पैसे पकड़ा देने लग गए।

जब देखा कि ब्राह्मण देवता अब हमारे हो गए हैं तो एक दिन पूछा, देवता! पंडित जी आपको क्या दरमाहा देते हैं।

मिश्र ने कहा, सेठ जी! मैं दो चार वर्ष से इन के घर मे नौकर हूँ और दो रुपए महीना और रोटी कपड़ा मिलता है। फिर बोला, पंडित जी तो बड़े अमीर और कभी दो के चार भी पकड़ा दिया करते हैं, पर इनकी बहू बड़ी चतुर और लेखे धारी है, वह एक कौड़ी भी किसी की ओर अधिक नहीं जाने देती।

चोरों ने एक मुट्ठी किसी अन्न की दे के कहा, लो मिश्र जी! ये दाने हमको बैजनाथ जी की झाड़ा से मिले थे, इनका यह स्वभाव है कि जो कोई अपने हाथ से किसी को खिला दे वह उसका दास हो जाता है। सो तुम किसी प्रकार यह दाने सारे परिवार को खिला दो, सब तुम्हारे दास हो जाएगे और तुम्हारे बिना किसी दूसरे का कहना इस घर मे न चलेगा।

मिश्र जी ने वह दाने दाल में मिला के सब को खिला दिए और वही दाल आप भी खाई, जब चार घड़ी बीती तो सब के सब उल्लू बन गए। किसी को कुछ सुध-बुध न रहीं।

जब चोरों ने देखा कि अब किसी को सुध-सम्हाल नहीं और भाग्यवती भी मूर्छित पड़ी है तो सारे डेरे को लूट कर जो कुछ पाया लेकर लम्बे हुए। पंडित जी का परिवार उस दिन तो मूर्छित रहा जब दूसरे दिन सुध आई तो क्या देखते हैं कि न कोई बर्तन है न कपड़ा और न वे वैश्य ही कहीं दिखाई देते हैं, जो कुछ ठाठ था सब लुट गया।

भाग्यवती को जब कुछ सुध आई तो बड़ी पश्चाताप करने लगी और बोली कि मैं तो पहले ही दिन से उन पर विश्वास नहीं करती थी और इसी कारण मैंने उस सराय में अपने ब्राह्मण के हाथ से भोजन बनवाया, पर न जाने उन्होंने अब हम को क्या खिलाया और कैसे खिलाया ? हम तो अपने को तब मूर्ख ठहराएं कि यदि कोई वस्तु उनके हाथ से खाई हो। यह तो ऐसा जाना जाता है कि उन्होंने मिश्र से मिल के अथवा इससे चोरी कोई अमल की वस्तु हमारी रसोई में मिला दी होगी। यदि ऐसा न होता तो हम एक ही समय सब के सब मूर्छित न हो जाते।

भाग्यवती ये बातें करके टहलती २ उस स्थान पर आई कि जहां रसोई बनाई थी। जब कुछ दृष्टि देकर देखा तो चौके में चूल्हे के पास से एक दो बीज धतूरे के गिरे पाये, जब बीज भाग्यवती ने अपनी सासु को दिए तो पंडित जी ने मिश्र से पूछा बता रे ! तूने यह धतूरा चौके में काहे को रखा था ? मनोहर, जा इस चमार के जने को थाने में ले जा और कह कि इसने हमको विष खिलाई और ठगों से मिल के हमारा डेरा लुटवाया।

मिश्र ने हाथ जोड के कहा, महाराज ! मैं क्या जानूँ कि ये धतूरे के बीज हैं, मुझे तो उन बनियों ने यह कह के दिए थे कि पोस्त के दाल मे डाल देना बहुत अच्छी बन जाएगी और यदि मैं इनको विष समझता तो आप ही क्यों खाता ?

भाग्यवती ने उसकी बोल-चाल से समझ लिया कि चाहे कोई कारण हो पर इस मिश्र ने इसको धतूरा समझ के हमे नही खिलाया। बहुत क्या विचारें पर यह उनके धोखे में आ गया। सो चाहिए कि आगे को पक्का कर दूं। यों सोच के बोला, मिश्र जी ! अपराध तो तुम ने ऐसा ही किया था कि कुछ दिन जलखाना दखने, पर अब हमको तेरे बुढापे पर दया आती है ! अच्छा जा ! अब तो पडित जी क्षमा करते हैं पर आगे को कभी भी किसी की दी वस्तु किसी के भोजन में न मिलानी चाहिए।

फिर अपनी सासु से बोली, ऐय्या ! आप कुछ चिन्ता न करें, विदेश म हम पर उपद्रव तो बडा ही उठा था परन्तु ईश्वर ने बडी दया की कि वे चोर, बनेनो के थैले और छोटे टट्टू और एक बड़ी दरी और गाडी के बैलो के बिना हमारा और कुछ नही ल गए क्योंकि नोट के कागद और सब का गहना-पत्ता और रोकडी जहा डरा हुआ करता हैं मैं सब कामो से पहले थैलो मे भर के एक गढे मे दबा दिया करती हूँ, सो ईश्वर की दया स वह सब कुछ वैसा ही धरा है और गाडी भी खडी है। तब तो सब के मन प्रसन्न हुए और बोले, इस मिश्र ने तो हमारे प्राण भी खोए थे और पदार्थ लुटवाने मे भी कुछ घाटा नही रखा था, पर तुम्हारा भला हो तुमने अपनी बुद्धि से सब का गहना-पत्ता और नोट बचा छोड नही तो भीख माग के घर पहुँचना पडना। चलो घोडे, टट्टू, बैल और दरिया तो और भी

बहुतेरे बना लेंगे पर ईश्वर की बड़ी भारी दया इस बात में समझनी चाहिए कि तुम्हारा लड़का-लड़की कुशल से रहे।

भाग्यवती ने कहा अब यहां रहना अच्छा नहीं, कोई छोटे-मोटे बैल लेकर गाड़ी को चलती करनी चाहिए। पंडित जी के पास पालकी है और हम सब मिल के गाड़ी में निर्वाह कर लेंगे, रहा कपड़ा सो कहार अपनी बहंगी पर रख लिया करेगा।

जब वहां से चलने लगे तो भाग्यवती ने सब से कहा, मैंने पहले कहा था कि मेले की भीड़ बहुत है और इसमें ठग उचक्के बहुत होते हैं। और अब तुम सब ने इस बात की परीक्षा भी कर ली है सो चाहिए कि अब अगाड़ी की यात्रा बड़ी चौकसी से पूरी करो। यात्रा उसी पुरुष की सुख से पूरी होती है कि जो खाने-पीने और सोने-जागने में चौकस रहे। खाने-पीने में चौकस रहना केवल इस बात का नाम नहीं कि किसी के हाथ से न खाना-पीना चाहिए वरन् खाने-पीने में चौकसी इस बात का भी नाम है कि खाने-पीने में संयम रहे। बहुत लोग हैं कि विदेश में आके पथ्य-कुपथ्य कुछ नहीं विचारते, जो कुछ पदार्थ नया देखते हैं उसको अवश्य खा-पी लेते और रोगी हो जाते हैं। सो चाहिए कि जो मनुष्य विदेश में निकले पहले तो पथ्य-कुपथ्य विचार के खाए और फिर थोड़ा खाए।

एक बात और भी है कि यात्रा में सबकी वृत्ति तमोगुणी होती है और ठीक समय पर अन्न, जल और सोना, जागना न मिलने के कारण मन बहुत तपा हुआ रहा करता है, सो बुद्धिमान को चाहिए कि धैर्य और विचार को हाथ से न छोड़े। और यह बात भी बहुत ही आवश्यक है कि यात्रा में जो लोग अपने संग हों उनको कभी दुःखी न करे और उनके दुःख-सुख में उनका साथ निबाहे। भाग्यवती ये बातें करती हुई चली जाती थी कि आगे एक सरोवर आ गया। सब को यह इच्छा हुई

कि मिश्र और कहार ने रसोई का उद्यम आगे जाके कर ही रखा होगा सो योग्य है कि हम सब यहाँ स्नान कर चलें।

एक तीर पर गाड़ी खड़ी कर के जो उतरने लगे तो भाग्यवती ने कहा, अम्मा! वह देखो सामने जो मनुष्य सरोवर में स्नान करने को बैठा है उसने कैसी चूक की बात की है, मैं देख रही हूँ कि उसने रुपयों की एक गजिया[1] कटि से खोल के ताल के तीर पर धर दी और ऊपर अपनी चादर डाल के उसको छिपा दिया है। मुझे निश्चय है कि यदि किसी उचक्के की दृष्टि इस पर पड़ गई होगी तो तुम्हारे देखते ही उठा लेता है। भाग्यवती ये बातें कर ही रही थी कि एक उचक्के ने अपने कपड़े उसके पास उतारे और स्नान को उद्यत हुआ। जब देखा कि उस गजिया वाले की दृष्टि थोड़ी सी अपनी चादर पर से टली गजिया समेत चादर को उठा के तो झट अपने साथी को आगे पकड़ाया और एक उसी रंग-ढंग की दूसरी चादर अपने पास से उस स्थान पर रख दी। यह बात देख के भाग्यवती की सासु बोली, ऐहे बहू! अब यह निगोड़ा इसको ले ही जाएगा? और यात्री की यात्रा पैसे बिना कैसे पूरी होगी?

भाग्यवती ने कहा, तो और क्या! फिर इसने इतनी भीड़ मे अपने रुपए खोल के ताल के तीर पर क्यों धरे थे?

पंडितानी बोली, खोल के न रखता तो गजिया न भीग जाती?

भाग्यवती ने कहा, आहा! आप भी अच्छी कहती हैं, क्या तुम यह नहीं सोचती हो कि गजिया का भीग जाना अच्छा था या जड़ से खोई जाना?

---

१ बांसुली या नोला भी बोलते हैं।

सासु ने कहा, यदि इसके भाग्य में गंजिया का खो जाना ही लिखा था तो यह रोक कैसे सकता ?

भाग्यवती बोली, ग्रां हां ! मैं यह तो नहीं कहती कि भाग पर भरोसा नहीं रखना चाहिए पर यह तो सब को समझ में आता है कि यदि वह कटि से अलग न करता तो गंजिया खोई कभी न जाती। सो मनुष्य को चाहिए कि जहाँ लों हो सके अपनी चौकसी में घाटा न रखे आगे भगवान की इच्छा।

जब स्नान ध्यान करके इन्होंने अपनी गाड़ी आगे को चलाई तो विश्राम स्थान पर पहुँचे। वहाँ क्या देखते हैं कि एक वृक्ष के नीचे चौकाभाण्डा किए हुए इनका कहार उदास सा बैठा है। पंडित जी ने पालकी से उतरते ही पूछा, अरे मिश्र कहाँ गया है ? क्या अब लों रसोई नहीं चढ़ाई ? उसने कहा महाराज ! हम सवेरे से इस छाया में अपना चौका लगा के बैठे थे, इतने में एक लाला दस-बीस मनुष्य की भीड़ लेकर यहाँ आ उतरे थे। हमने बहुतेरा समझाया कि हम सबसे पहले यहाँ उतरे हैं और अब इस स्थान को हम नहीं छोड़ेंगे, पर उसके नौकरों ने हम को मार-पीट के यहां से उठाना चाहा। हमने भी भगवान् की दया से आपका लौन खाया है, ऐसे घूंसे लगाए कि नौकर तो क्या उनके लाला भी जन्म भर नहीं भूलेंगे, सो फिर जो उनका कोई नौकर रोता हुआ थाने में जा खड़ा हुआ था इस कारण एक सिपाही आके मिश्र को थाने में ले गया।

पंडित जी ने पूछा, यदि किसी भले मानस ने तुम से स्थान छोड़ने को कहा था तो छोड़ के और किसी वृक्ष के नीचे हो बैठते, इतना झगड़ा क्यों बढ़ाया ?

कहार ने उत्तर दिया, महाराज ! आप भला कहते हैं; देखो तो सही एक तो मारे भीड़ के यहां ऐसा कोई रूख नही दिखाई

देता कि जिसके नीचे कोई दिवा हुआ न हो दूसरा जो स्थान हमने सवेरे से अपना कर छोड़ा था, उसको हम उनके कहने से छोड़ कैसे देते ?

पंडित जी बोले भाई है तो सच ! पर विदेश में कभी २ आप मिट जाना भी अच्छा होता है। भला कहो तो उस स्थान में क्या तुमने घर बना के बैठना था ? श्रेष्ठ तो यही था कि तुम किसी और स्थान में हो बैठते, थोड़े काल में या तो छाया हो वहाँ आ जाती और क्या वे लाला ही रसोई बना खाकर आगे को टरक जाते, अब जाओ किसी सिपाही को कुछ दे दिला के मिश्र को छुड़ा लाओ।

जब मिश्र आया तो भाग्यवती ने सासु को कहा, अम्मा ! तुम मिश्र को बुला के कहो, पहले तो तुम्हारे मूर्खपन ने हमको पतंग खिलाया और अब तुम हम को थाने पहुँचाना चाहते थे अभी तो हरिद्वार दूर है क्या जाने किस-किस झगड़े में डालोगे।

जब पंडितानी ने मिश्र को बुला के समझाया तो बोला, पंडितानी जी ! तुम कहती तो ठीक हो, पर एक बात हम मूर्खों की भी याद रखो, विदेश में ऐसे ढीले और डरपोक बन रहना भी अच्छा नहीं होता। देखो यदि हम उसके आगे ढीले और दीन ही रहते तो वह हमारे भाण्डे बर्तन भी छीन लेता। आपकी दया से हम सब कुछ जानते हैं। जहाँ ढीले होना चाहिए वह स्थान भी हमसे भूला हुआ नहीं और न यही छिपा हुआ है कि जहाँ तकड़े हो जाने से काम निकलता है।

यह सुनके भाग्यवती बड़ी प्रसन्न हुई और बोली, आहा अम्मा आज तो मिश्र ने बड़ी बुद्धि की बात कही। मैं तो इसको सीधा-सा ही जानती थी पर क्यों न हो अन्त को तो बनारस का पानी पिया हुआ है ना !

इन बातों के पीछे डेरा कूच किया, जब थोड़ा आगे बढ़े तो गाड़ी में बैठे-बैठे भाग्यवती ने सासु से पूछा, ऐय्या ! तुम तो कई बार हरिद्वार गई होगीं, मुझे यह तो बताइए कि यह जो इतना बड़ा मेला इस एक ही सड़क पर दिखाई देता है यदि चारों ओर से इतना ही आया होगा तो वहां रहने का स्थान काहे को मिलता होगा ?

सासु बोली, नहीं बहू मैं तो पहले कभी नहीं गई, पर मैंने यह सुना है कि वहाँ रहने के लिए बहुत स्थान बने हुए हैं। कई ऊँचे-ऊँचे मन्दिर तो वहां राजा लोगों के बनाए हुए हैं और अनेक स्थान वहां साधु लोगों के बन रहे है जो उन राजाओं से भी अधिक शोभा देते है ।

भाग्यवती बोली, फिर वे साधु काहे को हुए वे तो बड़े भारी सेठ समझने चाहिए कि जिनके स्थान ऐसी बड़ी भारी लागत के आपने सुनाए। भला आप यह तो बताओ कि वे साधु लोग इतना धन कहां से और कैसे इकट्ठा कर लेते हैं।

सासु ने उत्तर दिया कि बहू ! ये लोग राजाओं से मांग के भी कुछ धन ले जाते हैं और सहस्रों रुपयों का व्यवहार भी किया करते हैं।

भाग्यवती बोली,फिर उनको आप साधु क्यों समझती हैं कि जो राजाओं से धन मांग के लाते हों ? साधु तो वही है कि जो ईश्वर के प्रेम-मग्न रहे और शरीर निर्वाह के बिना और किसी पदार्थ की अपने निमित्त कामना न रखे। जैसा कि गीता में लिखा है :—

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति।
शुभाशुभ परित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रिय ॥

अर्थ इसका यह है कि भगवान् कहते हैं जो पुरुष न कभी

किसी वस्तु को पाके प्रसन्न होना और न प्रति द्वेष करता है और न किसी बात की सोच करना और न किसी पदार्थ की चाह करना है। और जिसको न किसी के शुभ से प्रयोजन और न अशुभ से काम है और भक्तिमान् पुरुष मेरा प्यारा है।

सासु बोली, हां बहू! जैसे तुम कहती हो वैसे साधु भी यहां बहुत आते सुने जाते हैं। जैसे कि कई साधु यहां खड़ेसरी और ऊंचे भुजा वाले आते हैं। और बहुत वहां ऐसे आते हैं कि जो झूले पर लटकते रहते और कभी अन्न नहीं खाते एक पाव भर दूध पी के निर्वाह करते हैं। कई यहां वैसे भी सुने जाते हैं कि जो सदा नंगे रहते और शीत काल में जलधारा में बैठते और ग्रीष्म में पंचाग्नि तपते हैं। और कोई-कोई ऐसे भी भगवान् के प्यारे यहां आते सुने हैं जिन्होंने जन्म भर राख में लेट के दिन पूरे किए हैं।

भाग्यवती बोली, मां जी! मैं तो इन लोगों को भी भगवान् के प्यारे और साधु कभी नहीं कहूंगी कि जो आपने सुनाए हैं। क्योंकि ये सारे स्वांग पेट भरने के लिए नाच रूप हैं कुछ कल्याण के निमित्त नहीं जैसा कि शास्त्र में लिखा है :—

> काषायग्रहणं कपालभरणं केशावली लुञ्चनम्।
> पाषण्डव्रत भस्मचीवरजटा धारित्वमुन्मत्तता।
> नग्नत्वं निगमागमादिकविता गोष्ठी सभामण्डले।
> सर्वं चोदरपूरणार्थनटनं न श्रेयसां कारणम्॥१॥

इसका अर्थ है कि गेरुए कपड़े रखना और मनुष्य की खोपड़ी हाथ में रखना, केशों का उखाड़ना और पाखण्ड के व्रत धारण करना, धूली में लिपटे रहना और फटे पुराने कपड़े और जटा का बोझ उठाये रहना, वदन से नंगे रहना और बहुत से वेद-पुराणों की कविता और सभा-गोष्ठी करना, इत्यादि सारे

काम उदर भरने के निमित्त नृत्यकारी रूप हैं कल्याण का कारण नहीं, कल्याण का कारण तो केवल ईश्वरभक्ति और वैराग्य है।

इस प्रकार की बातचीत करते-करते ऐसे स्थान में पहुँचे कि जहाँ हरिद्वार केवल एक विश्राम पर था। तड़के ही जो भाग्यवती अपने लड़के को लेकर किसी आवश्यक काम के निमित्त अपनी गाड़ी से उतरी तो भीड़ के कारण भूल के गाड़ी से थोड़ा सरक गई। जब गाड़ी वाले इसको चढ़ाने के लिए लपक के कुछ आगे हुए तो यह बहुत पीछे रह गई। मेले की भीड़ ऐसी नहीं थी कि किसी भूले भटके को मिलने देती। भाग्यवती ने बहुत ही उद्यम किया पर गाड़ी का कुछ पता न लगा। अब गाड़ी तो सैकड़ों गाड़ियों से मिली-जुली हरिद्वार में जा पहुँची और भाग्यवती पाओं से नंगी लड़के को उठाए हुए अकेली पीछे ढूंढती रह गई। उस समय सैकड़ों गाड़ियां मेले में चल रही थीं जिसको पूछती कि हमारी गाड़ी किधर गई है। पास न कोई पैसा था न रुपया और न कोई गहना कि जिस को बेच के उस दिन का भोजन ले लेती। उस दिन भाग्यवती ने अपनी भूल मान के मन में यह भी कहा कि मैंने आज लों कोई यात्रा नहीं की थी परन्तु अब यह भी परीक्षा हो गई कि चाहे एक दिन की यात्रा भी हो परन्तु कुछ पैसा रुपया अपने साथ सब को अवश्य रखना चाहिए। उस दिन भाग्यवती को जो कष्ट हुआ ईश्वर ही जानता है। छोटा बच्चा अलग दुखी करता और पाओं में आबले न्यारे क्लेश दिखा रहे थे। चलने के कारण एड़ियां तो चिड़ी के बच्चे की नाईं लाल निकल आईं और मारे प्यास के मुख उबलता जाता था। धूप के ताव और धूल ने उसके कोमल मुख को अत्यन्त व्याकुल कर दिया और मारे सोच और संकोच

के मन की वृत्ति छिन्न भिन्न होती जाती और धैर्य सन्तोष हाथों से निकलता जाता था।

यद्यपि घर के लोगों से बिछड़ के भाग्यवती की ऐसी बुरी दशा हुई परन्तु मन की दृढ़ता को हाथ से न छोड़ा। चित्त में यही उद्यम और निश्चय रखा कि अब जा मिलती हूं। कभी-कभी यह भी विचारती कि मैंने जन्म भर कभी भूख प्यास को नहीं सहारा और न कभी एक कोस लों भी पांव से चली और न कभी पाभर बोझ उठाया था। ईश्वर बड़ा गर्व प्रहारी है कि जिसने भूख प्यास का सहारना और पैदल चलना और लड़के का बोझ उठाना, ये तीनों बातें मुझे एक ही दिन में दिखा दीं। फिर कहती उसने मुझे रीति से यह शिक्षा दी है कि मनुष्य को चाहिये कि शरीर को अत्यन्त सुखी न रखे। कभी कभी भूख प्यास को भी सहारा करे और अपने पांव से कोस दो कोस चलना भी अंगीकार करे। और कुछ न कुछ बोझ उठाने की प्रकृति भी तन और मन को अवश्य सिखाना चाहिए। वैद्य लोग बड़े बुद्धिमान् हैं कि जिन्होंने अपने ग्रन्थों में शरीर की आरोग्यता के निमित्त नित्य का टहलना अथवा मोगलों मुग्दर का फेरना श्रेष्ठ लिखा है। ये बातें कहती और सोचती चली जाती थी कि एक मन्दिर दिखाई दिया। तुरन्त उसके निकट जा खड़ी हुई, और सोचने लगी कि यदि मुझे आज कुछ खाने-पीने को न मिला तो कल मेरी छाती में बालक के लिए दूध नहीं रहेगा। सो अपने खाने-पीने का तो मैं एक दो दिन हठ भी कर सकती हूं पर बालक को भूखा रखना अच्छा न होगा। इसी सोच में खड़ी थी कि उस मन्दिर के भीतर से हाथ में पोथी लिए हुए एक लड़की निकली जिसको देख इसने पूछा कि तू किसकी और कहां से आती और यह मन्दिर किसका है?

लड़की बोली, मैं वैद्य की बेटी और अपनी सभा पढ़ के

आती हूं। और यह कोई मन्दिर नहीं स्त्री लोगों की पाठशाला है।

तब तो भाग्यवती भीतर गई और वहां की पंडितानी से मिल के यह दोहा सुनाया :—

## दोहा

कौन पढ़ावत है यहाँ, का की यह चटशाल।
कौन कौन विद्या यहाँ पढ़ती हैं सब वाल॥

पंडितानी इस तुरन्त के रचे हुए दोहे को सुन कर चकित हुई और बोली कि पढ़ाया तो यहां मैं ही करती हूं और यह चटशाला सारे ग्राम के सुख के निमित्त राजा उदयसिंह जी ने बना रखी है कि जो इसी ग्राम में निवास करते हैं। विद्या यहाँ वे ही पढ़ाई जाती हैं कि जिन का राजा जी को आप अभ्यास है जैसा कि हिन्दी भाषा और संस्कृत। सो आपकी वाणी से यह तो स्पष्ट जाना गया कि कुछ पढ़ी लिखी हुई हो पर यह बताओ कि जैसे यह दोहा तुरन्त बना लिया वैसे कोई संस्कृत श्लोक भी बना लिया करती हो वा नहीं? और यह भी बतलाना चाहिए कि आपका नाम क्या है और कहाँ से आती हो और अब इच्छा किधर की है।

भाग्यवती ने तुरन्त ही यह श्लोक पढ़ के उत्तर दिया :—

अहं भाग्यवती देवी वाराणस्यां समागता।
हरिद्वारं प्रयाम्यद्य विप्रयुक्ता स्वबन्धुभिः॥

अर्थ इसका यह है कि हे देवी! मैं भाग्यवती नाम ब्राह्मणी वाराणसी अर्थात् बनारस से आई और हरिद्वार को जाती हूं और आज अपने सम्बंधियों के साथ से बिछड़ रही हूं।

जब भाग्यवती ने उसके सब प्रश्नों का उत्तर एक ही श्लोक में सुना दिया तो पंडितानी ने तुरन्त राजा से जा कहा कि इस समय एक ब्राह्मणी शाला में खड़ी है, यह बड़ी ही पंडिता जानी जाती है और मैंने उसको आप देखा है कि वह भाषा और संस्कृत के छंद और श्लोक भी झटपट बना लेती है, मैं चाहती हूँ कि आप भी उसको अवश्य देखें। उस राजा को गुणवानों के देखने का अत्यन्त प्रेम था। झट पंडितानी के साथ शाला में आए। जब पास पहुँचे तो भाग्यवती ने उठके तुरन्त यह दोहा नया रच के आशीर्वाद में पढ़ा —

### दोहा

सुख सम्पत की वृद्धि हो, उदय रहे यशमान्।
बल विद्या की जय सदा, उदयसिंह बलवान्॥

पण्डितानी बोली, देवी भाग्यवती! हमारे राजा जी भाषा छन्दों को भी बहुत अच्छा समझते हैं, परन्तु मेरी इच्छा है कि जिस से तुम्हारी सारी व्यवस्था इनको प्रतीत हो जाए ऐसा कोई संस्कृत श्लोक बना के सुनाओ।

भाग्यवती ने उसी समय यह श्लोक नया बना के पढ़ा कि जिस में भाग्यवती की सारी दशा और विपत्ति प्रकट होती थी —

राजन्नद्य गतास्सर्वे मदीया ये धना क्वचित्।
स्वपुत्रदुःखनिवृत्त्यर्थमागताहं त्वदन्तिके॥

अर्थात्—हे राजन्! आज मेरे सब सम्बन्धी कहीं भूल गए हैं, अपने पुत्र का दुःख मिटाने के लिए तुम्हारे पास आई हूँ।

राजा यह सुन के बहुत प्रसन्न हुए, और सारी शाला के सामने भाग्यवती के गुण विद्या और शील की श्लाघा करने

लगे। फिर भाग्यवती को स्नान भोजन कराने के अनन्तर इक्कीस रुपया भेंट दे कर अपने पुरोहित और रथवान् को आज्ञा दी कि इन पंडितानी जी को हरिद्वार पर पहुँचा के जब लों इनके सम्बन्धी न मिलें सेवा-टहल में तत्पर रहना। और फिर भाग्यवता से कहा कि अब तो हम आपकी आवश्यकता देख के रोकना योग्य नहीं समझते पर लौटती बार एक दो दिन यहाँ अवश्य दया करनी होगी। क्योंकि हम अभी आपके अमृत भरे वचन सुन के तृप्त नहीं हुए।

अब भाग्यवती तो रथ में बैठ के हरिद्वार में आई और इसके सम्बन्धी लोगों में से कोई पीछे को भागा और कोई मेले में ढूंढने लग रहा था। जब भाग्यवती की सासु भाग्यवती का ध्यान करके रोने लगती तो पंडित जगदीश जी कहते, मनोहर की मां हम यह तो नहीं कहते कि भाग्यवती सी बहू के बिछुड़ जाने से हमारा मन दुःखी नहीं हुआ पर उसकी बुद्धि विवेक पर हमको यह निश्चय कभी नहीं पड़ता कि वह हम से बिछुड़ के और स्त्रियों के नाईं रोती वा भूली भटकती फिरती होगी। हम को पूरा निश्चय है कि चाहे उस के पास कुछ पैसा कौड़ी नहीं पर उसने अपने बालक को भूखा कभी नहीं रहने दिया होगा और हम यह भी जानते हैं कि हम चाहे कितना ही उद्यम और यत्न करें परन्तु वह इस भीड़ में हम को कभी नहीं मिलेगी। और जब वह आप ही उद्यम करेगी तो कोई ऐसा उपाय रच लेगी कि जिसमें बिना यत्न हमारे पास पहुँच जाए।

भाग्यवती की सासु बोली, हां वह तो लुगाई ठहरी इतने बड़े मेले में हमें कहाँ ढूंढती फिरेगी, क्या उसको हमारा पता पूछते हुए लज्जा नहीं आवेगी? क्या वह आज लों कभी घर से बाहर निकली थी कि जिसको मनुष्यों से बोलने बतलाने का समागम मिला हो? भला सोचो तो सही, वह किसी से कैसे पूछेगी कि

अमुक पंडित जी कहां ठहरे हैं ? क्या वह आपका वा मेरा और मनोहर का नाम ले सकती है ?

पंडित जी ने कहा यह सब सच और वह कभी घर से बाहर भी ठीक नहीं निकली पर विद्यामान् को कोई बाहर और भीतर की बात भूली हुई नहीं होती। जो तुमने पता पूछने की बात कही विदेश में किसी से कुछ पूछने में क्या लज्जा है ? और जिस लज्जा में अपने को कष्ट हो बुद्धिमान् उसको कब सहार सकता है ? हां वह हमारा तुम्हारा नाम तो ठीक नहीं ले सकती पर लिखे-पढे मनुष्य को किसी का नाम दूसरे को समझा देना क्या कुछ कठिन होता है ?

पंडितानी ने ये बातें सुन के पंडितजी को उत्तर तो न दिया, पर भाग्यवती की चिन्ता से मन कब हटता था। अन्त को अपने सब नौकर चाकर मेले में और बाजारों में फिर भेज दिए। और बड़ी बहुओं को कहा तुम इस चौबारे की बारियों में बैठ के भाग्यवती को देखती रहो, क्योंकि सारा मेला इसके नीचे होकर निकलना है, और इसी कारण हमने इसका भाडा और स्थानों से चौगुना दिया है। फिर मनोहरलाल को कहा, बेटा तुम हरिद्वार की ठीक पैड़ी पर बैठो कि जहां सब यात्री एक बार अवश्य पहुंचा करते हैं और पंडित जी को कहा, आप चाहे बुरा मानो चाहे भला, पर मेरी तो यह इच्छा है कि कनखल और हरिद्वार की सब धर्मशाला और शिवालयों में तुम आप जाके देख आओ कि कहीं मेरी भाग्यवती आई है वा नहीं।

इधर तो पंडितानी के कहने अनुसार भाग्यवती के ढूंडने को सारे लोग डेरे से निकले उधर भाग्यवती ने मेले से बाहर अपनी रथ खड़ी करके, यह बात विचारी कि लड़के को उठाके इतनी बड़ी भीड़ में मुझे घुसना अच्छा नहीं पर कोई और युक्ति

निकालनी चाहिए कि जिससे वे लोग सुगम ही मुझ को आ मिलें। तुरन्त पांच दस पत्र कागद के मंगा के उन पर न्यारी २ यह बात लिखी कि :—

"मैं भाग्यवती कनखल और हरिद्वार के बीच में गंगा नहर के पुल पर ठहरी हूँ।"

फिर उस राजा के पुरोहित को कहा कि देवता! मेले में जो प्रधान स्थान और प्रसिद्ध धर्मशाला और शिवालय वा मुख्य क्षेत्र देखो उनके द्वार पर ये पत्र एक-एक चिपका आओ। पुरोहित उन कागदों को लेकर गया, कोई हरिद्वार की पौड़ी के पास और कोई बाजारों के चौक और कोनों पर, और कोई श्रवणनाथ के शिवालय के द्वार और कोई योगी वाड़े के माथे पर चिपका आया, कोई पत्र कुशावर्त्त ब्रह्मकुण्ड के ऊपर चिपका दिया कि जहाँ सब की दृष्टि अचानक पड़ जाती थी।

ज्यों ही वे पत्र पंडित जी और मनोहरलाल की दृष्टि में पड़े तुरन्त गंगा नहर के पुल की ओर दौड़े। जाते ही भाग्यवती को बैठी देख के अति आनन्दित हुए, रथ तो साथ ही थी। भाग्यवती को उस में बैठा लड़के को पंडित जी ने छाती से लगा लिया। जब अपने चौबारे में आए भाग्यवती ने वे इक्कीस रुपए आगे बढ़ा के सासु के चरणों पर सिर रक्खा और दोनों जेठानी को यथायोग्य पालागन कही। तब तो सब बालक को उठा २ चूमने और भाग्यवती से बिछुड़ने का वृत्तान्त पूछने लगीं। भाग्यवती ने सारा व्यवहार भूखे प्यासे रहने, और पाठशाला में आके राजा उदयसिंह को मिलने और रुपए और रथ पाने का उनके आगे प्रकट किया। वे सब सुन के आपस में कहने लगीं धन्य तुम्हारी बुद्धि और धैर्य! यदि कोई हम सरीखी लुगाई होती तो तड़प के मर जाती।

भाग्यवती ने कहा, यह तो मैं कैसे कहूं कि अपने साथ से बिछुड़ कर कोई दुखी नहीं होता पर इतनी बात चाहिए कि मनुष्य भ्रममय और उदास न हो जाए। क्योंकि बिछुड़ना, मिलना, जीतना, हारना, हानि, लाभ, ये सब व्यवहार मनुष्य के लिए ही हैं और यह भी सच है कि एक सा समय कभी नहीं रहता। कभी विपत, कभी सम्पत जीते जी प्राणी को कई बार देखने पड़ते हैं। वरन् मैं तो यह कहती हूं कि जिसने कभी विपत नहीं देखी उसको सम्पत का भी कुछ रस नहीं प्राप्त होता होगा।

अब भाग्यवती सब से कहने लगी कि मैं इस मेले में तीन चार प्रकार के क्लेश देखती हूं सो चाहिए कि जो कोई स्नान या किसी और निमित्त को नीचे मेले में जाए वह इन क्लेशों से चौकसी में रहे।

एक यह कि यहां भीड़ में उचक्के लोग यात्रियों के कान और नाक तोड़ लेते हैं सो योग्य है कि कोई स्त्री पुरुष कान में कुछ गहना पहन कर मेले में न निकले। यदि निकले भी तो कानों पर कपड़ा बांध के निकले। मैंने कल देखा कि एक पंजाबिन सोने की बालियां पहने हुए जाती थी कि भरे बाजार में भीड़ के धक्के में उचक्के ने उसके कान तोड़ लिए और वह बुच्ची होकर घर में आ बैठी।

दूसरा यह है कि भीड़ में चलना बहुत चौकसी का काम है क्योंकि मैंने देखा है कि कल एक मारवाड़ी मनुष्य बड़े बल से लोगों को कुचलता और धकेलता हुआ मेले में जाता था आगे से एक ऐसा धक्का उसको लगा कि धरती पर जा पड़ा। भीड़ इतनी बड़ी थी कि फिर ऊपर को न उठ सका और पीछे से एक ऐसा समूह लोगों का आया कि उनके पाओं के नीचे ही कुचला

गया, और भीड़ में उसका यह पता भी न लगा कि वह कब मरा और मर के उसकी हड्डियां कब पिस गई।

तीसरा ऐसे मेले में अपना डेरा भूल जाया करता है सो चाहिए कि हम सब अपने डेरे का अपने २ मन में कोई चिन्ह बना छोड़ें जैसा कि देखो, इस चौबारे की एक खिड़की टूटी हुई है और किवाड़ इसके हरे रगे हुए है और इसके सामने पुलिस की चौकी है।

चौथा यह कि यहां मेले में हाटों पर यात्री लोगों को सौदे सूत में बड़ा धोखा मिलता है। मैंने कल देखा था कि एक यात्री हाट पर बैठा मूंगा ले रहा था। जो मूगा उसके मन को भाए, भाव उनका यह तो सात रुपया तोला देता और हाट वाला दस रुपया मांगता था। इसी झगड़े में वह गाहक मूगा छोड़ के उठ खड़ा हुआ। ज्यों ही उसने पीठ फेरी हाट वाले ने उसी मेल के झूठे मूंगे निकाल के कहा अच्छा भाई आठ रुपए दे जाओ। जब उसने फिर भी यही उत्तर दिया कि, हम तो सात से कौड़ी ज्यादा नहीं देंगे, तो हाट वाला बोला चलो साढ़े सात तो दो ? जब गाहक ने फिर भी सात ही कहे तो बोला अच्छा साहेब बोहिनी का समय है. एक भले मानस से कुछ नहीं कमाया सही, लाओ तुम राजी रहो सात ही दे जाओ। उस गाहक ने मूंगे तो पहले देखे भाले हुए ही थे फिर हट के कुछ दृष्टि न की कि मूंगे वे ही हैं वा और पलट धरे हैं। लेके चल दिया। जब डेरे में आके किसी और को दिखाए तो सब झूठे निकले और तीन पैसा मोल पड़ा।

एक मैं और बात देखती हूँ कि ये लोग ब्राह्मण बने हुए, लोटा लिए, डेरे-डेरे मांगते फिरते हैं, इनसे बहुत चौकस रहना चाहिए क्योंकि इनमें बहुत ऐसे होते हैं कि यदि किसी डेरे में

कपडा, बर्तन, जूता अथवा और कोई वस्तु धरा देखें तो तुरन्त आंख बचा क उठा लेते हैं। कल की बात है कि उस सामने डेरे म कोई भिखारी भीख मागने आया तो बाहर के बराण्डे मे एक धोती सूख रही थी, डेरे वालो को आंख बचाके झट उठा ले गया।

फिर आज तडके हमारी पिछली ओर हल्ला मच रहा था कि कोई मागने वाला हमारे खेलते हुए छोटे से लडके को उठा के ले गया कि जिसके हाथो म पांच रुपए के कडे पहने हुए थे।

मैं बडी चकित हूं कि लोग अपने बच्चो को गहना क्यो पहना छोडते हैं? देखो कई बच्चे गहनो के कारण चुराए जाते और कइयो का प्राण घात हो जाता है, तुम सब को स्मरण होगा कि काशी मे छोटे लाल की गली मे के किसी वैश्य की छोटी सी लडकी जो गहना से लदी हुई रहती थी किसी पापी ने उठा के गला घोट दिया और गहने उतार लिए थे। फिर हमारी ही गली मे मिश्र सदासुख के बेटे को तुमने सुना था कि चार रुपए के कडा पर प्राण म मारा गया।

भाग्यवती की सासु बोली ऐ है बहू! क्या बाल बच्चो को लोग गहना कभी भी न पहनाया करें।

भाग्यवती ने कहा जिन गहनो से बाल-बच्चो का प्राण नाश हो, उनके पहनाने से लाभ क्या होता है? अम्मा! मैं सच कहती हूं कि गहना तो वह पहनाना चाहिए कि जो सदा बालको की रक्षा करे। सं वह गहना गुण और विद्या है। अम्मा! विद्या के समान कोई गहना नहीं, देखो जो कोई विद्या से हीन हो चाहे वह गहने कपडे से कैसा ही सजा हुआ हो उसको विद्या-वानो की सभा मे आदर नहीं मिलता। और जो कोई विद्या से विभूषित हो वह अत्यन्त कुरूप और गहने कपडे से हीन

होने पर भी आदर पा सकता है। जैसा कि नीतिशास्त्र में यह श्लोक लिखा है :—

रूपलक्षणसंपन्नाः सुशीला कुलसम्भवाः ।
विद्याहीन न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः ।।

अर्थ इसका यह है कि रूप लक्षण से सम्पन्न और सुशील और अच्छे कुल में उत्पन्न हुए पुरुष भी विद्याहीन होने से शोभा नहीं पा सकते जैसा कि सुन्दर लाल वर्ण होने से पलास के फूल गन्ध से हीन होने के कारण शोभा नहीं पा सका करते ।

इधर तो ये बातें हो रही थीं उधर से पंडित जगदीश जी ने आके कहा, लो, अब कुम्भ के स्नान ध्यान तो हो लिए और मेला सब बिछुड़ने वाला है; कहो अब तुम सब की क्या इच्छा है ? मेले से पहले उठोगे अथवा पीछे से उठना चाहते हो ?

पंडितानी ने भाग्यवती से पूछा तो उत्तर दिया कि मेले के साथ उठने में तो मार्ग में बहुत क्लेश उठाने पड़ते हैं सो योग्य है कि हम मेले से पहले ही कूच कर दें ।

यह सुन के पंडित जगदीश जी ने घर को हटने का उद्यम किया और धीरे २ कई दिन के पीछे काशी में आ प्रवेश किया। पंडित जी का आना सुन के सब भाई-बन्धु मिलने को आए। जब कोई यात्रा को बातचीत पूछता तो पंडित जी भाग्यवती की उपमा के बिना और कुछ न सुनाते क्योंकि उनके मन में यह मनोरथ था कि जैसे भाग्यवती ने यात्रा में निर्वाह किया उसको सुन के और लोग भी वैसा करना सीख जाएँ। जब कोई पंडितानी से गली में की लुगाई मिलने को आती तो वह भी अन्य लड़कियों और स्त्रियों की शिक्षा के लिए भाग्यवती ही की चतुराई की बातें सुनाने लग जाती कि जो उसने यात्रा में दिखाई थीं ।

किसी से कहती इसने हमारे घोड़े को था बचाया और किसी का महान दान की गठिया का वृत्तांत सुनाया। किसी को कहा कि यह एक दिन मार्ग में भूल गई थी परन्तु अपने गुण विद्या के प्रताप से रथ पर बैठ के आई। किसी को वह बात सुनाई कि इतने बड़े मेले में इसने हमको प्रधान स्थानों पर पत्र चिपका के ढूंढ़ लिया, किसी को इसकी और चतुराइयां सुनाई। जो कोई सुनता, भाग्यवती की बुद्धि पर चकित होता और कहता ठीक है यात्रा इसी का नाम है, और इससे वैसा ही निर्वाह करना चाहिए कि जैसा भाग्यवती ने किया। घर में तो सारा संसार ही चतुर बना बैठा है पर यथार्थ चतुर और बुद्धिमान् उसी का नाम है कि जो विदेश में पूरा उतरे।

एक दिन भाग्यवती ने अपने सब सम्बन्धियों के सामने विनती की कि यदि सब की आज्ञा हो तो मैं दस-बीस दिन अपनी मां और बाप के पास रह आऊँ। एक तो मुझे उनको देखे बहुत दिन हो गए हैं। दूसरे तीर्थ यात्रा से हट के उनके दर्शन करने भी बहुत आवश्यक हैं क्योंकि वह भी मेरे तीर्थ रूप और पूज्य हैं।

सब ने प्रसन्न होकर पालकी मंगवा दी और भाग्यवती अपने पिता के यहाँ आई। यहाँ इसको देखते ही मां ने छाती से लगा ली और पाठशाला में इसके आने का सन्देश भेज के तुरन्त उसके पिता को बुला भेजा, वे सुनते ही आए और भाग्यवती के सिर पर बड़े प्यार से हाथ रखा और कहा, बेटा! बहुत दिनों से मेरा मन तुम्हारे देखने को तड़फता था। यह बड़े आनन्द की बात है कि तुम आनन्द कुशल से तीर्थ यात्रा कर आए, फिर इसकी सास और सुसरे का क्षेम कुशल पूछ के यात्रा की बातचीत होने लगी।

उसके पीछे भाग्यवती ने अपनी मां से पूछा कि अम्मा ! सारे लोग मेरे मिलने को आए पर मैं भाई लालमणि और भावज को नहीं देखती, उन्हें मेरे आने का समाचार नहीं पहुँचा अथवा कहीं बाहर गए हुए हैं ?

मां ने कहा, बेटी मत पूछ लालमणि की बुद्धि पर हमको यह भरोसा नहीं था कि जो कुछ उसने किया ।

बहुत दिनों से अब वह अपनी लुगाई को संग लेकर हम से अलग जा रहा है । इसमें तो हमारी छाती ठीक ठण्डी है कि वह पचास रुपया महीना का नौकर और अपने घर में अच्छा खाता-पीता औरं किसी प्रकार दुःखी नहीं, पर हम को उसका अलग रहना तो नहीं भाता है न ! बेटी हमारे यहाँ कौन से बेटे-पोते हैं कि जिनको देख के मन भरा रहे । एक लालमणि ही था, घर में था तो घर का भाग्य लग जाता था, अब बाहर जा रहा है तो वह स्थान शोभा पा रहा होवेगा, अच्छा बेटी समय का यही स्वभाव है कि सब लोग अपने २ सुखों के गाहक हैं ।

भाग्यवती एक ठण्डी सांस खेंच के बोली, हाय ! हाय ! मेरे भाई में तो कोई बुरी बात नहीं थी, क्या भाबी ने उसके मन को बिगाड़ दिया है अथवा और कोई कारण हुआ ।

मां बोली, हम झूठ क्यों कहें वह तो बड़े अच्छे घर की और सैकड़ों स्त्रियों में बड़ी ही सत्पात्र है, पर हमारा लड़का ही कुसंग के प्रताप से कुछ बिगड़ रहा है ।

भाग्यवती ने कहा, हाय ! हाय ! अब वह इतना पंडित होकर कुसंगी हो गया है ! कुसंग तो एक ऐसी वस्तु है कि किसी की भी बुद्धि ठिकाने नहीं रहने देता । सो अच्छा एक बार मैं भी उसको समझा के देखूंगी । यों कह के पालकी में बैठ लालमणि के घर गई ।

लालमणि तो उस समय घर मे था नही पर उसकी स्त्री ने ज्यों ही भाग्यवती का पालकी से उतरती देखा झट दौड के छाती से लगा लिया, और बडे आदर भाव से भीतर ले गई। आनन्द कुशल और तीर्थ यात्रा का वृत्तान्त पूछने के पीछे वह ने कहा क्या करूं। तुम्हारे भाई ने मुझे सब से अलग करके बैठा दिया है, नहीं तो कब हो सकता था कि तुम्हारा सुसराल से आना सुन के मिलने को न जाती।

भाग्यवती ने कहा, भाबी जी ! तुम मेरी बडी भौजाई हो, चलो मैं ही तुम्हारे पास आ गई तो क्या घट गया ? आप यह तो बताइए कि भाई का स्वभाव अब कैसा हो गया है ?

भाबी बोली और तो सर्व प्रकार से अच्छा है पर एक दो ब्राह्मणों के छोकरे उनके आगे-पीछे लगे रहते हैं, वे जो कुछ कह देते हैं तुम्हारा भाई सो ही पल्ले बाध लेता है। उन्होंने ही यह सिखाया था कि तुम अपने हाथ से कमाते खाते हो फिर क्या कारण कि अपने मा-बाप के बीच रहते हो ? अलग रहोगे तो कुछ गहना कपड़ा भी बना लोगे, अब तो जो कुछ कमाते हो उन्ही के हाथ देना पडता है फिर सब कुछ अपने ही पास रहेगा। बीबी भाग्यवती ! ऐसी २ बातें सुना के हम को बड़ो की सेवा से अलग कर छोडा है।

यह बातें होती ही थीं कि पंडित लालमणि घर में आ निकला। उसको देख के भाग्यवती ने बहुत प्यार से राम राम कही और आनन्द कुशल पूछा। लालमणि ने राम-राम का उत्तर तो दिया, पर जिस प्रेम से भाग्यवती उठी थी वैसा प्रेम लालमणि की बोलचाल से प्रकट न हुआ। भाग्यवती ने यह व्यवहार देख के लालमणि से पूछा, भाई ! तुम लडे बोले होगे तो मा बाप से होगे, पर मुझ पर क्यो रूठ रहे हो ? देखो, मैं कैसे प्रेम से कितने काल पीछे तुम्हारे देखने को आई, तुम भागे जाते हो !

न कुछ पूछा न बताया, कहो तो सही तुम्हारा मन किधर खिंच रहा है ? और मुझे यह भी बताओ कि मां-बाप के साथ तुम्हारी अनबन कैसे हो गई ?

लालमणि बोला, अनबन की तो क्या बात है पर अलग रहना अच्छा होता है। सो देखो हम अपना शरीर लेकर अलग निकल आए हैं, न उनसे अन्न लिया न वस्त्र, और न कोई गहना कपड़ा ही उनसे मांगा है, यह जो कुछ ठाठ तुम मेरे घर में देखती हो, सब अपनी ही कमाई से बनाया है। ईश्वर ने हमको चार अक्षर दिए हुए हैं उनके प्रताप से रोटी कमा खाते हैं।

भाग्यवती बोली, भाई ! आप मुझ से बड़े और गुण विद्या में भी बड़ाई के योग्य हो, इस कारण मैं आपको शिक्षा तो कर नहीं सकती पर जो बुरा न मानो तो एक बात कहूँ ? आपने जो कहा कि हमने उनसे कुछ लिया नहीं, अपना शरीर लेकर अलग हो गए हैं, इसमें मैं यह पूछती हूँ कि यह शरीर आप ने कहाँ से मंगाया था ? क्या किसी मेले में से अथवा देशावर से मंगाया था वा किसी गली में से पड़ा पाया था ? मै तो यह जानती हूँ कि एक शरीर तो क्या किन्तु सारा संसार ही हम को माता-पिता ने दिखाया है। जो तुमने चार अक्षरों की बात कही यह भी उन ही की दया से प्राप्त हुए हैं। यदि बाल्यावस्था में वे उद्यम न कराते तो हम तुम मूक और जड़ रह सकते थे। हां यह ठीक है यह सब ठाठ आपने अपनी ही कमाई से बनाया है, पर आप यह तो सोचते कि यह कमाई करने की बुद्धि तुमने कहाँ से पाई थी ? भाई मैं सच कहती हूँ कि माता-पिता का हम पर बड़ा भारी उपकार है। और जो कुछ हम इस समय सुख संभोग करते हैं सब उन्हीं के उपकार का फल है। हाँ यह आपने सच कहा कि अलग रहना अच्छा होता है, पर इतना

सोचना चाहिए कि मा बाप ने जो आपको पालना की और लिखा पढा के इतने बडे बना दिया क्या उनका यही मनोरथ था कि स्याने होने पर तुम उनसे अलग हो बैठो ? बुरा मानो चाहे भला, पर यह तो आपकी बडी कृतघ्नता है। भाई, क्या तुम उस बात को कभी स्मरण नही करते कि हमारे छुटपन मे मा बाप ने क्या २ क्लेश उठा के हमको पाला था, खाने-पीने सोने आदि व्यवहारो मे आप दु खी रहे पर हमको दु खी न किया। क्या उनका यही फल है कि जब हम उनको सुख देने के योग्य और वे वृद्ध होकर हमसे कुछ टहल सेवा की इच्छा करें तो हम उनसे अलग हो बैठें। भला कहो तो जो माली किसी रूख को फल की इच्छा से जन्म भर पालन करके अन्त को कुछ फल न पावे उसका मन कैसा दु खी होता है ? भाई ! माता-पिता के उपकार के पलटे मे यदि हम जन्म भर भी उनकी सेवा करते रहें तो पूरे नही उतर सकते। देखो मैं तुमको स्मरण कराती हूँ, मैंने सुना है कि एक बार जब तुम छ महीने के थे, तो तुम्हारी छाती मे एक ऐसा फोडा निकला था कि जिस के अनेक उपाय करने से भी कुछ सुख न हुआ, एक दिन एक वैद्य ने अम्मा से कहा कि तुम लोन खाना छोड दो तो तुम्हारा बालक अच्छा हो जाए। क्योंकि लोन खाने से तुम्हारा दूध सलोना हो जाता है और उसके पीने से बालक का लोहू बिगड जाता है कि जिसके कारण इस फोडे का भाव मिलने नही पाता। यह सुन के अम्मा ने तीन वर्ष लोन नही खाया था। जिसका छोडना मनुष्य को एक दिन भी कठिन होता है। मैं इसमे तुमको एक धनवान् का दृष्टान्त सुनाती हूँ कि जिस से तुमको माता-पिता का उपकार दिखाई देता रहे।

किसी धनवान ने अपने पिता और माता से यह अभिमान किया था कि मैं तुम्हारी बहुत सेवा करता हूँ। वे दोनो उस

समय तो चुप रहे पर थोड़े दिन के पीछे उसको यों लज्जित और झूठा किया। माता बोली, बेटा आज तुम मेरे बिछौने पर मेरे संग सो रहो। जब उसने यह बात मान ली और उस रात को माता के बिछौने पर सोया तो माता सारी रात कभी उसकी छाती पर लातें रखती और कभी उसके सिर पर पांव धरती और कभी घुटने इकट्ठे करके उसके नाक और मुँह को फोड़ देती रही। सारी रात तो उसके बेटे ने तड़प २ के उनीदे में काटी, जब उठने का समय निकट आया तो मां ने एक लोटा पानी का लेकर उस बिछौने पर उडेल दिया। दिन जो जाड़े के थे, वह धनवान् पानी के पड़ते ही चौंक उठा और बड़े क्रोध से माता को बोला कि एक तो मैं सारी रात मारे लातों के तड़फता रहा, दूसरा कहीं से यह पानी ऐसे जाड़े में बिछौने पर आ पड़ा तू कैसी हत्यारी माँ है कि जिसने मुझे बचाया नहीं ?

माता ने हँस के कहा, बेटा ! बस एक ही रात में घबरा उठे ? तुम मेरी धैर्य को तो सोचते कि जो तुम्हारे छुटपन में कई वर्ष तुम को साथ लेकर सोती और तुम्हारी लातें सहारती रही हूँ। फिर बिछौना और पानी तो एक ओर रहा तुम नित्य मेरे मुख और सिर पर मल-मूत्र त्याग दिया करते थे और मैं कभी दुःख नहीं मानती थी। बस इसी बात पर घमण्ड करते थे कि मैं मां-बाप की बहुत सेवा करता हूँ ? तुम तो हमारी एक रात की सेवा का पलटा भी नहीं दे सके। यह सुन के बेटा बहुत लज्जित हुआ और समझा कि बेटा मां-बाप के ऋण से कभी नहीं छूट सकता है।

अब एक बात उसके पिता की सुनो कि एक सभा में बैठ के अचानक उसके पिता ने कहा, बेटा ! वह कौवा बैठा है। बेटा बोला हाँ पिता कौवा है। बाप ने फिर कहा, बेटा कौवा, पुत्र ने कहा हाँ कौवा ! जब तीसरी बार पिता ने कहा, बेटा कौवा

बैठा है तो पुत्र ने झुनझुना के कहा क्या आज आप कहीं से भाग खा आए है कि एक ही बात का पीछा नही छोडते ?

पिता न कहा,भाग तो नहीं खाई परन्तु तुम्हारी परीक्षा करता था कि देखू कितनी बार मेरे कहाए से तुम कौवा कहते हो क्योकि एक बार छुटपन मे तुमने मुझ से सो बार कौवा कह-लाया था। यह सुन के पुत्र अपनी कृतघ्नता पर बहुत लज्जावान् हुआ और माता-पिता के चरणो पर गिर के कहने लगा, सच है पुत्र चाहे सारी आयु भर टहल करता रहे पर माता-पिता का एक दिन की टहल का पलटा भी नही उतर सकता।

यह सुन कर लालमणि बोला कि ये बातें तो तुमने सब सच कही और हमने पहले भी पुराणो मे बहुत पढ छोडी है कि माता पिता का पुत्र पर बडा भारी उपकार होता है, पर हमने उनके उपकार को कुछ नही दिया, जब मिलते है तो हम उनको बडे समझ के प्रणाम करते हैं। केवल इतनी ही बात है कि हम उनके साथ रहने को अच्छा नही समझते।

भाग्यवती ने कहा, भाई ! यदि उनके साथ रह के अपने हाथो से उनकी कुछ सेवा टहल ही न बन पडी तो उनका उप-कार क्या माना ? भाई ! माता-पिता तो तीर्थ रूप होते हैं सो देखो यदि कोई तीर्थ से दूर रह के मन मे प्रेम और श्रद्धा रखता रहे तो उसको तीर्थ का फल नही प्राप्त हो सकता।

लालमणि बोला, बीबी ! मैं तो उनसे कभी अलग न होता पर वे मेरे मित्रो, श्रेष्ठ प्रेमियो को आते-जाते देख के कुढते रहते थे, इस कारण मैंने इस बात को श्रेष्ठ समझा कि अलग रहना चाहिए।

भाग्यवती ने कहा, बताओ तो सही वे तुम्हारे मित्र कौन हैं ? जिन के लिए तुमने अपने माँ-बाप को तज दिया, यदि वे

तुम्हारे मित्र अच्छे होते तो हमारे माता-पिता कभी कुढ़ने वाले नहीं। मैंने सुन लिया है कि वे कोई ब्राह्मणों के छोकरे हैं कि जो न कुछ विद्या पढ़े और न कोई गुण रखते हैं। सारा दिन भांग और चरस को उड़ाते, निकम्मे तुम्हारे पास बैठे रहते हैं। भला सोचो तो सही कि वे छोकरे तुम्हारे पास बैठने के योग्य भी हैं? भाई बताओ तो इधर-उधर की व्यर्थ बातों और पराई निन्दा अथवा नगर के झगड़े मुकद्दमों वा कुसंग की बातों के बिना वे आपको और क्या सिखाते सुनाते होंगे?

लालमणि ने कहा, वे चाहे कुछ सुनाएं पर हम क्या उनकी कोई बात कभी पल्ले बांधते हैं? जब वे आ बैठते हैं, दो घड़ी हँसी खेल में मन बहला लिया करते हैं।

भाग्यवती बोली, हां! यह तो ठीक है कि आप इतने बड़े ज्ञानी और शास्त्रज्ञ होके उन मूर्ख और पामरों की अनपढ़ी सो बातें पल्ले क्यों बांधने लगे थे, पर इतना तो हुआ कि उनके पास बैठने में लोग तुमको भी तुच्छ और हलके गिन रहे हैं। क्या तुमने शास्त्र में यह नहीं पढ़ा कि वैर विवाह और प्रीति अपने से बड़ों और समान वालों से करना चाहिए? एक यह भी बात है कि जो कोई सदा किसी के पास बैठता है उसका गुण स्वभाव कुछ अवश्य ही प्राप्त हो जाया करता है। देखो यदि उनकी और बात कोई आपने अभी तक पल्ले नहीं बांधी तो इतना तो अवश्य मान लिया कि माता-पिता से अलग हो बैठे। जब मैं माता-पिता से मिलने आई तो गली में की कई लुगाइयों ने सब से पहले मुझे यही बात सुनाई कि अब तुम्हारा भाई बहुत कुसंगी हो चला है। उनको तो मैंने यही उत्तर दिया कि मेरा भाई ऐसा पंडित और राज्यमान होके कुसंगी कभी नहीं होने का। पर मन में यही चिन्ता रही कि यह रौला कभी भाई

के उन लोगो तक न पहुँच जाए कि जिन मे उसकी प्रतिष्ठा और मान बना हुआ है।

लालमणि बोला, बीबी! लोग बडे पापी हैं कि जो दूसरे की थोडी २ बात पर भी दृष्टि रखते हैं।

भाग्यवती ने कहा, भाई! लोगो की दृष्टि सब की ओर नही होती, केवल उन ही के व्यवहारो पर होती है कि जो कुछ प्रतिष्ठित और श्लाघ्य गिने हुए होते हैं और जिनकी बुद्धि और ज्ञान को उन्होंने अपने श्रेष्ठ जान के यह निश्चय किया हुआ होता है कि इन से कभी कोई अनरीति नही होने पाएगी। सो आप ईश्वर की दया से काशी भर मे प्रतिष्ठित और श्रेष्ठ गिने जाते हो फिर आपके व्यवहारो पर लोगो की दृष्टि क्यो न रहे? आप से तो यदि राई के समान भी कोई अनरीति हो जाए लोग उसको पर्वत के समान बना के प्रकट करते हैं।

लालमणि ने कहा, बीबी! यदि लोग ऐसी चर्चा करते हैं तो अच्छा फिर जैसे तुम कहती हो वैसे ही मान लिया जाएगा परन्तु पहले तुम पिता जी को यह पूछ आओ कि यदि मैं उनके पास चलूं तो वह अब मुझे यह कह के लज्जावान् तो नही करेंगे कि हमारे बिना निर्वाह न हो सका, अन्त को हमारे ही घर आना पडा।

भाग्यवती बोली, भाई जी पूछने की क्या बात है, तुम यह तो विचारो कि पुत्रो मे चाहे कैसा ही अपराध हो जाए कभी मा-बाप क्या उसको स्मृत रख सकते हैं? सो चलो वे तो पहले से ही तुम्हारे देखने को तरसते हैं, जब सामने चलोगे तुरन्त तुम को छाती से लगा लेंगे।

लालमणि, बहिन के साथ होकर पिता के चरणो पर जा पडा, और माता को प्रणाम कह के बोला, तुमने तो मुझे भुला ही दिया था पर बीबी भाग्यवती मुझे साथ लेकर आई है।

माता-पिता ने उसका माथा चूम के कहा, लाल जी ! भुला देने की क्या बात ! अपनी सन्तान पशु-पक्षियों को तो भूलती ही नहीं, फिर मनुष्य कैसे भूल जाते ? हम तो इस डर से तुम को नहीं बुलाते थे कि तुम्हारा मन हम से और भी दूर न हो जाए, क्योंकि जब किसी का मन किसी की ओर से खिचा हुआ होता है तो उसको भली बात भी बुरी लगा करती है। सो बीवी का भला हो कि जो तुमको अपने साथ लिवाय लाई। अच्छा लो, यह तालियां सम्हालो और बहू को बुला के अपने घर में रहो; अलग रहने में लोग हँसी करते हैं।

बहू तो पहले ही से घर में आना चाहती थी, जब सुना कि घर में सब का मेल-मिलाप हो गया है तुरन्त सासु और सुसरे के पास आ रही और सारे घर का काम-काज जैसा कि पहले था फिर सम्हाल लिया।

अब भाग्यवती की यह बात भी सुनने के योग्य है कि उसके गुण, विद्या चतुराई धैर्य सन्तोष से अधिक उसका मन शूरवीर कैसा था।

एक दिन की बात है कि उसकी मां और बाप तो किसी सम्बन्धी की मृत्यु सुन के दो चार दिन के लिए काशी से बाहर गए हुए थे, अकेली भाग्यवती और उसकी भौजाई घर की रखवाली में रही। इनके घर में किसी मनुष्य का न होना सुन के काशी में के चार-पाँच चोरों ने मिलके यह बात विचारी कि आज पंडित उमादत्त के घर में एक दो लुगाइयों के बिना और कोई नहीं क्योंकि उनका बेटा लालमणि अपनी बाहर की बैठक में सोया करता है कि जो घर से बहुत दूर है। सो चलो आज रात को उस सूने घर में हाथ चलाएँ।

यह बात सोच के सन्ध्या के समय दो चोर तो आके ड्योढ़ी

मे छिप रहे और दो इस ताक मे बाहर रहे कि जब लालमणि बैठक को चला गया देखें और घर के लोग फाटक बन्द करके सो जाएं तो उन दोनो पहले चोरो से भीतर का सगल खुलवा के चारो इकट्ठे हो जाएँगे।

जब दयालू के पीछे पडित लालमणि बैठक को जाने लगा तो बोला, बीबी भाग्यवती रात अन्धेरी है इस कारण मैं बैठक को भी सूनी नही छोड सकता तुम घर मे चौकसी से रहना और ड्योढी का सगल लगा लेना। जब लालमणि बाहर को गया तो भाग्यवती तुरन्त ड्योढी का सगल लगा आई।

जब सोने लगी तो अपनी भौजाई से बोली, भाबी जी! कहो तो ऊपर के चौबारे में तुम्हारे लिए पलग बिछा के मैं नीचे सो रहूँ। यदि तुम नीचे सोना अच्छा समझती हो तो मैं ऊपर सो रहूँ। और क्योंकि आज घर मे तुम हम दोनो ही हैं और नीचे ऊपर दोनो स्थान मे एक-एक का होना आवश्यक है। फिर कहा, रात बहुत अन्धेरी है इस कारण एक-एक दियासलाई की डिबिया अपने पास अवश्य रखनी चाहिए और रात को एक दो बार उठ के भीतर बाहर ताक लेना भी आज बहुत आवश्यक है।

भाबी बोली, तुम ऊपर जाओ और नीचे मैं रहूँगी, क्योंकि यदि कुछ काम पडेगा तो तुम किसी पडोसी का नाम लेकर भी पुकार सकोगी। मैं बहू होकर किसका नाम लूंगी और मुझे ऊंचे बोलना योग्य नही।

भाग्यवती बोली, अच्छा! मैं ऊपर जाती हूँ। तुम दिया हाथ मे लेकर एक बार ड्योढी को फिर देख लेना। जब भाग्यवती ऊपर को गई तो उसकी भाबी अधियारे का भय करके ड्योढी में न जा सकी और यह सोच के कि ड्योढी का सगल तो साझ से ही लगा हुआ है खाट पर पड रही।

चोर तो ताक ही रहे थे, जब देखा दोनों सो गई हैं तो ड्योढ़ी का संगल खोल के उन दोनों को भी भीतर बुला लिया कि जो बाहर खड़े थे। ड्योढ़ी के फाटक बोलते ही भाग्यवती की तो आँख खुल गई और सावधान हो बैठी पर बहू को सोती पाके दो चोर भीतर के दालान में जा घुसे कि जहाँ भाण्डे बरतन और गहने कपड़े रखे जाया करते थे। और दो चोर ड्योढ़ी में इस आशा से खड़े रहे कि जब वे भीतर से कुछ गहना कपड़ा पकड़ावेंगे हम अलग करते जाएँगे। भाग्यवती ने जब देखा कि नीचे के दालान में चोर घुस रहे हैं तो पहले इस भ्रम से कुछ मन में डरी कि यदि मैं इनके पास जाऊँ तो कोई शस्त्र न चला बैठें, पर फिर फुरती से उतरी और उस दालान के फाटक बन्द करके बाहर का ताला लगा दिया कि जहाँ वे चोर घुस रहे थे। जब ड्योढ़ी के चोरों ने देखा कि भीतर से हट के कोई नहीं आया तो एक उनमें से ऊपर को चढ़ा। भाग्यवती जो ताला लगाने के पीछे उस समय लों अभी नीचे ही खड़ी थी तुरन्त उस चोर के पीछे-पीछे होली। ज्यों ही चोर ने चौबारे में पाँव रखा भाग्यवती ने बाहर का ताला लगा के ऊपर ही बन्द कर दिया। और अब उस चौथे की ताक में लगी।

चौथा चोर इस चिन्ता में था कि जो कोई भीतर गया हट के क्यों नहीं आया? इतने में भाग्यवती ने भावी को पुकारा कि नीचे के दालान में जो खलबल हो रही है भावी देखना! कोई कुत्ता तो नहीं? और यह कहा कि तुम ऊपर आ जाओ तो मैं नीचे उतर के देख-भाल आऊँ भीतर क्या हो रहा है। जब भावी ऊपर गई तो भाग्यवती ने उन तीनों चोरों का भीतर बन्द कर देना सुना के समझाया कि एक इनका संगी ड्योढ़ी में खड़ा है, कोई ऐसी युक्ति निकालनी चाहिए कि जिससे वह भी पकड़ा जाए।

फिर दोनो दीया जलाने का बहाना बना के इस इच्छा से घर से बाहर निकलने लगी कि जब यह चौथा चोर भी भीतर जा घुसेगा तो बाहर का ताला लगा देंगी और चौकीदारों को बुला लेंगी। जब ये दोनो ड्योढी मे आई तो भाग्यवती ने ताड लिया कि चोर के हाथ मे लाठी डण्डा शस्त्र कोई नही, सूने हाथ भीतर वालो की बाट देख रहा है तब तो लपक के उसकी टांगें जा पकडी और बोली, भाबी ! लेना, मैंने इस म्लेच्छ को पकड लिया है।

यह सुन के बहू भी उसको लिपट गई, और दोनो खैंच कर आगन मे ले आईं । उस समय चोर ने चाहे बहुत ही हाथ पांव मारे और दोना लुगाइयो को काट-काट खाया पर इतना सामर्थ्य कहा था कि छूट सकता। इसके पीछे भाग्यवती ने अपना दुपट्टा उतार के उस चोर के हाथ बांधे और पांव बांधने के लिए अपनी भावज का दुपट्टा लिया। फिर चौबारे पर से एक लेजू[1] लाके बोली भाबी ! लो मैं इस लेजू से इसके हाथ पांव बांध के लोगो को बुलाती हू। और तुम अपना दुपट्टा खोल के ऊपर ले जाओ। ज्यो ही भाग्यवती ने बाहर के द्वार पर खडी होकर दो चार बार चोर-चोर पुकारा झट गली में से दस-बीस मनुष्य और पांच चार कान्स्टिबल इकट्ठे हो गए। भाग्यवती ने तुरन्त दियासलाई निकाल के चादनी की और वह बंधा हुआ चोर लोगो के आगे किया। चाहे पुलिस के लोग उस चोर से कुछ बाढो[2] लेकर इस बात को झूठ मूठ बनाना चाहते थे पर भाग्यवती ने कानून के रू से उन ही को झूठे बनाया। इतने मे बैठक पर से पंडित लालमणि भी चोरो का नाम सुनके आगे

१ लेजू वा रस्सा भी कहते हैं।

२ घूँस या रिश्वत।

आए और लुगाइयों के कहने से उन तीन चोरों को भी ताले के भीतर से निकाल के लोगों के सामने किया।

भोर होते ही कोतवाल पहुँचा और सरकार में अपनी बहादुरी जतलाने के लिए पंडित लालमणि से कहने लगा कि पंडित जी! यदि तुम एक कागद पर यह लिख दो कि चोरों को कोतवाल साहब ने पकड़ा है तो अच्छा, नहीं तो तुम्हारी बहू और बहिन को कचहरी चढ़ना पड़ेगा।

लालमणि ने यह बात अपनी बहिन भाग्यवती को सुनाई तो उसने कहा लिख देने की क्या बात है, कोतवाल साहब आप ही सरकार में जो चाहे सो कह दें और यदि कचहरी जाने की हम को कुछ आवश्यकता होगी तो देखा जाएगा।

कोतवाल ने जब देखा कि यहाँ मेरी कोई बनावट भी चल नहीं सकेगी तो भाग्यवती की बुद्धि चौकसी, दृढ़ता, फुरती, चतुराई और शूरवीरता की उपमा लिख के चोरों का सरकार में चालान किया।

साहिब मजिस्ट्रेट ने भाग्यवती की उपमा सुनके सैशन में रिपोर्ट की। सैशन से भाग्यवती के लिए एक सर्टिफिकेट और पांच सौ रुपया इनाम आया कि जिसको लेकर भाग्यवती ने बड़ी दूर दृष्टि से काशी से बाहर एक कूआँ बनवा दिया कि जहाँ पंचकोषी करते हुए चारों देश के लोग विश्राम करते और भाग्यवती की शूरवीरता का स्मरण किया करते हैं।

उन चोरों के सम्बन्धी तो अब उस गली के वैरी बन ही गए थे कभी किसी का घर लूटते और कभी किसी का ताला तोड़ लेते थे। एक दिन की बात है कि उस गली में के किसी वैश्य के यहाँ चोरी हुई कि जहाँ भोर होते ही कोतवाल आ बैठा।

उस दिन पंडित उमादत्त और लालमणि तो घर में नहीं थे पुलिस के लोगों ने कुछ भाड़ने के लिए भाग्यवती के यहाँ कहला भेजा कि तुम्हारे घर की तलाशी ली जाएगी।

भाग्यवती की माँ और भौजाई तलाशी का नाम सुन के कुछ उदास सी हुई और बोली, हाय ! यह तो बड़ी बुरी बात है कि हमारे घर की तलाशी हो। हाय ! तलाशी में तो घर का परदा उठ जाता है। बेटी भाग्यवती ! हम तो इन सिपाही लोगों के साथ बोल नहीं सकती, गली में से किसी मनुष्य को बुला लो कि कुछ दे दिला के इन काले कपड़े वालों का मुँह काला कर दिया जावे।

भाग्यवती ने कहा, अम्मा ! आप इतना उदास क्यों होती हो ? अंग्रेजी अमलदारी में बड़े-बड़े घरों की तलाशी हो जाती है इसमें परदा उठने की क्या बात है। देखो, इसी गली में बन्दा कहार के घर में चोरी होने से लाला किरोड़ीमल सहिजराम के घर की तलाशी हुई कि जो सरकार में असेसर माने हुए थे, फिर उनके घर का परदा क्यों न उठ गया ? इन सिपाहियों से पहले मैं एक बात पूछती हूँ फिर योग्य हुआ तो कुछ दे दिला के भी देख लेंगी।

भाग्यवती तो बड़ा की बेटी थी। आवश्यक काम के लिए किसी से बोलने और बाहर आने का कुछ डर नहीं समझती थी, तुरन्त अपने द्वार पर आ के बोली, हमारे घर की तलाशी लेना कौन चाहता है ? क्या इस वैश्य को हमारे घर पर कुछ भ्रम है अथवा तुम सिपाही लोग नाहक हम औरतों को तंग करना चाहते हो ?

वैश्य बोला, बीबी जी ! मुझ कंगाल की क्या सामर्थ्य जो मैं आपके यहाँ की तलाशी कराऊँ ? मुझे तो आपके घर पर कुछ

शक[1] नहीं, यह सिपाही लोग जबरदस्ती मुझे आपके यहाँ ले आए हैं।

भाग्यवती बोली, क्या जमादार जी? आपने हमारे घर की वदनामी, या बदमाशी किसी मिसल में लिखी देखी है, या आपको खुद ही हमारे घर पर कुछ शक हुआ है कि जिसके सबब हमारी तलाशी लोगे? अच्छा हमको सरकारी हुकुम से कुछ उजर और इनकार नहीं पर आप हमको इतनी बात एक कागज पर लिख दें कि हम अपने आप इस घर की तलाशी लेते हैं। और यह भी बता दें कि यदि हमारे घर से चोरी का कुछ माल बरामद न हुआ तो हम हतक की नालिश किस पर करें?

भाग्यवती के मुख से यह कानूनी बातें सुन के पुलिस वालों की चौकड़ी भूली और बात टालने के लिए उस बनिए को कहने लगे कि क्यों रे? बेईमान! अब मुकरता है, तू ही तो हमको इनके यहाँ लाया था अहमक। कभी ऐसे इज्जतदारों की तलाशी ली जाया करती है? कि जिन पर न कुछ सरकार को ज़न[2] और न रियाया को शक, चल तुमने नाहक हम को नादिम[3] किया। यों कहते हुए चल दिए।

अब भाग्यवती अपने माँ बाप की प्रसन्नता से घर में रहती थी कि इतने में उसका स्वामी मनोहरलाल इसके लिवाने को आ निकला। मां बाप ने रो रो के भाग्यवती को छोड़ा और कहा बेटी शीघ्र २ अपने सुख का संदेश भेजती रहा करो, हमारा तो मन तुम्हारी ही ताक में लगा रहता है।

जब भाग्यवती सुसराल में आई तो सासु ने दौड़ के छाती से

---

१. वैश्य की बोली—शक अथवा सन्देह।

२. फारसी पढ़ों की बोली—ज़न अर्थात् संदेह। ३. शर्मिन्दा।

लगा ली और कहा, बहू ! तेरा ससुरा कई दिन से दु खी पडा है, बार २ यही कहता था कि मेरी भाग्यवती को बुला दो, न जाने अब शरीर रहे वा न रहे, मैं एक बार दृष्टि भर के उसको देख लू ।

भाग्यवती बोली, ऐय्या जी ! उनको ईश्वर सदा प्रसन्न रखे, वे तो हमारे आश्रय हैं। मेरा मन तो सदा उनके चरणों मे ही लगा रहता था, पर क्या कहूँ बहुत काल पीछे जाने के कारण कई महीने वहा रहना पडा। आप यह बताइये कि बाबा जी को क्या कष्ट है और उनकी औषधि कौन सा वैद्य करता है ?

सासु बोली, बेटी ! उनको कफ बहुत रहती है, और इसी की अधिकता से थोडा २ अब ताप भी शरीर पर बना रहता है। वैद्य की क्या बताऊँ पहले तो पडित धरणीधर जी कुछ औषधि करते थे और उससे थोडा सुख भी दिखाई देता था पर जब से उन्हें किसी सेठ ने काशी से बाहर बुला लिया है तब से लक्ष्मण-दास वैरागी की औषधि खाते हैं। वह परसो से एक चटनी बनाके दे गया है पर उसके खाने से कुछ फल नहीं प्रतीत होता, क्या जाने ईश्वर की क्या इच्छा है।

भाग्यवती बोली, हाँ सच है ! वृद्धावस्था मे कफ का बहुत बल हो जाता है पर यह बहुत बुरी बात हुई है कि वैद्य धरणी-धर जी बाहर चले गये। मैंने सुना है कि वे चिकित्सा शास्त्र में बडे निपुण और कई स्थानो मे उनका इस विद्या के प्रताप से बडा भारी मान हुआ है। उनके हाथ मे भी बडा यश सुना जाता है और स्वभाव बहुत कोमल है। यदि कुछ दिन उनकी औषधि की जाती तो शीघ्र ही कुछ अवश्य सुख हो जाता। यह जो आपने वैरागी बताया मैं इसको बहुत दिनों से जानती हूँ, यह तो न कोई विद्या पढा हुआ है और न किसी रोग को

पहचान सकता है, मेरी जान में आपने यह अच्छा नहीं किया कि उस कुपढ़ के हाथ की औषधि बावा जी को खिलाने लग गई हो।

सासु बोली, बहू! हमारी गली में तो सब लोग उसी की बड़ाई करते और जब किसी को कुछ खेद होता है तो भाग के उसी के पास जाते हैं। मैं यह भी देखती हूँ कि बहुत लोगों को उसकी औषधि से सुख भी हो जाता है। हाँ इतना ठीक है कि उसका स्वभाव बहुत क्रूर और रोगी को दबकता भिड़कता बहुत रहता और अपनी चिकित्सा के घमण्ड में बड़े २ धनवानों का निरादर कर देता है। पर कोई २ धातु जो उसके पास बहुत अच्छी बनी हुई रहती है इस कारण लोग उसका सब कुछ सहार लेते हैं।

भाग्यवती ने कहा, माँ जी! लोगों को इस बात का ज्ञान नहीं कि उसमें विद्या कितनी है। वह तो बड़ा ही मूर्ख है। यदि दैवयोग से उसकी दी हुई औषधि से किसी को कुछ फल भी हो जाए तो बुद्धिमान् उसके हाथ से कभी कोई औषधि नहीं खाएंगे। क्योंकि लिखा है कि जिस वैद्य को रोग की पहचान और कोई विद्या प्राप्त नहीं उससे रोगी को सदा बचते रहना चाहिये। जो आपने स्वभाव की क्रूरता बताई यह भी बड़ा भारी औगुण है। यदि वैद्य का स्वभाव कोमल और रसीला हो तो रोगी के मन को औषधि से अधिक शान्ति देता है और वह निश्चय कर लेता है कि इसके हाथ से मेरा रोग अवश्य दूर हो जायेगा। और जिस वैद्य का स्वभाव क्रूर होता है उससे रोगी का मन छिन्नभिन्न हो कर उलटा अधिक रोगी हो जाता है। जो आपने कहा उसके पास धातुएँ बहुत अच्छी बनी रहती हैं, मेरी जान में तो जो लोग धातुओं का सेवन करते हैं वे अपना विनाश आप ही कर लेते हैं क्योंकि धातुओं के सेवन से जितना

फल बहुत शीघ्र और अधिक होता है उतनी ही शीघ्र और अधिक उनसे हानि भी होती है। मैंने तो बुद्धिमानों से यह सुना हुआ है कि धातु चाहे कैसी ही श्रेष्ठ और शुद्ध बनी हुई होवे, परन्तु जब तो काष्ठ औषधि से काम निकले धातु को कभी ग्रहण न करे। पण्डितानी बोली बहू! फिर बताओ कि पंडित जी की चिकित्सा के लिए किस वैद्य को बुलाना चाहिए?

भाग्यवती ने कहा, यदि मेरा कहना मानती हो तो अंग्रेजी डाक्टर को बुलाना चाहिए क्योंकि ये लोग एक तो विद्यावान् होते हैं और दूसरी उनके पास औषधें सब बनी बनाई धरी रहती हैं। मैंने कई बार देखा है कि यदि उन के यत्न से कुछ फल नहीं होता तो हानि भी किसी को नहीं होती। एक यह बात उन में बड़ी ही अच्छी होती है कि औषधि खाने पिलाने का समय उनके यहां नियत किया हुआ होता है। जिस समय पर रोगी को देखना और औषधि का देना नियत है वह समय कभी आगे पीछे नहीं पाता और न रोगी को उनकी बाट देखनी पड़ती है।

पंडितानी ने कहा, यह तो सच है पर जिन दिनों में यह डाक्टर लोग अभी हमारे देश में आए नहीं थे उन दिनों में क्या सब रोगी मर ही जाते थे? बहू! अब अंग्रेजी राज्य के आने के कारण और सब खान पहिरान बोल-चाल आदि व्यवहार जो हम लोगों को उन ही के अच्छे लगने लगे हैं इस हेतु से तुमने चिकित्सा करानी भी उन ही से अच्छी कह दी, भला बता तो हमारे यहाँ जो चिकित्सा शास्त्र के सहस्रों ग्रंथ हैं वे सब व्यर्थ हैं?

भाग्यवती बोली, है है! मैंने यह बात कब कही है कि डाक्टरों से बिना सब रोगी मर ही जाते और हमारे यहाँ का

चिकित्सा शास्त्र व्यर्थ है। मैं तो उलटा लोगों को ये समझाती रहती हूँ कि हम जो हिन्दी लोग हैं तो हमारे लिए वैदगी भी हिन्दी ही अनुकूल पड़ती है। क्योंकि हिन्दी वैदगी में जो जो औपधियाँ लिखी हैं वे हिन्द में बसने वाले लोगों के स्वभाव और शक्ति के समान हैं। और जो यूनान और इंगलिस्तान क लोग हैं उनके लिए उन के स्वभाव और शक्ति के समान यूनानी और डाक्टरी वैदगी लिखी है। जैसा कि मैंने कई वार देखा है कि जिस एक रत्ती यूनानी औपधि से कावली आदमी को एक दस्त आता हो उससे हिन्दी आदमी को पाँच सात दस्त हो जाते हैं और जिस हिन्दी औपधि का एक टंक खाने से यहाँ के मनुष्य को दस दस्त हो उसके दो टंक से भी कावली आदमी का कुछ नहीं विगड़ता। कारण इसका यह है कि जिस देश का उत्पन्न हुआ मनुष्य हो उसको उसी देश का जल पवन औपधि जितना अनुकूल और सफल पड़ता है उतना दूसरे का नहीं। अम्मा! हमारे यहाँ के चिकित्सा शास्त्र में तो कुछ दोप नहीं पर आश्चर्य यह है कि हमारे वैद्य लोग उसके पढ़ने का परिश्रम नहीं करते। वहुत तो ऐसे हैं कि उस लक्ष्मणदास वैरागी की नाई सुनी सुनाई जड़ी बूटी और धातु कुधातु खिला के रोगी का सत्यानाश कर देते हैं और वहुत ऐसे हैं कि गुरु गुसाईं को तो मिले नहीं, अपनी ही बुद्धि से किसी छोटी मोटी पोथी को पढ़ के मन भाई सोंठ जवायन खिला के मूर्ख लोगों में वैद्य कहलाने लग गये। इस हेतु से मैंने कहा था कि ये डाक्टर लोग जो दस वर्ष स्कूलों में अच्छे उस्तादों के पास डाक्टरी विद्या को पढ़ते रहते और फिर कई स्थानों में परीक्षा देकर रोगियों की चिकित्सा करने लगते हैं सो चाहिए कि पंडित जी की औपधि भी इन से ही कराई जाए।

पंडितानी ने कहा, हाँ वहू, यह तो ठीक है कि ये लोग विद्या

बहुत पड़े हुए होते हैं और उनसे सुख भी बहुत लोगों को हो जाता है पर क्या करूं हमारे पंडित जी तो उनके हाथ से ओषधि खानी नहीं मानेंगे। देखो वे जो ब्राह्मण से बिना किसी के हाथ का जल तक भी नहीं पीते, फिर डाक्टर के हाथ की गीली सूखी ओषधि कैसे खा सकेंगे ?

भाग्यवती ने कहा, हां ! उनका आचार तो ऐसा ही कठिन है परन्तु ओषधि को खाने मे उनको हठ नहीं करना चाहिये क्योंकि यदि शरीर रह जाएगा तो आचार विचार फिर भी हो सकता है। एक बात मैंने यह भी सुनी हुई है कि विपत्काल और रोग दशा मे आचार का त्याग देना कुछ वर्जित नहीं होता। सो मैं निश्चय करती हूं कि यदि पंडित जी को ये बातें समझाओगी तो वे डाक्टर की ओषधि से सिर नहीं फेरेंगे।

पंडितानी ने पंडित जी के पास जा के भाग्यवती की कही हुई सब बातें सुनाईं। पंडित जी ने एक दो बार तो सिर फेरा, पर फिर कहा अच्छा तुम जानो जिस को चाहो बुला लो, शरीर रहेगा तो कुछ प्रायश्चित कर करा के फिर शुद्ध हो लेंगे।

डाक्टर साहब के आने से पांच सात दिन मे कफ और ज्वर की तो निवृत्ति हो गई पर पंडित जी की अवस्था जो नब्बे वर्ष के निकट पहुँची हुई थी इस कारण शरीर मे कुछ बल न हो सका। निर्बलता बुरी होती है, खाया पिया कुछ पचता नहीं था, अन्त को भूख बन्द हो कर सांझ के समय पंडित जगदीश जी का काल हो गया। उसी समय सब भाई बन्धु और गली की लुगाइयां इकट्ठी हो कर रोने और छाती पीटने लगी। और भाग्यवती के जेठ और जेठानियां और मनोहर और उसकी बहिन देवकी सब मिलके रोने और अत्यन्त दुखी होने लगे। यद्यपि भाग्यवती का प्रेम भी अपने सुसरे मे कुछ थोड़ा नहीं था

पर और लोगों के नाईं ऊँचे शब्द से रोना और छाती पीटना अच्छा नहीं जानती थी। अपने सुसरे से बिछड़ने का शोक और दुःख तो चाहे सब से अधिक था पर उसको अन्य बहुओं के समान रोती और हल्ला मचाती न देख के कई लुगाइयां यह भी बोल उठीं कि ऐ हैं री। इस भाग्यवती को अपना शरीर कैसा प्यारा है कि जो अपने सुसरे के मरने पर छाती पीटना तो एक ओर रहा परन्तु आंखों से आंसू तक भी नहीं बहाती। भाग्यवती चुप-चाप सब की बातें सुनती जाती पर उस समय किसी को कुछ उत्तर देना अच्छा न समझती थी। जब दिन उगा तो लोक और वेद की रीति से पंडित जगदीश जी का बड़ी धूमधाम से विमान निकाला और जैसा कि योग्य था यथाशक्ति धन पदार्थ भी मन खोल के लगाया। जो जो काम शास्त्र के अनुसार थे उनमें तो भाग्यवती चुप रहती पर जब कोई व्यर्थ धन लुटाने का अथवा लुगाइयों का ठहराया हुआ सामने आता तो अवश्य रोक देती थी। जब ग्यारहवें दिन सब कर्म क्रिया हो चुके तो सारे परिवार को बैठा के भाग्यवती ने कहा, मैं सब से छोटी और सब की दासी होने के कारण कह तो कुछ नहीं सकती पर यदि मेरी विनती मानो तो दो तीन बातें आज से बन्द कर देनी चाहिये।

एक यह कि जिस घर का कोई मर जाये दसाही के पीछे वहाँ रोना और छाती पीटना न हुआ करे। चाहे ईश्वर की भावी को सिर पर धर के मरने पर रोना तो कभी भी श्रेष्ठ नहीं पर दसाही के पीछे अवश्य बन्द कर देना चाहिए।

दूसरी यह है कि मृतक के घर की स्त्रियाँ जो वर्ष दिन पर्यन्त मैले वस्त्र और मलीन आचार रखती हैं यह बात भी बन्द होनी चाहिये।

तीसरी यह कि मृतक के घर मे जा वर्ष दिन पर्यन्त सारे नगर की लुगाइयाँ होली दिवाली आदि त्योहारो के दिन शाम करने जाती हैं यह व्यवहार भी बन्द करने के योग्य है।

भाग्यवती की यह बातें सुन कै सब लोग प्रसन्न हुए और उसी दिन सब ने सोच समझ कर इन बातो का त्याग कर दिया।

जब यह बातें लोगो ने मान ली तो बोली कि मैं एक बात अपने देश मे बहुत बुरी और देखती हूँ कि जिसका हटाना बहुत ही अच्छी बात है। वह यह है कि जब कोई वृद्ध मर जाता है तो उसके सम्बन्धी लोग आके उसके विमान के सामने नाचते कूदते ठट्ठे करते हुए देखे जाते हैं, भला बताओ तो यह क्या अच्छी बात है? क्या आप लोग इस बुरी रीति को बन्द करना अच्छा नही समझते?

सब लोगो ने उत्तर दिया कि हम तो इस रीति को भी आज से ही बन्द कर देना चाहते हैं क्योंकि यह रीति न तो शास्त्र के अनुसार ही अच्छी है और न लोक रीति से ही शुभ दिखाई देती है। उसी समय सब ने मिल के इस बात का भी नियम किया कि आज से लेकर किसी मृतक के आगे कोई स्त्री पुरुष कुछ ठट्ठा न करे और यदि कोई करेगा तो भाइयो मे उसका खाना पीना बन्द कर दिया जाएगा।

अब एक दिन भाग्यवती ने अपनी सासु को उदास बैठी देख के कहा कि अम्मा! पंडित जी महाराज का परलोक हो जाना हम लोगों को बहुत उदास कर रहा है परन्तु ईश्वर की भावी यो ही थी। यह संसार मेले की नाईं है और इसमें मिलना बिछुड़ना सदा से चला आता है। मैं यह तो नहीं कह सकती कि पंडित जी की मूर्ति कभी हम को भूल जाएगी पर अब जैसे

बने संतोष करना ही उचित है। हाँ यह सच है कि चलते फिरते मनुष्य का देखते २ ही छिप जाना एक आश्चर्य सा प्रतीत होता है पर यदि ठीक विचारा जाए तो आश्चर्य मरने का नाम नहीं कि जो सदा से हुआ ही पड़ा। भारी आश्चर्य तो जीने पर मानना चाहिए कि जो अनहुआ और असम्भव व्यवहार हुआ दिखाई दे रहा है जैसा कि इस श्लोक से जाना जाता है :—

नवछिद्रसमाकीर्णे शरीरे पवनस्थितिः।
प्रयाणस्य किमाश्चर्यं चित्रं तत्र स्थितेर्महत् ॥१॥

अर्थ इसका यह है कि जहाँ एक भी छेद हो वहाँ पवन का ठहरना आश्चर्य रूप होता है और निकल जाना आश्चर्य रूप नहीं गिना जाता सो आंख मुख नासिका आदि नौ छेद वाले शरीर में जो प्राण रूप पवन अटक रही है इसके निकल जाने अर्थात् मर जाने में क्या आश्चर्य है? बड़ा आश्चर्य तो उसके वहाँ ठहरने का है कि इतने छेदों में वह ठहर रही है अर्थात् प्राणी मरता नहीं।

सासु बोली, बेटी! यह तुमने सच कहा पर अब मेरा मन कहता है कि संसार के जितने सुख थे सब देख लिये, भगवान की दया से खाना पहरना धन पदार्थ बेटे पोते सब कुछ मेरे घर में वर्तमान हैं सो अब ऊपर के दिन ईश्वर के भजन में पूरे करूँ। अब मुझे घर की भी कुछ चिन्ता नहीं रही क्योंकि तुम सब अपने आप में आनन्द प्रसन्न और जगत के किसी व्यवहार से अनजान नहीं हो। मैं तुम से आज लों प्रसन्न रही किसी प्रकार किसी ने मुझे दुःखी नहीं किया जैसे पंडित जी तुम सब को आशीर्वाद देते गये हैं वैसे ही मैं जाऊँगी। अब तुम सब अपने घर में आनन्द करो मैं अपनी वृद्धावस्था हरि के हाथ सम्हालनी चाहती हूँ, जगत का देखना मुझको अब कुछ शेष नहीं रहा।

भाग्यवती ने कहा, ऐय्या ! यह तो बहुत ही अच्छी बात
आपने विचारी । मनुष्य जन्म का यही फल है कि अपनी मुक्ति के
लिए यत्न किया जाये । यदि आप अब धर्मध्यान मे मन लगाएगी
तो इसमे हम लोगो को भी बहुत भलाई है । आप आनन्द से
ऊपर के चौबारे मे एकान्त हो बैठो, ईश्वर का भजन स्मरण
किया करो । भोजन के और किसी आवश्यक शौच स्नान आदि
व्यवहार के समय हम सब आपकी टहल मे ऊपर आ जाया
करेगा अन्य किसी सासारिक काम मे आपको कोई नही बुलाया
करेगा । तुम चाहे सारा दिन माला फेरो और चाहे कोई पोथी
पुस्तक देखती रहा करो । और जिस साधु ब्राह्मण को आप
साधु सत्सग के लिये ऊपर भेज दिया करेंगे ।
उदास सा बोली, बहू ! पडित जी के वियोग से मेरा मन जो
वृन्दावन अयोध्या है इस कारण पहले तो मैं कुछ दिन मथुरा
आके यहाँ काशी आदि धामो में वास करना चाहती हूँ फिर
मारी पुरी है कि मे निवास करूंगी क्योकि यह भी एक बडी
काशी मे मरने से जिसकी महिमा में यह बात प्रसिद्ध है कि
भाग्यवती ने मुक्ति प्राप्त हो जाती है ।
से अस्न लो जगत् कहा, अम्मा ! यो घूमने फिरने को तो उदय
कोई मुक्ति की इच्छा रखता है, चाहे कोई कही विचरे, परन्तु यदि
कुछ आवश्यक नही । रखता हो तो उसको घर से बाहर जाना
आदि धामो में आप न हो मैं यह नही कहती कि मथुरा वृन्दावन
उपासना दान पुण्य आ जाए पर मैं यह पूछती हूँ कि जो भक्ति
बैठे भी हो सकता है वह वहाँ जा के करेंगी वह यहाँ घर मे
आप के दिन नहीं रहे, नहीं ? देश-विदेश मे फिरने के अब
कि जिसमे हम लोग भी हाँ घर मे बैठके ईश्वर का ध्यान करो
सफल करते रहें । आपके दर्शन और टहल-सेवा से जन्म

सासु बोली, बहू भाग्यवती चाहे तू हमारी बेटी और अवस्था में छोटी है पर भगवान् ने जो बुद्धि और विद्या तुमको हम सब से अधिक दे रखी है। इस कारण मैं तुम से पूछती हूँ कि बता तो घर में बैठे किस विधि से मुक्ति प्राप्त हो सकती है क्योंकि मेरे चित्त में भी यही वासना है कि कोई सुगम उपाय मुक्ति का प्राप्त हो जाये।

भाग्यवती ने कहा, ऐय्या ! मैं तो आपकी दासी हूँ; यह तुम्हारी दया है कि जो बुद्धि विद्या की मुझे बड़ाई देती हो पर अच्छा जो कुछ मैंने श्रुति स्मृति और उत्तम लोगों के मुख से सुना है वह आपके पास प्रकट कर देती हूँ, सुनिये।

मुक्ति वह पदार्थ है कि जो परमात्मा की प्रसन्नता के बिना किसी को प्राप्त नहीं हो सकती, सो जहाँ लों हो सके मनुष्य उस की प्रसन्नता का यत्न करता रहे सो उसकी प्रसन्नता न तो मोल ही बिकती है कि कुछ धन पदार्थ लुटाया जाय और न किसी देश विदेश फिरने से ही प्राप्त हो सकती है कि घर बार को तज के बाहर निकल जाये। मैंने सर्व शास्त्रों का सार मुक्ति के विषय में यह ३ बातें सुनी हुई हैं।

एक ज्ञान, अर्थात् ईश्वर को सर्व शक्तिमान सर्वव्यापी सर्वज्ञ और अपना सृजनहार जानना और उसके होने में किसी प्रकार का संशय न करना।

दूसरी भक्ति अर्थात् अपने सारे मन और सारी बुद्धि और सामर्थ्य के साथ उसमें प्रेम करना जितना प्रेम उसमें हो उतना और किसी धन स्त्री पुत्र आदि में न हो।

तीसरी वैराग्य, अर्थात् संसार के सुख भोग और आनन्द में ऐसे लीन न होना कि ईश्वर का स्मरण कीर्तन छूट जाये।

बस इन तीनों बातों के ग्रहण करने से प्राणी का अन्तः-

करण पवित्र हो जाता और अन्तःकरण की पवित्रता ईश्वर की प्रसन्नता में कारण होती है। जब ईश्वर की प्रसन्नता हुई तो फिर मुक्ति के होने में कुछ संशय नहीं होता। अम्मा ! बस यही श्रुति स्मृति का सिद्धान्त और मोक्ष के विषय में परम उत्तम उपाय है। सो योग्य है कि आप और सर्व संकल्पों को तज के इस उत्तम उपाय को ग्रहण करो।

सासु ने कहा, धन्य है तुम्हारी बुद्धि। मैंने निश्चय कर लिया कि तुम लोक परलोक के सर्व व्यवहारों को जानती हो। ईश्वर तुम पर अपनी दया दृष्टि रखे। जो बातें तुम ने मुझे सुनाईं एक समय तुम्हारे सुसरे ने भी मुझे यह ही सुनाई थी। वह भी यही कहा करते थे कि परमेश्वर की भक्ति के विना मुक्ति के लिए और कोई उपाय श्रेष्ठ नहीं और इस प्राणी को सदा ज्ञान वैराग्य से युक्त रहना चाहिये।

—o—

# बीजमंत्र

## भारतीय भौतिकवाद अथवा पराविद्या की प्रथम पुस्तक

लेखक

तत्त्वलीन महर्षि

पं० श्रद्धाराम फुल्लौरी

सम्पादक और प्रकाशक

बालचन्द नाहटा

मंत्री बुद्धिवादी संघ,

४६, स्ट्रान्ड रोड, कलकत्ता

सन् १९४५ ई०

प्रथम बार

मूल्य ।)

ग्रन्थकर्त्ता

## श्रीमद् पं० श्रद्धारामजी फुल्लौरी का

# संक्षिप्त परिचय

### उनके पट्टशिष्य श्री० स्वामी तुलसीदेवजी द्वारा
### सन् १९३१ ई० में लिखित

पूज्यवर श्रीमद् पं० श्रद्धारामजी महाराज अठवंश जोशी सारस्वत ब्राह्मण थे। देश पंजाब जिला जालंधर के नगर फुल्लौरी में सं० १८९४ (१८३७ ई०) वि० आश्विन शुक्ला प्रतिपदा में जन्मे और सं० १९३८ (१८८१ ई०) वि० आषाढ़ वदि त्रयोदशी में मुक्त हुए। केवल ४३ वर्ष की आयु पाई कि जो सर्वथा देश सुधार में लगाई।

देश को कुकर्म दुराचार से हटाकर सुकर्म सदाचार में लगाने व सनातनधर्म की रक्षा के लिए उपदेश देने, निश-दिन पठन-पाठन, कथा-कीर्तन; सत्संग, ज्ञान-चर्चा, कुरीत-संशोधन, देशोद्धार के उपाय आदि से जो समय मिलता था उसमें राजा प्रजा के सुधार तथा शिक्षा के अनुपम ग्रन्थ लिखते थे। यह महोपकार जीवन पर्यन्त करते रहे।

आप ब्रह्म-श्रोत्री, ब्रह्मनेष्ठी, वेदशास्त्रवित्, सर्व मत-मतांतरों के मर्म-ज्ञाता, सत्पथ-प्रदर्शक, आप्तवक्ता, मर्यादा पुरुषोत्तम, सदाचार के अवतार, मोहन उपदेष्टा थे। तथा जिन महान आत्माओं ने वेद-वेदांग रचे, अनेक विद्यायें प्रकट कीं, उसी

अमोघ देवी मधा के उच्चतर निगमागमसार हुए।'

देश में अलग कर सब वर्ग, आश्रम, मत-पथ आदिक के मात्र मात्र को दुराचार से बचाकर शुभाचार में लगाने वाला, सनातनधर्म का प्रबल युक्ति प्रमाणों से समर्थन करने वाला, आजन्म प्रभावशाली यथार्थ उपदेष्टा उन्नीसवीं शताब्दी में आपसे प्रथम पजाब में कोई धर्माचार्य नहीं हुआ।

आप सस्कृत हिन्दी फारसी, पजाबी के पण्डितों में अग्रगण्य लेखक भाषण में अतुल्य, आशुकवि, अद्भुत ग्रन्थों के अनुपम कर्ता प्रख्यात वक्ता दिव्यामर होने के कारण राजा प्रजा दोनों से पूजे गये।

भारतवर्ष में ऐसा कोई मत नहीं था, जिसको आपने विवेचना पूर्वक देख न लिया हो। आपके जीवनकाल में जितने नवीन मत पथों का प्रादुर्भाव हुआ, उनके स्थापक गुरु व आचार्यों से मत विषयक निर्णय सभाषण सभ्यता से करते रहे। परन्तु प्रायः सब मत मानव-मात्र की एकता के बाधक और भारत के अधोपतन कारक ही सिद्ध हुए। यद्यपि जाति अनादि है, प्रत्येक द्रव्य के सग रहती है परन्तु जाति का अभिमान मिथ्या है। एव मत-मतान्तर कल्पित हैं उनका दुराग्रह अनर्थकारक है क्योंकि अभिमान दुराग्रह से मानवमात्र में सहानुभूति नहीं रहती। ऐसे अनेक कारणों से आप हर समय इसी चिन्ता में निमग्न रहते थे कि, सारा ससार—विशेषतः भारत निवासी जन जाति-पाति, छूत छात पक्षपात, मत मतान्तर के दुराग्रह अभिमान में लिप्त,

---

१ आपकी हिन्दी सेवा भी अनुपम थी। वर्तमान हिन्दी के गद्य साहित्य के प्रवर्तकों में आप भी एक थे—इसका उल्लेख हिंदी साहित्य का इतिहास पृष्ठ ५१५ १७ में प० रामचन्द्र शुक्ल ने किया।

—सम्पादक

ईश्वर, जीव, पुनर्जन्म, नर्क, स्वर्ग के वाद-विवाद में प्रवृत्त, स्वार्थ-तत्पर, हिंसक पशु पक्षियों से भी अधिक बढ़कर मानव-खाने दानव बनकर अपने ही हृदय समान जातिजन को वध करने में दया दर्द से रहित विविध अनिष्टकारी व्यसनों में चूर, अनेक भ्रांतियों में निमग्न अज्ञान अविद्या के अन्धकार में डूबे, इस नर नारायण जन्म को वृथा नष्ट कर रहे हैं, अतः इस घोर पाप-अनर्थ की जड़ उखाड़ कर सत्य ज्ञान का प्रकाश करना अत्यंतावश्यक है। इसी चिन्ता से बाधित होकर आपको अन्त समय सं० १९३६-३७ वि० में "सत्यामृत-प्रवाह" नामक सत्य शास्त्र लिखना पड़ा। इस अद्वितीय आगम में आपने वह सत्य विद्या प्रकट की कि जो चिरकाल से आपकी आत्मा मे भरी खोलती, उछलती, परमोत्तम अधिकारी जनों के लिए प्रकाश करने को व्याकुल कर रही थी। इसमें आपने अपने उन सिद्धांतों को लिपिबद्ध किया है कि जिनसे यह ज्ञात हो जावे कि मनुष्य को जीवन-यात्रा सुख सहित व्यतीत करने के लिए क्या जानना और क्या करना चाहिए। प्राकृतिक नियमों की धारणा से जगत् अज्ञान अविद्या के भ्रम-जाल से निकले और अन्ध-विश्वास व नाना मत-पंथों के दुराग्रह से छुटकर मनुष्य मात्र को एक जाति एक आत्मा अपने जैसा माने और शुद्धाचरण द्वारा जीवन मुक्ति का आनन्द भोगे। शुद्धाचरण 'आत्म-चिकित्सा' से सीखे।

आपने मानव सुधार के लिए अपने जन्म-स्थान फुल्लौर और उपदेश स्थान लाहौर में "हरिज्ञान मन्दिर" स्थापित किये थे, जो अब तक जीवित हैं।

आपके कोई संतान नहीं थी, अतः आपका कुलवंश आप ही पर समाप्त हुआ। आपके अकस्मात् देहान्त होने पर समग्र देश के अतिरिक्त गवर्नमेंट-पंजाब ने भी शोक प्रकट किया था।

इस माननीय परम-पूज्य महोपकारी आप्त महापुरुष के सत्य-ज्ञान विज्ञान और आचार विचार तथा मानव सुधार का व्यापक प्रचार होना सर्व प्रकार से अभीष्ट है।

## पडितजी के अनन्तर

पूर्वोक्त सत्गुरु श्री प० श्रद्धारामजी महाराज के देहान्त के अनन्तर स० १९३८ मे सत्गुरु के अतिम वाक्य पालने के लिए वाचावद्ध होकर उनकी आज्ञानुसार मुझ तुलसीदेव नामक शिष्य ने दोनो मदिर सभाले। उनकी उन्नति, रक्षा तथा विधवा गुरु माताजी की सेवा मे प्रवृत्त हुआ।

उसी समय मैंने गुरुदेव निर्मित सत्य-शास्त्र (सत्यामृत-प्रवाह) आदि ग्रन्थो को छपाकर, सारे भारतवर्ष मे उनका भली प्रकार प्रचार किया था। इसके साथ ही गुरुदेव के नाम पर आयुर्वेदिक औषध-सदाव्रत स्थापित किया था, जिसमे बिना फीस रोगियो का इलाज मैं स्वय करता था और बिना कीमत औषध दान देता था। एव उसी काल फुल्लौर के मन्दिर मे पुत्री-पाठशाला प्रारम्भ की जिसमे फीस व पुस्तक आदि सामान की कीमत नही लेते थे। सरकारी अफसरो ने रायचुक मे अति प्रशसा की थी। फुल्लौर मन्दिर के अन्दर कूप आदि कई नये स्थान बनवाये। एव लाहौर के हरिज्ञान मदिर की भूमि मे शिवालय व कूप प्रथम था, शेष जितने साधारण स्थान वर्तमान मे विद्यमान हैं, वे सब मैंने ही धीरे-धीरे बनवाये हैं।

### इसके अनन्तर

## (सम्पादक द्वारा लिखित)

श्रीमद् स्वामी तुलसीदेवजी, इन मन्दिरो और स्वोद्योग द्वारा सचित अन्य सम्पदा की रक्षा के लिए स्थानीय प्रतिष्ठित

जनों की संरक्षता में अपने गुरुदेव के नाम पर "श्रद्धाराम ट्रस्ट" नाम से वसीयत कर सन् १९३५ ई० में ८० वर्ष की अवस्था में निर्वाण प्राप्त हुए।[1] मेरा उनसे कई वर्ष पहले से ही पत्रालाप था। सन् १९३० ई० के लगभग प्रथम बार लाहौर में साक्षात्कार भी हुआ। इस समय पूज्य पं० श्रद्धाराम जी के निजी बस्ते में से उन्हीं के स्वहस्त लिखित इस 'बीज मन्त्र' की कलमी प्रति पूज्य स्वामी तुलसीदेवजी की कृपा से प्राप्त कर मैंने नकल की, जो आज मुद्रित होकर पाठकों के सम्मुख उपस्थित है। यह उक्त पंडितजी महाराज की सबसे अंतिम रचना है। इसमें उन्होंने अपना सत्यामृत-प्रवाहोक्त ही बाल-बुद्धि जनों के अर्थ अत्यन्त सरल भाषा में खोल कर रख दिया है। आशा है, संसार इससे उपकृत होगा।

---

१. बाद में ज्ञात हुआ कि मुझ अकिंचन का भी उक्त वसीयत मे उल्लेख है।

॥ ॐ नमो गुरवे ॥

अथ सत्यधारी पुरुषो का 'बीजमन्त्र' लिख्यते ।

प्रथमोऽध्याय

## शिष्य-गुरु संवाद

शिष्य—हे गुरो ! परमानन्द मुक्ति प्राप्त होने के निमित्त मैंने प्रथम वेद, शास्त्र, पुराण तथा जैन, बौद्ध मत के ग्रन्थो को और इस्लाम तथा ईसाइयो के धर्म पुस्तको को पढा और सुना परन्तु मन को शान्ति नहीं हुई । फिर अनेक प्रकार के तप, जप, तीर्थ, व्रत, हठ को धारण किया और कई भांति के साधुओं का सग किया परन्तु मन का सशय दूर नही हुआ । अब आप को सत्यधारी सुन के आपकी शरण मे आया हूँ । कृपा करके मुझे बताइये कि परमानन्द रूप मोक्ष की प्राप्ति कैसे होती है ?

गुरु—परा विद्या के उपदेश द्वारा ब्रह्म के अपरोक्ष ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

शिष्य—परा विद्या किसको कहते हैं ?

गुरु—विद्या दो प्रकार की होती है । एक अपरा, दूसरी परा । सो अपरा तो वह है जो स्थूल बुद्धियों के निमित्त वेदादि पुस्तको मे लिखी और परोक्ष ब्रह्म का उपदेश करती है जिस पर कई प्रकार के सन्देह खडे हो सकते हैं । परा विद्या वह है कि जो सत्यधारी महापुरुषो के हृदय मे लिखी है और अपरोक्ष ब्रह्म का उपदेश करती है जिस पर कोई सन्देह खडा नहीं होता और यदि हो तो टिक नही सकता ।

शिष्य—जिसको आप अपरा विद्या ठहराते हो उसके अनुसार मुझे तो यह दृढ़ निश्चय हो गया है कि 'ब्रह्म या ईश्वर सत्य है और जीव को पाप-पुण्य के अनुसार नर्क-स्वर्ग में जाना पड़ता है, क्या यह बात असत्य है?

गुरु—ब्रह्म या ईश्वर को तो हम भी सत्य मानते हैं, और जीव को पाप-पुण्य के अनुसार नर्क-स्वर्ग भोगता भी जानते हैं; परन्तु अपरा विद्या के अनुसार किसी को संशय रहित दृढ़ निश्चय कभी नहीं हो सकता। वैसा दृढ़ निश्चय तो तभी होगा जब परा विद्या का उपदेश सुनोगे। यदि तुमको निस्संशय-रूप दृढ़ निश्चय हो गया है कि 'ईश्वर सत्य है' तो लो, हम तुम्हारी परीक्षा करते हैं; बताओ, ईश्वर क्या है?

शिष्य—जिसने इस चराचर संसार को रचा, वह रूप, रंग, शरीर और जन्म मरण से रहित अद्वितीय, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, शुद्ध, सर्वशक्तिमान् ईश्वर है।

गुरु—तुमने कहा, जिस ने चराचर संसार को रचा—वह ईश्वर है; हम देखते हैं कि चराचर संसार को रचा किसी ने नहीं। जैसा कि चर संसार तो सारा अपने माता-पिता अथवा वस्तुओं के स्वभाव से उत्पन्न होता आता है और अचर संसार दो प्रकार से प्रकट हो रहा है जैसा कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र, तारागण तो सदा ज्यों के त्यों सनातन से स्थित हैं और घास, तृण, वृक्ष आदिक सब अपने बीजों से प्रकट होते रहते हैं। बताओ, इनमें से ईश्वर ने क्या रचा? यदि कहो, आदि काल में सब के माता-पिता और बीज ईश्वर ने रचे हैं तो बताओ, क्यों रचे? काहे में से रचे? उस दिन से पहले क्यों न रचे? विचित्र क्यों रचे? फिर तुम कहते हो कि उसका रूप, रंग, शरीर और जन्म-मरण कुछ नहीं, तो अच्छा फिर बताओ,

वह कहाँ है ? कैसा है ? क्या है ? तुमने उसे कैसे पहिचाना ? इत्यादि। अब बताओ देह में जीव क्या वस्तु है जिसका पाप-पुण्य के अनुसार तुम नर्क स्वर्ग में जाता मानते हो ?

शिष्य—जिसके आश्रय देह मे ज्ञान शक्ति दिखाई देती है वह रूप रंग से रहित देह के सब अंगों मे व्याप्त अज अमर वस्तु जीव है। उसी का नाम आत्मा है।

गुरु—मूर्च्छा के समय जब ज्ञान शक्ति देह मे नहीं रहती तब वह कहा चला जाता है और मूर्च्छा के पीछे फिर देह में कैसे और कहाँ से आ जाता है ? यदि उस का रूप रंग और देह नही तो उसके साथ पाप पुण्य का सम्बन्ध कैसे होता है ? और वह क्या वस्तु है जो देह से निकल के आगे चला जाता है ? फिर यदि वह अज है तो ईश्वर का रचा कैसे मानते हो ? और यदि रचा हुआ है तो अज कैसे हुआ ?

शिष्य—आपने कहा था कि 'हम भी ईश्वर को सत्य मानते हैं और पाप पुण्य के अनुसार जीव को नर्क-स्वर्ग भोगता जानते हैं' सो अच्छा लो अब आप ही बताइये कि आपका ईश्वर और जीव कौन सा है ?

गुरु—हमारा ईश्वर और जीव वही है जिसे परा विद्या ने सिद्ध कर के दिखाया। और सब को अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) होने से उस पर किसी को कुछ संशय नहीं रहता।

शिष्य—कृपा करके मुझे परा विद्या का उपदेश दीजिये।

गुरु—परा विद्या सब को नहीं सुनाई जाती। केवल उसी को सुनाई जाती है जो सत्यधारी बनना चाहे और सत्यधारी उसको कहते हैं जो केवल सत्य को धारण करे।

शिष्य—सत्य किस को कहते हैं ?

गुरु—जो पञ्च ज्ञानेन्द्रिय और आत्मा के ज्ञान में आवे उसको सत्य कहते हैं, उसके बाहर सब असत्य है।

शिष्य—मैं तन-मन-धन से सत्य को धारण करना चाहता हूँ।

गुरु—तो अच्छा, प्रथम लोकलाज, वेदलाज, कुललाज को तज के निर्भय और निःशंक तथा निर्माण होके सच्चा संस्कार करो कि जिस से तुम सत्य के नियम पालन कर सको फिर तुम को परा विद्या सुनाई जायगी।

## सत्यधारी के दश नियम

१. मैं दश गुणों[1] का ग्रहण और दश दोषों[2] का त्याग करूँगा।

२. जहाँ लों हो सके अपनी कमाई से निर्वाह करूँगा।

३. अपने मंगल कार्यों के समय सत्यधारी महापुरुषों का समाज-सम्मेलन और उनका आदर-आतिथ्य सर्वदा किया करूँगा।

४. यद्यपि सम्पूर्ण मनुष्य अपने तुल्य हैं परन्तु सत्यधारी बन्धुओं को अपने प्रिय अंग समझ कर दुःख-सुख में उनका सहायक रहूँगा।

---

१. दश गुण—अनुग्रह, शुभ सम्बन्ध, विवेचना, प्रीति, दातृत्व, कृतज्ञता, अनृणित्व, योग्यता, ध्रुवता और भक्ति।
—आत्म-चिकित्सा

२. दश दोष—चोरी, हिंसा, परतिया, निन्दा, मिथ्या गाल।
क्रोध, ईर्षा, मान छल, तन वच मन से टाल॥
शतोपदेश

५ अपनी कमाई का चालीसवां भाग अपने ज्ञानदाता सद्-गुरु या ऐसी ही किसी संस्था को अर्पित किया करूंगा।

६ अपने सद्गुरु या सत्संस्था और सत्यधारी बांधवों की निन्दा और हानि को कभी न सहारूंगा।

७ चाहे कैसी ही विपत्ति पड जावे परन्तु सत्य के नियमों का त्याग नहीं करूंगा और सत् सिद्धान्तों के फैलाने में तन-मन-धन से यत्न करूंगा।

८ संसार के दुःखदायक आचार, व्यवहार तथा रीतियों के सुधारने में यत्न करता रहूंगा।

९ रोग-दशा के बिना किसी उन्मादक द्रव्य का खान-पान कभी नहीं करूंगा।

१० संस्कार कराये बिना किसी को परा विद्या का उपदेश नहीं सुनाऊंगा।

इति 'बीजमन्त्रे' प्रथमोऽध्याय समाप्त

## द्वितीयोऽध्याय

शिष्य—हे भगवन्, मैं सच्चे मन से आपके बताये हुए सत्य के नियम धारण और पालन करने की प्रतिज्ञा करता हूं। अब कृपा कर के मुझे परा विद्या का उपदेश दीजिये। प्रथम यह बताइये कि पीछे जो आपने पांच ज्ञान-इन्द्रियों का नाम लिया था वे कौन सी हैं ?

गुरु—कान, त्वचा, दृग, रसना और घ्राण ये पांच ज्ञान-इन्द्रियां हैं कि जिनके प्रताप से शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध इन पांच विषयों का ज्ञान होता है।

शिष्य—ज्ञान किसका नाम है ?

गुरु—जिसके द्वारा सब कुछ जाना जावे उसे ज्ञान कहते हैं और उसी का नाम बुद्धि है और वह आत्मा का गुण है।

शिष्य—आत्मा क्या वस्तु है जिसका गुण ज्ञान है ?

गुरु—देह के एक अंग का नाम आत्मा है जिस को हृदय[1] कहते हैं। इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख, ज्ञान ये छः उसके गुण हैं, उसका प्रकाश सारे देह में है।

शिष्य—देह क्या वस्तु और काहे का बना हुआ है ?

गुरु—हाड़, मांस, रोम, चर्म, वीर्य्य, रुधिर और प्राण इन सात धातुओं के पिण्ड का नाम देह है और वह माता-पिता के वीर्य्य से बना हुआ है।

शिष्य—वीर्य्य की उत्पत्ति किस से है ?

गुरु—अन्न-जल आदिक पदार्थों के खान-पान से वीर्य्य की उत्पत्ति होती है।

शिष्य—अन्न-जल आदिक पदार्थ किसने बनाये हैं ?

गुरु—बनाये किसी ने नहीं; किन्तु अपने बीजों से सनातन अपने आप बनते मिटते आये हैं।

शिष्य—वे बीज संसार में कहाँ से आये ?

गुरु—बीज सम्पूर्ण पदार्थों के पंचभूत का विकार है अर्थात् आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी ये पंचभूत जो अनादि सिद्ध हैं सृष्टि के आरंभ में नाना प्रकार के अंकुर रूप बन जाते हैं; फिर धीरे-धीरे वृक्ष और फूल-फल रूप बन के बीज दशा को प्राप्त हो जाते हैं और खाने के योग्य होने से उन बीजों का नाम ही अन्न है।

शिष्य—यह अन्न वीर्य्य रूप बन के देह को कैसे उत्पन्न कर देता है ?

गुरु—आज का भक्षण किया हुआ अन्न जब रस, रुधिर,

---

१. आधुनिक वैज्ञानिकों के मत से वह अंग मस्तिष्क है।

मास मद, अस्थि, मज्जा रूप बन के सप्तम अवस्था में वीर्य्य रूप बनता है तो स्त्री की योनि मे स्थित हो कर नव मास मे देह बन के बाहर आ जाता है ।

शिष्य—वीर्य्य से देह और देह से वीर्य्य मानते-मानते तो अनवस्था आ जायगी जो युक्ति से असिद्ध है, फिर बताइये कि जगत के आरंभ मे प्रथम पंचभूत वीर्य्य रूप बने थे वा देह रूप ?

गुरु—पञ्चभूत को प्रथम वीर्य्य रूप मानना तो आयौक्तिक है परन्तु यदि आदि काल मे पहले देह का बनना मान लें तो कोई युक्ति उस को खण्डन नही कर सकती । जैसा कि देखो ये पंचभूत जब वृक्ष, बीज आदिक जड सृष्टि रूप बन चुके तो फिर अपने आप एक-एक व्यक्ति सम्पूर्ण चेतन देहो को बन गये कि जिन का नाम मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट और पतग है। चाहे ये मनुष्यादिक पाँच प्रकार के जीव इस समय बडे स्थूल दिखाई देते हैं परन्तु आदि काल मे ये सब अत्यन्त सूक्ष्म[1] प्रकट हुए थे। वे सूक्ष्म जीव मिट्टी, जल, पवन तथा अनेक प्रकार के फल-फूलादि को चाटते हुए जब बडे हुए तो उन के देह तथा मन, बुद्धि और बल आदिक भी बडे हो गये कि जिन के प्रताप से उन्होने अपने सुखो और भोगो के निमित्त अनेक प्रकार के यत्न रच लिये। फिर उन से आगे गर्भ द्वारा उत्पत्ति होने लग गई।

शिष्य—यदि मनुष्य की उत्पत्ति आदि काल मे पचभूत से हुई है तो आज किसी स्थान मे इन पचभूतो से कोई मनुष्य बन जाना दिखाई क्यो नहीं देता ?

गुरु—पचभूत का यह अनादि स्वभाव है कि जब एक बार

---

१ मूल—सूक्ष्म ।

उनसे मनुष्यादि जीव अपने आप प्रकट हो जायें तो फिर उन से सृष्टि की स्थिति पर्यन्त अपने आप कोई जीव उत्पन्न न हो सके किन्तु नर और नारी के संयोग से उत्पत्ति हुआ करे। क्योंकि फिर मनुष्य पशु आदि के मल-मूत्र की गंध तथा परस्पर मिलाप जन्य तप्तता और अवस्थान्तर के पड़ जाने से पंचभूत के पूर्व स्वभाव में व्यतिक्रम आ जाता है जो आदिकाल की न्याईं उत्पत्ति नहीं होने देता।

शिष्य—नर और नारी का भेद कब से हुआ है ?

गुरु—जब प्रथम ही पंचभूत से देह बना तो दो प्रकार का बना था एक नर दूसरा नारी कि जिनके संयोग से अब उत्पत्ति विनाश होता चला आता है।

शिष्य—नपुंसक का देह कैसा और कब से है ?

गुरु—माता-पिता के वीर्य्य के विकार से नपुंसकत्व प्रकट होता है और वीर्य्य रुधिर की उत्पत्ति से पीछे इसका बनना आरंभ हुआ है।

शिष्य—कितना काल हुआ कि जब पंचभूत में से पहले पहल जड़ चेतन देहें प्रकट हुई थीं ?

गुरु—इतना तो बुद्धि में आता है कि देहादि संघात पंचभूत में से उत्पन्न हुआ परन्तु यह बात बुद्धि में कभी नहीं आ सकती कि यह संघात कब नहीं था और किस सम्वत् और मास में उत्पन्न हुआ। क्योंकि जैसे पंचभूत का स्वरूप अनादि है वैसे ही देहादि संघात का प्रवाह भी अनादि है जिन का उत्पत्ति-विनाश प्रवाहवत् सदा से होता चला आता है।

शिष्य—यदि सभी जड चेतन पदार्थों को पचभूत की न्याई स्वतन्त्र पदार्थ मान लें तो क्या हानि है ?

गुरु—यदि किसी वृक्ष वा शरीर को तुम स्वतन्त्र पदार्थ मानते हो तो हमारे जल, पवन, पृथ्वी, अग्नि, आकाश को इन मे से न्यारा कर दो और फिर दिखाओ कि पीछे वृक्ष और शरीर क्या पदार्थ बचता है। क्योंकि सब व्यक्तियो मे गीलापन जल का, फूलना पवन का, पकना अग्नि का, पोलाट आकाश का, और कठिनता पृथ्वी की दिखाई देती है। फिर जड चेतन व्यक्तियो में जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये पाच तत्वो के पांच गुण और इन को ग्रहण करने वाले कान, त्वचा, दृग, रसना और घ्राण ये पाच तत्व की पांच इन्द्रियां दिखाई देती हैं तो तुम देह को पचभूत से भिन्न स्वतन्त्र पदार्थ कैसे सिद्ध करोगे ? सत्य यह है कि जड चेतन रूप सर्व सघात परम्परा से पचभूत रूप ही है। फिर देखो, जहा चौबोस गुणों में से कोई एक गुण भी दिखाई देवे वहां पांच तत्वो मे से कोई न कोई अवश्य होता है क्योंकि गुण द्रव्य या तत्व मे रहा करते हैं और द्रव्य या तत्व नाम पचभूत का है। वे चौबीस गुण ये हैं—रूप, रस, गध, स्पर्श, क्रिया, सख्या, परिणाम, पृथक्ता, सयोग, विभाग, परता, अपरता, गुरुता, द्रवता, स्नेह, शब्द, ज्ञान, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म और सस्कार। जबकि देह मे ये चौबीसो ही गुण दिखाई देते हैं तब फिर इस को पचभूत का रूप क्यो न माना जावे ?

शिष्य—इन मे से और सब गुण तो जड पचभूत में ठीक रहते हैं परन्तु इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख, ज्ञान ये छः गुण तो केवल चेतन द्रव्य मे ही रहते हैं जिस को जीव या आत्मा

कहते हैं। फिर आप चौबीसों ही गुणों को पंचभूत में रहते कैसे कहते हो ?

गुरु—देह से भिन्न जीव या आत्मा तो कोई वस्तु ही नहीं जिसमें तुम इच्छादि षट् गुण की स्थिति मानते हो; किन्तु ये छः गुण पंचभूत में ही रहते हैं। हां, इतना ठीक है कि प्रतीति इनकी देह अवस्था में उस समय जा के होती है कि जब मांस, रुधिर आदिक का यथायोग्य सम्बन्ध हो जाता है। देखो, जैसे सूक्ष्म[1] रूप से मधुर और तितिक्त रस पंचभूत में ही भरा हुआ है परन्तु प्रतीति उन दोनों रसों की उस अवस्था में जा के होती है कि जब वह पंचभूत ईख और मिर्ची के देह को धारण करें। इसी प्रकार चम्पक आदि के बीज में चाहे महा उत्कट गंध सूक्ष्म[1] रूप से तो पहले ही से भरी हुई है परन्तु प्रतीति उस की पुष्प अवस्था में जा के ही होती है क्योंकि कोई गुण तो तत्वों में साक्षात् रहता है और कोई असाक्षात्, जिसकी प्रतीति किसी अवस्थान्तर में जाके होती है। पंचभूत में गुप्त (अव्यक्त) चेतना होने का हम यह अनुमान भी करते हैं कि गोधूम चूर्ण में जो जल सम्बन्ध से चलने फिरने वाली सुर्सरी नाम चेतना न होती तो उस जंतु में कहां से आ जाती।

शिष्य—पंचभूत से तो सारा संसार बना हुआ है परन्तु इस का क्या कारण है कि इच्छा द्वेषादि चेतन के गुण केवल मनुष्यादि देहों में ही होते है—काष्ठ पाषाण आदि में नहीं होते ?

गुरु—होते तो काष्ठ पाषाण आदि में भी हैं; परन्तु प्रतीति उनकी मांस, रुधिर, प्राण युक्त देह बनने के समय ही होती है। हम ने कई बार देखा है कि पाषाण के तोड़ने और काष्ठ के चीरने से उस के भीतर से एक कीट निकला जो निकलते ही

१. मूल—सूक्ष्म

चलने फिरने लग गया। यदि काष्ठ पाषाण मे गुप्त चेतना न होती तो मास, रुधिर, प्राण-युक्त देहावस्था प्राप्त कीट कहाँ से आ जाता। इससे यह सिद्ध हो गया कि पचभूत से भिन्न चेतना पदार्थ कोई नही किन्तु देह के एक देश (हृदय या मस्तिष्क) का नाम ही जीव है जिसके इच्छा द्वेष ज्ञानादि गुण हैं।

शिष्य—हम सदा देखते हैं कि मोहन भोग से जब कृमि बनते हैं तो सब एक ही भाति के बनते हैं उससे कभी शुक, शारिका, गाय, भैंस, आदि उत्पन्न नही होते; किन्तु इसका क्या कारण है कि पचभूत से जब जड रचना हुई तब कई भाँति की हुई जैसा कि मिर्चां, ईख, निम्ब, वट, पीपल आदि। और जब चेतन रचना हुई तब भी कई भाँति की हुई जैसा कि मनुष्य, पशु पक्षी आदि।

गुरु—प्रथम तो हम यह कहेगे कि पचभूत के तारतम्य से यह व्यवहार हुआ है। दूसरे यह कि मोहन-भोग आदि मे एक ही भाति के जीव बनने का स्वभाव है क्योकि वह पचभूत का कार्य है और पचभूत मे अनेक व्यक्तियो के बन जाने का स्वभाव है क्योंकि वह सब का कारण रूप है।

शिष्य—मनुष्यादि देहो मे जो सब अग-उपाग किसी काम के लिये बने हुए दिखाई देते हैं इस हेतु से जाना जाता है कि वे तत्वो के स्वाभाविक धर्म से अपने आप नही बने किंतु किसी बुद्धिमान ने उनको यथायोग्य रीति से बनाया है। उसी को हम ईश्वर या परमेश्वर मानते हैं।

गुरु—तब तो तुम कीकर के काटे का मुख तीक्ष्ण होना, मोरपख का विचित्र होना, बेरी के काटे का टेढा होना आदिक व्यवहार तथा किसी मनुष्य का छ अगुल वाला और किसी का हीन, या विकलाग वाला होना तथा किसी गाय-भैंस के मुख

पर पूंछ खुर का निशान और नितम्ब पर कान का निशान होना भी किसी काम के लिये मानते होगे और किसी ईश्वर को उनके कर्त्ता जानते होगे। हम सत्य कहते हैं कि यह सब कुछ, कहीं तो बीज के निज स्वभाव से होता और कहीं बीज में किसी विकार के आ जाने से होता है। इसमें कोई नियामक या स्थापक नहीं, यदि फिर भी तुम इनका कोई बनाने वाला मानते हो तो बताओ, क्यों बनाये ? कैसे बनाये ? कहां बनाये ? कब बनाये ? हम फिर कहते हैं कि इन पंचभूत के सिवाय गुप्त प्रकट और कोई पदार्थ नहीं। जहां देखो वहां ये ही कहीं जड़ और कहीं चेतन रूप से ओत-प्रोत पूरण हो रहे हैं। जो कोई इस प्रत्यक्ष पदार्थ को असत्य या विनाशी अथवा किसी अन्य के अधीन समझता है वह मूर्ख और सत्य विचार से हीन है।

शिष्य—जिसको लोग ब्रह्म, परमेश्वर, विष्णु, नारायण और भगवान् कहते हैं वह क्या और कहां है ?

गुरु—जो कुछ है यह जगत् ही है। इस जगत् प्रपञ्च से भिन्न कोई अन्य पदार्थ ब्रह्म, परमेश्वर, विष्णु, नारायण या भगवान नहीं। इन नामों के अर्थ करके देखो तो भी सब इसी के निकलते हैं। जैसा कि ब्रह्म शब्द का अर्थ महान् है; परमेश्वर का अर्थ ईश्वरों का ईश्वर अर्थात् सबका प्रेरक, विष्णु शब्द का अर्थ सर्वव्यापी, नारायण शब्द का अर्थ नरों का स्थान या नर जिसका स्थान है और भगवान् शब्द का अर्थ सर्व ऐश्वर्य-युक्त हैं, सो ये सब अर्थ इस जगत् पर ही लगते हैं। युक्ति और बुद्धि द्वारा भी इस प्रपंच से भिन्न और कोई ब्रह्म सिद्ध नहीं होता तथा वेद ने भी इसी को ब्रह्म सिद्ध किया है जैसा कि "सर्वं खल्विदम् ब्रह्म" यह सब कुछ ब्रह्म ही है।

शिष्य—वेद ने तो यह भी कहा है कि "एकमेवाद्वितीयम्'

एक ही है अद्वितीय ब्रह्म। फिर आप इस ठाठ को पचभूतमय बता रहे हो—यह कैसे ?

गुरु—जैसे कील, चक्र, धुर आदिक की भिन्न-भिन्न गिनती करें तो अनेक पदार्थ सिद्ध होते हैं किन्तु सब को मिला के एक शकट बोला जाता है वैसे ही व्यष्टि-रूप से यह प्रपच अनेक है किन्तु समष्टि रूप से इसको ब्रह्म कहा जावे तो एक ही है।

शिष्य—आपने तो परा विद्या द्वारा प्रत्यक्ष परमेश्वर दिखा दिया किन्तु अपरा विद्या ने जो जगत् से भिन्न कोई परोक्ष परमेश्वर लोगो के कान मे डाला है उसका क्या प्रयोजन है ?

गुरु—पीछे हम कह चुके हैं कि यह जगत् जड-चेतन भेद से दो प्रकार का है। चेतन वह है जो इच्छा, द्वेप, प्रयत्न, सुख, दुख, ज्ञान (बुद्धि) इन छ गुणो सहित दिखाई देवे जैसा कि मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतग हैं। और जड वह है जो इनसे रहित दिखाई देवे जैसा कि काष्ठ, पाषाण, घट, पट और मठ हैं। चाहे बुद्धि आदिक पट् गुण तो अन्य जीवों मे भी समान हैं परन्तु मनुष्य इनमे श्रेष्ठ है जो आप सुखी-दुखी हो के अन्य जीवो को भी सुखी-दुखी कर सकता है। मनुष्य फिर तीन भांति के हैं—प्रथम उत्तम, कि जो अपने ज्ञान द्वारा सब को समान जान के सुख देना और दुख दूर करना चाहते हैं। दूसरे मध्यम, कि जो बिना किसी लालच के दूसरे को सुख देना और दुख हरना नहीं चाहते। तीसरे निकृष्ट, कि जो बिना किसी भय के किसी को सुख देना और दुख से बचाना नही चाहते। तो उत्तमो के लिये तो परा विद्या के उपदेश हैं जो अपरोक्ष परमेश्वर का रूप दिखा के ज्ञानवान के सम्पूर्ण लालच और भय को दूर करते हैं। मध्यम और निकृष्टो के लिए अपरा विद्या के उपदेश हैं जो परोक्ष परमेश्वर और स्वर्ग-नर्क का लालच और भय दे के

जगत् की मर्यादा स्थिर रखना चाहते हैं। वास्तव में विचारें तो परोक्ष परमेश्वर कोई नहीं।

शिष्य—वेदादि अपरा विद्या किस ने रची है?

गुरु—बुद्धिमान मनुष्यों ने रची है और जिस मध्यम और निकृष्ट जनों के लिये रची है उन का बहुत अर्थ सिद्ध करती है परन्तु उत्तम लोगों का उसके साथ न विरोध है न प्रेम। वे अपनी परा विद्या में संलग्न हैं।

शिष्य—जब यह चराचर प्रपञ्च ही ब्रह्म स्वरूप है तो अब परमेश्वर के अवतार और ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और देव, गंधर्व तथा भूत-प्रेत आदिक क्या पदार्थ ठहरे?

गुरु—रामचन्द्र, कृष्णचन्द्र आदिक शरीर जो परमेश्वर का अवतार माने जाते हैं वे सब महापुरुष थे कि जिन्होंने अपने समय में ज्ञान विद्या बल के साथ अनेक प्रकार के आश्चर्य दिखलाये। और ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदिक नाम सब उसी ब्रह्म या परमेश्वर के ही हैं जिस का स्वरूप पीछे बतला आये हैं। विद्वान मनुष्यों का नाम देव और संगीत विद्या में निपुण मनुष्यों का नाम गंधर्व और सम्पूर्ण प्राणियों का नाम भूत और मृत देह का नाम प्रेत है। इनसे भिन्न और कुछ नहीं।

शिष्य—भक्ति और उपासना किस की करनी चाहिये और भक्ति का स्वरूप क्या है?

गुरु—इस जगत् रूप ब्रह्म में स्थित समस्त जीवों के साथ प्रेम, सहायता, रक्षा को बरतना और तन मन धन से सब का भला करने का नाम भक्ति[1] है।

---

१. चींटी से हस्ती तलक, जितने लघु गुरु देह।
सबको सुख देवो सदा परम भक्ति है येह॥
—शतोपदेश।

शिष्य—पुण्य पाप किस का नाम है ?

गुरु—ज्ञान और विचार के अनुसार चलना, स्वोपकार और परोपकार में लगे रहना पुण्य और इसके विरुद्ध झूठ, चोरी, व्यभिचार के मार्ग चलना पाप है। पुण्य से स्वर्ग और पाप से नर्क प्राप्त होता है।

शिष्य—स्वर्ग-नर्क क्या और कहां हैं ?

गुरु—सुख का नाम स्वर्ग और दुःख का नाम नर्क है। ये यहीं हैं और इसी जन्म में प्राप्त होते हैं।

शिष्य—जन्म-मरण क्या है ?

गुरु—माता के गर्भ से बाहर आने का नाम जन्म और किसी रोग-शोक के प्रताप से हृदय खंड के मुरझा जाने का नाम मरण है।

शिष्य—मूर्छा, सुषुप्ति और मृत्यु के समय आत्मा में इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख, ज्ञान कहां चले जाते हैं ?

गुरु—ये छहों गुण आत्मा की सावधान दशा में रहते हैं। जब आत्मा में किंचित भी अस्वस्थता आती है तो ये छहों लुप्त होने लगते हैं और पूर्ण अवस्था अर्थात् मृत्यु की दशा में सम्पूर्ण लोप हो जाते हैं। आत्मा की सावधान दशा वह है कि जब मांस, रुधिर, प्राण, चिकनाई आदिक सब पदार्थ देह में यथा योग्यता के साथ स्थित रहें।

शिष्य—मनुष्य का आत्मा नाना योनियां धारण करता है—या नहीं ?

गुरु—अवश्य करता है परन्तु इस रीति से कि प्रथम दग्ध हो के धूम, मेघ फिर जल और वनस्पति बना फिर मनुष्य, पशु पक्षी के पेट में जा के वीर्य बना, फिर गर्भ में पड के उन्हीं का

रूप हो गया। इसी प्रकार सदा भव चक्र में घूमता रहता है। विना यथार्थ ज्ञान के मुक्ति नहीं पाता। यथार्थ ज्ञान इस का नाम है कि अपने समेत सर्व प्रपंच को एक समझे, फिर न जन्म रहता है न मरण। जैसे नथली अपने को नथली समझे तो बनती मिटती है और सुवर्ण समझे तो बनना-मिटना नष्ट हो जाता है वैसे ही जब अपने समेत सारे संसार को पंचभूत रूप ब्रह्म समझे तो मुक्ति है और देहादि संघात समझे तो बंधन।

शिष्य—जीव को अपने कर्म का फल मिलता है नहीं ?

गुरु—मिलता है। परन्तु देह के रहते ही ; बाद में नहीं। यद्यपि खेत बोने वाले को उस के काटने के पूर्व ही मृत होते देख के हम यह भी कह सकते है कि कर्म का फल नहीं मिलता; परन्तु यह नहीं हो सकता कि कर्म व्यर्थ जावे। फल उसका कर्त्ता को मिले चाहे किसी अन्य को किन्तु मिलता अवश्य है। और समष्टि दृष्टि से विचारें तो वह अन्य भी उस कर्त्ता का रूप ही है।

शिष्य—एक धनी एक कंगाल होने का क्या कारण है ?

गुरु—विद्या, उद्यम, बुद्धि, वल, रूप और संयोग[1] धनी होने का कारण है और इनके अभाव से कंगाल होता है।

शिष्य—धर्म क्या और अधर्म किस को कहते हैं ?

गुरु—मनुष्य को मनुष्य धर्म में लगे रहना धर्म और पशु धर्म मे चलना अधर्म है।

---

१. विद्या उद्यम बुद्धि वल, रूप तथा संयोग।
षट कारण धन लाभ के, जानत हैं सब लोग।।

—शतोपदेश

शिष्य—मनुष्य का धर्म क्या और पशु का धर्म क्या होता है ?

गुरु—भक्ष्याभक्ष को विचार के खाना, बोल कुबोल को विचार के बोलना, न्यायान्याय को विचार के बरतना, नीच-ऊँच विचार के चलना ये सब मनुष्य धर्म हैं। इससे विरुद्ध बिना विचारे बरतना पशु धर्म है।

शिष्य—भक्ष्य अभक्ष्य क्या होता है ?

जिस वस्तु के खाने-पीने से अपने तन मन को सदैव सुख और सावधानी मिले और किसी अन्य प्राणी को कष्ट न मिले वह पंडित जनों की दृष्टि में भक्ष्य और इस से विरुद्ध सब अभक्ष्य है।

शिष्य—पंडित किस का नाम है और मूर्ख किस को कहते हैं ?

गुरु—जो परा और अपरा विद्या के तात्पर्य को जाने और सबको यथाधिकार उपदेश करे उस को साधुजन पंडित कहते हैं और जो इन दोनों विद्याओं का विवेक न कर सके और अधिकार सोचे बिना उपदेश करे वह मूर्ख है।

शिष्य—साधु किसका नाम और चोर किसको कहते हैं ?

गुरु—परा विद्या के प्रताप से जिसका मन निःसंशय हो गया हो और तीर्थ, व्रत दान के प्रताप से तन पवित्र हो गया हो उसका नाम साधु है और जो किसी स्वांग और वेष के आश्रय या झूठ छल, कपट के बल से जगत् से सेवा करानी चाहे वह चोर है।

शिष्य—तीर्थ, व्रत, दान किसको कहते है ?

गुरु—सत्पुरुषों की संगति का नाम तीर्थ और काम, क्रोध,

लोभ, मद, मिथ्या, छल आदिक से मन को रोकना व्रत है। भूखे, नंगे, रोगी को अन्न, वस्त्र, औषध का देना, मानी को मान-सम्मान देना और अर्थी का अर्थ पूरा करना, विद्यादान, ज्ञान-दान ये सब दान कहलाते हैं।

शिष्य—कोई लोग इस परा विद्या के उपदेश को नास्तिक मत कहते हैं; क्योंकि इसमें ईश्वर और जीव की अस्ति का निषेध है क्या उनका यह कहना ठीक है ?

गुरु—नास्तिक वह होता है जो अस्ति को नास्ति और नास्ति क अस्ति कहे और आस्तिक वह होता है जो अस्ति को अस्ति कहे। सो परा विद्या तो प्रत्यक्ष पड़ी अस्ति को अस्ति कहती है और अन्य लोग इस सत्य पदार्थ को असत्य ठहरा के किसी परोक्ष नास्ति पदार्थ—ईश्वर, जीव आदि—की अस्ति बतलाते हैं जो न किसी ने देखा और न युक्ति-प्रमाण से सिद्ध हो सकता है। सो अब विचारो कि नास्तिक कौन है ? हां, यह सत्य है कि महात्मा सद्गुरु की सेवा विना इस विद्या का समझना कठिन है।

शिष्य—सद्गुरु का लक्षण क्या और सच्चा शिष्य किसको कहते हैं ?

गुरु—जो निर्भय और निराकांक्ष हो के सत्य पद का उपदेश करे और जिस के संग से सर्व संशय दूर हो—वह सद्गुरु है। और जो लोक, वेद, और कुल लाज को तज के सत्य विद्या की प्राप्ति के निमित्त सद्गुरु क सच्चे वाक्य को हृदय में धारण करे उसको सच्चा शिष्य कहते हैं। जो शिष्य अपने सन्देह हर्ता सद्गुरु के उपकार को भूल जावे और विमुख हो जावे वह महा पापी कृतघ्न और धिक्कार क योग्य है।

शिष्य—धन्यवाद है आपके चरणारविन्द का कि मैं आप

के अमृत वचनो को सुन कर विगत सन्देह हो गया। अब मुझे जन्म मरण, बंध मोक्ष का कोई संशय नही रहा। आज मैं अपने निजानन्द मे मग्न और कृतकृत्य हूं। आपके उपदेश स मेरे उस तन मन धन की रक्षा हो गई जिमको मैं झूठे भय और लालच म वृथा नष्ट किया करता था—

प्रणाम ! प्रणाम !! प्रणाम !!!

गुरु—यह तुम को परा विद्या का 'बीज मन्त्र' सुनाया है। यदि अधिक सुनने की इच्छा हो तो 'सत्यामृत प्रवाह'[1] नामक ग्रन्थ को पढो जिसमे दृढ युक्तियो के साथ सत्य पदार्थ को सिद्ध किया है। किन्तु एक बात सदा स्मरण रखना कि अनधिकारी संसारी जीवो को 'आत्म चिकित्सा'[2] का ज्ञान कराये विना कभी इसका उपदेश न करना, क्योंकि इससे वे उभयतो भ्रष्ट हो सकते हैं।

॥इति बीज मन्त्र द्वितीयोऽध्याय समाप्त ॥
सम्पूर्णोऽयं ग्रन्थ

—०—
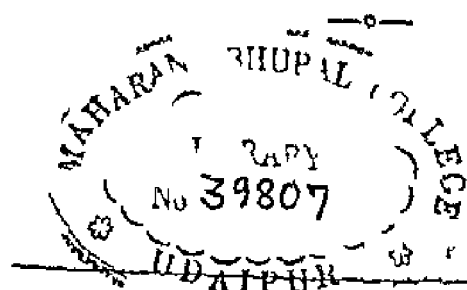
१ यह अनमोल ग्रन्थ आज से ५७ वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ था जो अब नही मिलता। इसका नया संस्करण (टिप्पणी सहित) बुद्धिवादी संघ स शीघ्र प्रकाशित होगा।

२ यह निबन्ध सत्यामृत प्रवाह के पूर्व भाग में लगा हुआ है।